॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ विनय-पत्रिका॥

गौस्वामी तुलसीदास कृत

॥ विनय-पत्रिका ॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

विनय-पत्रिका 18
(१) 18
(२) 19
(३) 20
(४) 21
(५) 22
(६) 24
(७) 25
(८) 26
(९) 27
(१०) 29
(११) 32
(१२) 36
(१३) 38
(१४) 40
(१५) 42
(१६) 44
(१७) 45
(१८) 47

(१९) 49
(२०) 50
(२१) 51
(२२) 52
(२३) 55
(२४) 57
(२५) 60
(२६) 64
(२७) 67
(२८) 69
(२९) 72
(३०) 74
(३१) 75
(३२) 77
(३३) 78
(३४) 81
(३५) 82
(३६) 84
(३७) 85
(३८) 86

(३९) 88
(४०).. 91
(४१) 92
(४२).. 94
(४३).. 95
(४४) 99
(४५) 103
(४६) 104
(४७) 108
(४८) 110
(४९).. 112
(५०).. 116
(५१) 119
(५२).. 123
(५३).. 127
(५४) 130
(५५).. 134
(५६) 137
(५७) 141
(५८).. 145

(५९).. 148
(६०).. 152
(६१).. 156
(६२).. 159
(६३).. 164
(६४) 167
(६५) 169
(६६) 170
(६७) 172
(६८) 173
(६९).. 174
(७०) 175
(७१).. 177
(७२) 178
(७३) 179
(७४) 180
(७५) 182
(७६) 184
(७७).. 186
(७८) 187

(७६) 188
(८०) 189
(८१) 191
(८२) 192
(८३) 194
(८४) 196
(८५) 197
(८६) 198
(८७) 200
(८८) 201
(८९) 202
(९०) 204
(९१) 205
(९२) 206
(९३) 209
(९४) 211
(९५) 213
(९६) 214
(९७) 215
(९८) 216

(९९)... 219

(१००)... 220

(१०१)... 223

(१०२)... 224

(१०३)... 226

(१०४)... 227

(१०५)... 228

(१०६)... 229

(१०७)... 232

(१०८)... 234

(१०९)... 235

(११०)... 237

(१११)... 238

(११२)... 239

(११३)... 241

(११४)... 242

(११५)... 244

(११६)... 245

(११७)... 247

(११८)... 249

(११९) 250
(१२०) 252
(१२१) 254
(१२२) 256
(१२३) 257
(१२४) 259
(१२५) 261
(१२६) 262
(१२७) 263
(१२८) 264
(१२९) 265
(१३०) 267
(१३१) 268
(१३२) 269
(१३३) 270
(१३४) 272
(१३५) 274
(१३७) 289
(१३८) 291
(१६९) 293

(१४०) 297
(१४१) 298
(१४२) 300
(१४३) 304
(१४४) 306
(१४५) 308
(१४६) 310
(१४७) 312
(१४८) 314
(१४९) 315
(१५०) 317
(१५१) 319
(१५२) 322
(१५३) 326
(१५४) 327
(१५५) 328
(१५६) 330
(१५७) 331
(१५८) 332
(१५६) 334

(१६०).. 336

(१६१).. 337

(१६२).. 338

(१६३).. 340

(१६४) 341

(१६५) 344

(१६६) 345

(१६७) 348

(१६८) 350

(१६९) 352

(१७०) 353

(१७१).. 355

(१७२) 357

(१७३) 358

(१७४) 360

(१७५) 361

(१७६) 363

(१७७).. 365

(१७८) 366

(१७९) 367

(१८०).. 369
(१८१).. 371
(१८२).. 372
(१८४) 375
(१८५).. 377
(१८६) 379
(१८७) 381
(१८८).. 383
(१८९).. 384
(१९०).. 386
(१९१) 388
(१९२).. 392
(१९३).. 393
(१९४).. 396
(१९५).. 397
(१९६).. 399
(१९७) 400
(१९८).. 402
(१९९).. 403
(२००).. 405

(२०१) 406
(२०२).. 408
(२०३).. 409
(२०४) 416
(२०५) 417
(२०६) 418
(२०७).. 420
(२०८) 421
(२०९) 423
(२१०).. 425
(२११) 427
(२१२).. 429
(२१३).. 430
(२१४) 431
(२१५).. 433
(२१६).. 435
(२१७) 437
(२१८).. 438
(२१९).. 440
(२२०).. 442

(२२१) 445
(२२२) 446
(२२३) 448
(२२४) 449
(२२५) 451
(२२६) 452
(२९७) 454
(२२८) 455
(२२९) 457
(२३०) 458
(२३१) 459
(२३२) 460
(२३३) 462
(२३४) 463
(२३५) 464
(२३६) 465
(२३७) 466
(२३८) 468
(२३६) 469
(२४०) 471

(२४१) 472
(२४२) 474
(२४३) 475
(२४४) 477
(२४५) 479
(२४६) 480
(२४७) 482
(२४८) 484
(२४९) 485
(२५०) 487
(२५१) 489
(२५२) 491
(२५३) 493
(२५४) 495
(२५५) 496
(२५६) 498
(२५७) 499
(२५८) 500
(२५९) 502
(२६०) 504

(२६१) 506
(२६२) 508
(२६३) 510
(२६४) 512
(२६५) 514
(२६६) 515
(२६७) 517
(२६८) 518
(२६९) 520
(२७०) 521
(२७१) 522
(२७२) 523
(२७३) 525
(२७४) 526
(२७५) 527
(२७६) 529
(२७७) 531
(२७८) 532

अलप तो अवधि तामें जीव बहु सोच पोच,
करिबे को बहुत है कहा कहा कीजिए ।

ग्रन्थन को अन्त नाहिं काव्य की कला अनन्त,
राग है रसीलो रस कहाँ कहाँ पीजिए ।

वेदन को पार न पुरानन को भेद बहु,
वाणी है अनेक चित कहाँ कहाँ दीजिए ।

लाखन में एक बात तुलसी बताए जात,
जन्म जो सुधारा चाहो रामनाम लीजिए ।

ॐ
श्रीगणेशाय नमः
श्री जानकीवल्लभो विजयते
श्रीमद् गौस्वामी तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका

(१)

<u>राग बिलावल</u>

गाइय श्रीगनपति जगबन्दन। सङ्कर सुवन भवानी नन्दन ॥
सिद्धि सदन गजबदन बिनायक। कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥१॥

मोदक प्रिय मुद मङ्गल दाता। विद्या बारिधि बुद्धि बिधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहि राम-सिय मानस मोरे॥२॥

जिनकी संसार वन्दना करता है, जो शंकर और पार्वतीजी के आनन्द-दायक पुत्र हैं। सिद्धियों के स्थान, हाथी के समान मुखवाले, माननीय, कृपा के समुद्र सुन्दर और सब प्रकार से योग्य हैं ॥२॥

जिनको मोदक अत्यंत प्रिय है और जो आनन्द-मंगल को प्रदान करने वाले, विद्या के सागर तथा बुद्धि के ब्रह्मा अर्थात बुद्धि उत्पन्न

करने वाले हैं, ऐसे श्रीगणेशजी का गुण गान करके तुलसीदास हाथ जोड़ कर वर माँगते हैं कि मेरे हृदय रुपी मन्दिर में श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी निवास करें ॥२॥

(२)

दीनदयाल दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥
हिम तम करि केहरि करमाली । दहन दोष दुख दुरित रुजाली॥१॥

हे दीनदयाल सूर्य देवता ! आप की सेवा मुनि, मनुष्य, देव और दैत्य करते हैं। हे आदित्य भगवान् ! आप हिम और अन्धकार रूपी हाथी के लिए सिंह रूप हैं तथा दोष, दुख, पाप और रोग-समूह को दग्ध करनेवाले हैं ॥१॥

कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी ।
सारथि पङ्ग दिव्य-रथ-गामी । हरि सङ्कर बिधि मूरति स्वामी ॥२॥

चकवा पक्षी तथा कमल को विकसित करनेवाले और लोक में प्रकाश करने वाले हैं। तेज, प्रताप, रूप और रस की राशि हैं। सारथी पंगु है; किन्तु आप दिव्य-रथ पर गमन करते हैं, विष्णु, शंकर और ब्रह्मा स्वरुप हैं। अर्थात् हे स्वामिन् ! आप सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार के हेतु हैं ॥२॥

बेद पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी रामभगति बर माँगें ॥३॥

आप का यश वेद और पुराणों द्वारा विख्यात होकर जगमगा रहा है, तुलसीदास आप से 'रामभक्ति' का वर माँगता है ।

(३)

को जाचिये सम्भु तजि आन । दीनदयाल भगत प्रारति हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥१॥

शिवजी को छोड़ कर और किससे मांगूं? वह दीनदयाल हैं; भक्तों के दुःख हरने में सव प्रकार समर्थ और यशस्वी हैं ॥ १ ॥

कालकूट ज्वर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो विष पान ।
दारुन दनुज जगत दुखदायक, जारेउ त्रिपुर एकही बान ॥२॥

हलाहल की जलन से देवता और दैत्य जल रहे थे। सभी ने भयभीत होकर शिवजी से गुहार लगाई, भक्तों के भय दूर करने की अपनी उदार प्रतिज्ञा के लिए उन्होंने विष पान किया । संसार को दुःख देनेवाला भीषण त्रिपुर दैत्य को एक ही बाण से भस्म कर दिया ॥२॥

जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत सन्त स्रुति सकल पुरान।
सो गति मरनकाल अपने पुर, देत सदा सिव सबहि समान ॥३॥

जो गति बड़े बड़े मुनियों की पहुँच के बाहर, नहीं मिलने योग्य, सन्त; वेद और समस्त पुराण कहते हैं, वह गति सब को मरते समय समान रूप से शिवजी अपनी पुरी काशी में निरन्तर देते हैं ॥ ३॥

देहु राम-पद नेहु कामरिपु, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

हे कृपानिधान कामदेव के वैरी! तुलसीदास को श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति दीजिये ॥४॥

(४)

दानी कहुँ सङ्कर सम नाही ।
दीनदयाल देवोई भावइ, जाचक सदा सुहाही ॥१॥

शंकरजी के समान कहीं कोई दानी नहीं है । वह दीनों पर दया करनेवाले हैं, उन्हें देना ही अच्छा लगता है और सदा मांगने वाले याचक ही सुहाते हैं ॥१॥

मारि के मार थपेउ जग जाकी, प्रथम रेख भट माहीँ ।
ता ठाकुर को रीमि निवाजव, कहि न परत मो पाही ॥२॥

जिनकी गिनती समस्त संसार के शूर वीरों में प्रथम होती है, ऐसे दुर्जय योद्धा कामदेव को मार कर और रति के विलाप से प्रसन्न होकर, अनंग रूप से कामदेव को जिन्होंने पुन: प्रतिष्ठित किया। उस स्वामी

के प्रसन्न होकर दया करने से कौन सा अलभ्य-लाभ प्राप्त होगा ? यह मैं नहीं कह सकता ॥२॥

जोग कोटि करि जो गति हरि सों, मुनि माँगत सकुचाहीं ।
बेदं विदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतङ्ग समाही ॥३॥

करोड़ों प्रकार का योग करके जिस गति को मुनि लोग भगवान् से माँगने में सकुचाते हैं। वेद में विख्यात है कि उस गति को काशीपुरी के कीट पतंगे भी पाते हैं ॥३॥

ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाही ।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाही ॥४॥

उदार स्वामी उमानाथ को छोड़ कर जो दूसरी जगह माँगने जाते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह मूर्ख मांगने वाले हैं, जिनका पेट कभी नहीं भरता ॥ ४ ॥

(५)

वावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ों दिन देत दिये बिन, वेद बड़ाई भानी ॥१॥

एक बार कैलास पर्वत पर आकर ब्रह्मा जी ने पार्वतीजी से प्रार्थना की कि हे भवानी! आप के स्वामी बावले हैं, बड़े दानी हैं कि बिना दिये

हुए को भी नित्य ही देते हैं, इन्होंने वेदों की मर्यादा को भी तोड़ डाला है ॥ १॥

निज घर की बर बात बिलोकहु, हौ तुम्ह परम सयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री सारदा सिहानी ॥ २॥

आप तो अत्यन्त सयानी है, अपने ही घर की अच्छी बात देखिये कि शिवजी की दी हुई दूसरों की सम्पत्ति को देख कर लक्ष्मी और सरस्वती सिहाती हैं ॥२॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन्ह रङ्कन्ह को नाक सँवारत, हौं आयउँ नकवानी ॥३॥

जिनके ललाट में मेरे हाथ से सुख का चिह्न तक नहीं लिखा गया, उन कंगालों को स्वर्ग प्रदान करते हैं जिससे मेरी नाक में दम आ गया है ॥३॥

दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी ॥४॥

इनके दुःख से दुःख और दीनता दुःखी हैं और याचकता घबरा गई है। यह ब्रह्मा के पद का अधिकार दूसरे को सपुर्द कोजिये, मैं भीख माँगना अच्छा समझता हूँ॥४॥

प्रेम प्रसंसा विनय ब्यङ्ग जुत, सुनि बिधि की बर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिँ मन, जगतमातु मुसुकानी ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेम, प्रशंसा, विनती और व्यंग्य से मिली हुई ब्रह्मा की श्रेष्ठ वाणी को सुन कर शिवजी मन ही मन प्रसन्न हुए और जगन्माता पार्वतीजी मुस्कुराई ॥५॥

(६)

माँगिये गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥१॥

पार्वती और काशी के स्वामी से माँगना चाहिए, जिनके घर में अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ सेवा करती हैं ॥१॥

अवढर दानि द्रवत सुठि थोरे । सकत न देखि दीन कर जोरे ॥
सुख सम्पति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ सङ्कर सेवकाई ॥२॥

जो शत्रु मित्र पर समान दयालु होकर दान देते हैं और बहुत थोड़ी सेवा से दया करतेहैं, गरीबों को हाथ जोड़े हुए नहीं देख सकते। सुख, सम्पत्ति, बुद्धि और अच्छी सुहावनी गति शंकर जी की सेवा करने से सब सहज में मिलती है ॥२॥

तुलसिदास जाचक जस गावै ।
बिमल भगति रघुपति की पावै ॥३॥

जो दुखी होकर शरण में गये, उन्हें कृपादृष्टि से देख कर पल भर में सुखी कर दिया। यह याचक तुलसीदास आप का यश गान करता है, रघुनाथजी की निर्मल भक्ति इसको भिक्षा स्वरूप मिले ॥३॥

(७)

कस न दीन पर द्रवहु उमाबर।
दारुनविपतिहरन करुनाकर ॥३॥

हे उमाकान्त ! श्राप भीषण विपत्ति हरनेवाले दया की खान हैं, फिर इस दीन पर क्यों नहीं दयालु होते हैं ?॥१॥

बेद पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयह कृपिन तर ॥
कवन भगति कीन्ही गुननिधि-द्विज होइ प्रसन्न दीन्हे सिव पद-निज ॥२॥

वेद और पुराण कहते हैं कि शिवजी बड़े दाता हैं, फिर मेरे लिए ही आप अधिक कंजूस क्यों हो गए हैं । गुणनिधि ब्राह्मण ने कौन सी भक्ति की थी? हे शंकर! जिससे प्रसन्न होकर आपने उसको अपना पद, कैलाश वास तक दे दिया ॥२॥

जो गति अगम महामुनि गावहिँ । तव पुर कीट पतङ्गहु पावहि ॥
देहु कामरिपु राम-चरन-रति । तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति ॥३॥

जिस गति को बड़े बड़े मुनि दुर्लभ कहते हैं, उसको आप की नगरी काशी में कीट और पतंगे पाते हैं। हे स्वामिन् कामदेव के वैरी ! तुलसीदास की भेद-बुद्धि को हर लीजिये और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति दीजिये ॥३॥

(८)

देव बड़े दाता बड़े सङ्कर बड़े भोरे ।
किये दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात-आखत थोरे।
दियो जगत जहँ लगि सवहि सुख गज-रथ-घोरे ॥१॥

शंकरजी बड़े देवता, बड़े दानी और बड़े सीधे हैं, जिन जिन लोगों ने हाथ जोड़े, उन सब का दुःख उन्होंने दूर किया। जिनकी सेवा स्मरण और थोड़े बेलपत्र अक्षत से पूजना है, इतने से ही जगत् में सभी को जहाँ तक सुख, हाथी, रथ और घोड़े आदि ऐश्वर्य प्रदान किए ॥१॥

गाँउ बसत बामदेव मैं कबहुँ न निहोरे ।
अधिभौतिक बाधा भई ते किङ्कर तोरे ॥
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दल सैंधो चहइ सठ साख सिहोरे ॥२॥

हे शिवजी! आप की पुरी काशी में रह कर मैंने कभी विनती नहीं की, किन्तु इन दिनो शरीरधारियों द्वारा कष्ट होता है और पीड़ा देने वाले आप के दास हैं । मैं बलिहारी जाता हूँ ! इनकी करनी कठोर है, तुरन्त बुला कर इन्हें मना कर दीजिए, यह मूर्ख तुलसी दास को सिहोरी की काँटेदार डाली में मथना चाहते हैं ॥२॥

(९)

सिव सिव होइ प्रसन्न कर दाया। करुनामय उदार कीरति वलि,
जाउँ हरहु निज माया ॥१॥

हे कल्याण रुप शिवजी ! मुझ पर प्रसन्न होकर दया कीजिए, बलिहारी जाता हूँ। आप दया के रूप, उदार कीर्ति वाले हैं, अपनी माया को हर लीजिये ॥ १॥

जलज-नयन गुन-अयन मयन-रिपु, महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा राम-पद-पङ्कज, सपनेहुँ भगति न होई ॥२॥

कमल के समान नेत्र, गुणों के मन्दिर, कामदेव के बैरी जिनकी महिमा कोई नहीं जानता । हे मदनारि ! बिना आप की कृपा के रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में सपने में भी भक्ति नहीं होती ॥२॥

रिपय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर, अपर जीव जग माहीं ।
तब पद-विमुख पार नहिँ पावत, कलप-कोटि चलि जाहीं ॥३॥

ऋषिगण, सिद्ध , मुनि, मनुष्य, दानव, देवता आदि संसार में और जितने जीव हैं। आप के चरणों से प्रतिकूल रह कर, करोड़ों कल्प बीतने पर भी भवसागर से पार नहीं पाते ॥३॥

अहि-भूषन दूषन-रिपु-सेवक, देवदेव त्रिपुरारी।
मोह निहार दिवाकर सङ्कर, सरन सोक भय हारी ॥४॥

हे शंकर जी ! आप सर्पों के आभूषण धारण करने वाले, दूषण राक्षस के बैरी, श्री रामचन्द्रजी के सेवक, देवताओं के देवता और त्रिपुर दैत्य के नाशक है। अज्ञान रूपी कुहासे के लिये सूर्य और शरणागतों के भय तथा शोक को हरनेवाले हैं ॥४॥

गिरिजा मन-मानस मराल, कासीस मसान निवासी ।
तुलसिदास हरि-चरन-कमल बर, देहु भगति अबिनासी ॥५॥

पार्वतीजी के मन रूपी मानसरोवर के राजहंस, काशी के स्वामी और शमशान में रहनेवाले हैं। तुलसीदास को रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में नाश रहित भक्ति का वर दीजिये ॥५॥

(१०)

राग धनाश्री

मोह-तम-तरनि-हर रुद्र सङ्करं सरन,
हरन मम सोक लोकाभिरामं ।
बाल-ससि भाल सुबिसाल लोचन-कमल,
काम सतकोटि लावन्य-धामं ॥१॥

अज्ञान रूपी अन्धकार के लिये शिवजी सूर्य रूप हैं, शरणागतों के कल्याण कर्ता, हमारे शोक के हरनेवाले और जगत के आनन्द दायक है। ललाट पर बाल-चन्द्रमा विराजमान हैं, सुन्दर कमल के समान विशाल नेत्र और असंख्यों कामदेव के समान शोभा के स्थान हैं ॥१॥

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर विग्रह रुचिर, तरुन रबि कोटि तनु तेज भ्राजै।
भस्म सर्वाङ्ग अर्धाङ्ग सैलात्मजा, व्याल नृ-कपाल-माला बिराजै ॥२॥

आपका सुन्दर शरीर शंख, कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा और कपूर के समान गौर है,मध्याह्न के करोड़ो सूर्य की तरह उसमें तेज विराजमान है। सब अंग में विभूति रमाये, अर्द्धांग में पार्वतीजी, गले में साँप और नर-खोपड़ी की माला धारण किये हैं ॥ २॥

मौलि सङ्कल जटा-मुकुट बिद्युच्छटा,
तटिनिबर बारिहरि-चरन-पूतं।

स्त्रवन कुंडल गरल-कंठ करुनाकन्द,
सच्चिदानन्द बन्देवधूतं ॥३॥

मस्तक पर बिजली के समान चमकीला जटा का मुकट है उसमें भगवान के चरण से उत्पन्न श्रेष्ठ जलवाली गंगा नदी लहराती हैं। कानों में कुंडल, गले में विष शोभित है, दया के मूल, योगिराज और ब्रह्म-स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

सूल सायक पिनाकासि कर सत्रु बन,
दहन इव धूमध्वज बषभजानं ।
ब्याघ्र गज चर्म परिधान विज्ञान-घन,
सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं ॥४॥

बैल पर सवार, हाथ में त्रिशूल, बाण, धनुष और खडग लिये शत्रु रूपी वन को जलाने में अग्नि रूप हैं। बाघ और हाथी के चर्म का वस्त्र पहने, विज्ञान के राशि, सिद्ध मुनि, देवता और मनुष्यों से सेवित हैं ॥४॥

तांडवित नृत्य पर डमरु डिमडिम प्रबर,
असुभ इव भाति कल्यान-रासी।
महाकल्पान्त ब्रह्मांड-मंडल दवन,
भवन कैवल्य आसीन कासी ॥५॥

अति सुन्दर डमरू और डुगडुगिया बजाते हुए परमोत्तम ताण्डव नृत्य करने वाले, अमंगल की तरह अत्यन्त शोभित और कल्याण के राशि हैं। महाप्रलय के समय भूमण्डल के नाशक, मोक्ष के स्थान और काशीपुरी में विराजमान हैं ॥५॥

तज्ञ सर्बज्ञ यज्ञेस अच्युत बिभव, बिस्व भवदंस-सम्भव पुरारी।
इन्द्र चन्द्रार्क बरुनाग्नि बसु मरुत जम, अर्चि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ॥६॥

हे पुरारि ! आप ब्रह्मज्ञानी, सब के ज्ञाता, यज्ञ के स्वामी, नित्य, ऐश्वर्या युक्त हैं और संसार आप ही के अंश से उत्पन्न है। इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, अग्नि, वसुगण, पवन, यम सभी ने आपके चरणो की उपासना करके प्रभुत्व पाया है ॥ ६ ॥

अकल निरुपाधि निर्गन निरंजन ब्रह्म, कर्मपथमेकमज निर्विकारं ।
अखिल विग्रह उग्ररूप सिव-भूष-सुर, सर्बगत सर्ब सर्बोपकारं ॥७॥

अखण्ड, बाधा रहित, गुणों से परे, माया से निर्लिप्त, ब्रह्म, कर्म मार्ग में प्रधान, अजन्मे और निर्दोष हैं । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपका ही शरीर है, रौद्र रूप, कल्याणमय, देवताओं के भी देवता, सभी में स्थित और सभी की सभी प्रकार से भलाई करनेवाले हैं ॥७॥

ज्ञानवैराग्य धन धर्म कैवल्य-सुख, सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं ।

तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार-पथ, भ्रमत भव बिमुखतव पाद-मूलं॥८॥

हे शिवजी ! आप की कृपा से ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, मोक्ष-सुख और सुन्दर सौभाग्य प्राप्त होता है। तो भी मूर्ख मनुष्य आप के चरणों से प्रतिकूल होकर संसार के मार्ग में उलझते फिरते हैं ॥८॥

नष्ट मति दुष्ट अति कष्ट रत खेद गत,
दासतुलसी सम्भु सरन आया।
देहि कामारि श्रीराम-पद-पङ्करह,
भक्ति भव-हरनि गत भेद माया ॥९॥

हे शंकरजी! बुद्धि हीन , दुराचारी, अत्यन्त मुसीबत का मारा, ग्लानि में पड़ कर, तुलसी दास आप की शरण आया है। हे कामारि ! इस दुःखी जन को संसार की हरनेवाली भेद-भाव और माया से रहित श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों में भक्ति दे दीजिये ॥९॥

(११)

भीषनाकार भैरव भयङ्कर भूत, प्रेत प्रमथाधिपति विपति हर्ता ।
मोह मूषक मार्जार संसार भय हरनतारन तरन अभय कर्ता ॥१॥

हे रुद्र भगवान् ! आप का भीषण स्वरूप भय उत्पन्न करनेवाला है, आप भूत, प्रेत और प्रमथों के मालिक तथा विपत्ति के हरनेवाले है।

अज्ञान रूपी चूहे के लिये विलाव रूप, संसार सम्बन्धी भय को हरनेवाले, जीवों को भवसागर से पार उतारनेवाले, मोक्षरूप और निर्भय करनेवाले हैं ॥१॥

अतुल बल बिपुल विस्तार बिग्रह गौर,
अमल अति धवल धरनीधरामं ।
सिरसि सङ्कलित कल कूट पिङ्गल जटा,
पटल सतकोटि बिदरच्छटाभं ॥२॥

अतुल बलवान, अपरिमित विस्तारवाले, गौर शरीर, निर्मल, अत्यन्त उज्वल पर्वत हिमालय के समान आपकी शोभा है। सिर पर फैला हुआ सुन्दर ऊँचा पीतवर्ण जटा का जूड़ा है, उसमें असंख्य बिजली की कतार जैसे चमकीली छवि है ॥२॥

भ्राज बिबुधापगा आप पावन परम, मौलि मालेव सोभा बिचित्रं ।
ललित लल्लाट पर राज रजनीस कल, कलाधर नौमि हर धनद-मित्रं
॥ ३ ॥

जटा में अत्यन्त पवित्र जलवाली देवनदी-गंगा जी विराजमान हैं, वह मस्तक पर माला की तरह विलक्षण शोभा बढ़ा रही हैं। सुन्दर माथे पर चन्द्रमा की कला सुशोभित है, हे कला धर कुवेर के मित्र शंकर जी! मैं आप को नमस्कार करता हूँ ॥३॥

इन्दु-पावक-भानु-नयन मर्दन-मयन,

ज्ञान गुन अयन विज्ञान रूपं ।
रवन गिरिजा भवन भूधराधिप सदा,
स्त्रवन कुंडल बदन छवि अनूपं ॥४॥

चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य नेत्र हैं, श्राप कामदेव को नष्ट करनेवाले, ज्ञान गुण के स्थान और विज्ञान के रूप हैं। पार्वतीजी के प्रीतम, सदा कैलास-पर्वत पर निवास करनेवाले हैं, कानों में कुण्डल और मुख की अनुपम छवि है ॥४॥

चर्म असि सूल धर डमरु सायक चाप,
जान वृषभेस करुना निधानं।
जरत सुर असुर नर लोक सोकाकुलं,
मृदुल चित अजित कृत गरल पानं ॥ ५ ॥

हाथ में, ढाल, तलवार, त्रिशल, डमरू, बाण और धनुष धारण किये नादिया की सवारी, दया के स्थान हैं । देवता, दैत्य, मनुष्य और सारा संसार विष की ज्वाला से जलते हुए शोकातुर थे, उस समय उस अजीत विष को कोमल हृदय वाले आप ने ही पान किया था। ॥ ५ ॥

भस्म तनु भूषनं ब्याघ्र चर्माम्बरं, उरग नरमौलि उर माल धारी।
डाकिनी साकिनी खेचरी भूचरी, यन्त्र भञ्जन प्रबल कल्मषारी ॥६॥

शरीर पर विभूति का आभूषण और बाघ के चर्म का वस्त्र पहने, हृदय में साँप तथा नर-गुण्डों की माला धारण किये हैं। चुडैल, योगिनी,

आकाशचारी-ग्रह और पृथ्वी पर किए जाने वाले टोटका आदि के नाश करने में बड़े बलवान एवम् पाप के शत्रु हैं ॥६॥

काल अतिकाल कलि ब्याल ब्यालाद,
खग त्रिपुर-मर्दन भीम-कर्म भारी ।
सकल लोकान्त कल्पान्त सूलायकृत,
दिग्गजव्यक्त गुन नृत्यकारी ॥ ७॥

काल, महाकाल और कलिकाल रूपी सर्पों का भक्षण करने में आप गरुड़ रूप हैं । त्रिपुर दैत्य के नाश करने में आप बहुत बड़े भयानक कर्म के करनेवाले हैं। कल्प के अन्त में समस्त लोकों को और दिशाओं के हाथियों को अपने त्रिशूल के नोक से नाश कर निर्गुण रूप से नृत्य करते हैं ॥७॥

पाप सन्ताप घनघोर संमृति दीन,
भ्रमत जग जोनि नहिँ कोपि त्राता ।
पाहि भैरव रूप राम रूपी रुद्र,
बन्धु गुरु जनक जननी बिधाता ॥८॥

मैं अत्यन्त भीषण संसार में पाप और दुःख से दीन होकर जगत की योनियों में घूमता फिरता हूँ, मेरा कोई भी रक्षक नहीं है । हे भैरव रूप राम रूपी रुद्र ! मेरे भाई, गुरु, पिता, माता और विधाता आप ही हैं। ॥८॥

यस्य गुन गनगनति बिमल मति सारदा,
निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी ।
सेष सर्वेस आसीन आनन्दबन,
प्रनत तुलसीदास त्रास-हारी ॥

जिनके गुण-समूह को निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती, वेद, शेष और नारद जैसे प्रतिष्ठित ब्रह्मचारी गान करते हैं। सब के स्वामी, आनन्दवन अर्थात काशी में विराजमान दीन तुलसीदास की त्रास को हरनेवाले हैं ॥६॥

(१२)

सङ्कर‌ं सम्प्रदं सज्जनानन्द, सैलकन्याबरं परमरम्यं ।
काम मद मोचनं तामरस-लोचनं, बामदेवं भजे भाव-गम्यं ॥१॥

कल्याणकारी, श्रेष्ठ दानी, सज्जनों को आनन्द दायक, शैलकन्या पार्वतीजी के स्वामी अतिशय मनोहर हैं। कामदेव के घमण्ड को तोड़ने वाले, कमल नयन शिवजी जो प्रेम से मिलते हैं, मैं उनका भजन करता हूँ ॥१॥

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर गोरे सिवं, सुन्दरं सच्चिदानन्द कन्दं ।
सिद्ध सनकादि जोगीन्द्र बृन्दारका, विष्नु विधि बन्य चरनारबिन्दं
॥२॥

शिवजी शंख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और कपूर के समान गौर वर्ण, सुन्दर सत् चित् आनन्द के मूल परब्रह्म हैं। जिनके चरणकमल सिद्ध, सनकादि योगेश्वर, देवता, विष्णु और ब्रह्माजी से अभिवादन किये जाने योग्य है ॥२॥

ब्रह्मकुल-बल्लभं सुलभमतिदुर्लभ, विकट बेषं विभुं बेद पारं।
नौमि करुनाकरं गरल-गंगा-धरं, निर्मलं निर्गुनं निर्विकारं ॥३॥

ब्राह्मणवंश के प्रिय अथवा जिनको ब्राह्मण का कुल प्रिय है, सहज में मिलनेवाले, अत्यन्त दुष्प्राप्य, विकराल वेश, समर्थ और वेद से परे हैं अर्थात् वेद भी जिनके यथार्थ रूप का वर्णन नहीं कर सकते। दया के स्थान, विष तथा गंगा जी को धारण किये, निर्मल, गुणों से परे और निर्दोष शिवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

लोकनाथं सोक-सल-निर्मलिनं, सलिनं मोह-तम भूरि-भान ।
कालकालं कलातीतमजरं हरं, कठिन कलिकाल-कानन कृसानुं
॥४॥

समस्त लोकों के स्वामी, शोक और शूल को निर्मल करनेवाले, अज्ञान रूपी अन्धकार के लिये असंख्यों सूर्य रूप है । काल के भी काल, कलाओं से परे, वृद्धा अवस्था से रहित और कठिन कलि युग रूपी वन के लिये शिवजी दावानल रूप है ॥४॥

तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घटसम्भवं, सर्वगं सर्व सौभाग्यमलं।

प्रचुर-भव-भञ्जनं प्रनत-जन-रजनं, दासतुलसी सरन सानुकूलं ॥५॥

ब्रह्मज्ञानी, अज्ञान रूपी समुद्र के लिये अगस्त्य रूप सर्वत्र गमन करनेवाले शंकरजी सौभाग्य के मूल हैं । अपार संसार अर्थात जन्म, मरण, गर्भवास के नाशक, दीनजनों को आनन्द देनेवाले और शरणागत तुलसीदास पर कृपा करनेवाले हैं ॥५॥

(१३)

राग वसन्त

सेवहु सिव-चरन सरोज रेनु । कल्यान अखिल-प्रद कामधेनु ॥१॥

शिवजी के चरण-कमल को धूलि का सेवन करो, यह सम्पूर्ण कल्याण को प्रदान करनेवाली कामधेनु है ॥१॥

कर्पूर गौर करुना उदार । संसार-सार भुजगेन्द्र हार ॥
सुख-जन्मभूमि महिमा अपार । निर्गुन गुन-नायक निराकार ॥२॥

जो कपूर के समान गौर वर्ण दयालु और दानी हैं, जगत के प्रधान, सर्पों का हार पहने, सुख के जन्मस्थान, अनन्त महिमा युक्त, गुणों से परे, गुणों के मालिक और रूप रहित हैं ॥२॥

त्रय-नयन मयन-मर्दन महेस । अहँकार निहार उदित दिनेस ॥
बर-बाल-निसाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक-सोक-हर प्रमथराज ॥३॥

शंकर जी तीन नेत्रवाले, कामदेव के नाशक और अहंकार रूपी कुहासे के लिये उदय हुए सूर्य के समान हैं। माथे पर सुन्दर बाल-चन्द्रमा सुशोभित है, भूतों के मालिक और तीनों लोक के शोक को हरनेवाले हैं ॥३॥

जिन कह बिधि सुगति न लिखी भाल ।
तिन्ह की गति कासीपति कृपाल ॥
उपकारी को पर हर समान ।
सुर-असुर जरत कृत गरल पान ॥४॥

जिनके कपाल में ब्रह्मा ने अच्छी गति नहीं लिखी, उनको कृपालु काशीश्वर शिवजी श्रेष्ठ-पद देते हैं । शिवजी के समान परोपकारी दूसरा कौन है ? जिन्हों ने देवता और दैत्यों को विष की ज्वाला से जलते देख कर हलाहल विष का पान कर लिया ! ॥४॥

बहु कल्प उपाय करिय अनेक ।
बिनु सम्भु कृपा नहिँ भव बिबेक ॥
विज्ञान-भवन-गिरि-सुता-रमन।
कह तुलसिदास मम त्रास समन ॥५॥

बहुत कल्पों तक कोई अनेकों उपाय क्यों न कर ले परन्तु शंभू की दया के बिना ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। विज्ञान के मन्दिर और पार्वतीजी

को रमानेवाले हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वही शंकर भगवान मेरी त्रास के नाश करनेवाले हैं ॥५॥

(१४)

देखो बन बनेउ आज उमाकन्त।
जनुपेखन आई रितु-बसन्त ॥३॥

देखो, आज पार्वती-पति (शिवजी) वन बने हैं, ऐसा मालूम होता है मानों वसन्त-ऋतु देखने आई हो ॥१॥

मनु तनु दुति चम्पक-कुसुम-माल । बर बसनं नील नूतन तमाल॥
कल कदलि जङ्घ पद कमल-लाल । सूचक कटि केहरि गति-मराल ॥२॥

पार्वतीजी के शरीर को कान्ति ऐसी लगती है मानो चम्पा के फूलों की माला है, उत्तम नीले रंग की साड़ी नवीन तमाल वृक्ष है । जांघें सुन्दर केले के खम्भे हैं, चरण-तल लाल कमल हैं, कमर सिंह को सूचित करनेवाली और चाल हंस का स्मरण कराती है ॥२॥

भूषन प्रसून बहु विविध रङ्ग । नूपुर किङ्किनि कलरव बिहङ्ग ।
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल। श्रीफल-कुच कञ्चुकि-लता-जाल ॥३॥

बहुत से गहने अनेक रङ्ग के फूल हैं, पायजेब ओर करधनी कोकिल पक्षी है। हथेलियाँ मौलसिरी और आम के नये लाल पत्र हैं, बेल पयोधर हैं और हरे रङ्ग की अँगिया लताओं का जाल है ॥३॥

आनन सरोज कच-मधुप-पुञ्ज । लोचन बिसाल नव नील-का॥
पिक बचनचरित बर बरहि कीर। सित-सुमन-हास लीला-समीर
॥४॥

मुख कमल है, बाल भंवरे का झुण्ड है, विशाल नेत्र नवीन श्याम-कमल है। वचन कोयल की बोली है, श्रेष्ठ चरित मुरैला और सुअर है, हंस सफ़ेद फूल है तथा क्रीड़ा पवन है ॥४॥

कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान । उर बसि प्रपञ्च रच पञ्चबान ॥
करि कृपा हरिय भ्रम-फन्द-काम । जेहि हृदय बसहि सुख-रासि
राम ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं- हे सुजान शिवजी ! सुनिये, मेरे हृदय में विराजित कामदेव प्रपञ्च रच रहा है। कृपा करके काम के भ्रमोत्पादक फन्दे को दूर कीजिये जिससे सुख के राशि रामचन्द्रजी मेरे हृदय में निवास करें ॥५॥

(१५)

राग-मारू

दुसह दोष दुख दलनि करु देबि दाया ।
बिस्व-मूलासि जन सानुकूलासि सर, सूल धारिनि महा-मूल-माया
॥१॥

हे देवि ! मुझ पर दया करो, आप असहनीय दोष और दुःख का नाश करती हैं। आदिशक्ति
भक्तों पर दया करनेवाली बाण और त्रिशूल धारण किये हुए आप ही रुद्राणी दुर्गा हैं ॥१॥

तड़ित गर्भाङ्ग सर्बाङ्ग सुन्दर लसत,
दिव्य-पट भब्य-भूषन बिराजै।
बाल-मृग मञ्जु खञ्जन-बिलोचन चन्द,
बदन लखि कोटि रति-मार लाजै ॥२॥

आप के समस्त अंग सुन्दर, बिजली के समान चमकीले और शोभायमान हैं और दिव्य वस्त्र तथा मांगलिक आभूषण उनमें विराजमान हैं। मृगशावक और खंजन के समान नेत्र हैं, चन्द्रमा के समान मुख-मण्डल को देख कर करोड़ों रति-कामदेव भी शर्मा जाते हैं ॥२॥

रूप सुख-सील-सीमासि भीमासि
रामास बामासि बर-बुद्धि बानी ।

छमुख-हेरम्ब-अम्बासि जगदम्बिके,
सम्भु-जायासि जय जय भवानी ॥३॥

आप रूप, सुख और शील की अवधि हैं, भयंकर हैं, लक्ष्मी पार्वती और श्रेष्ठ बुद्धि वाली सरस्वती हैं । स्वामिकार्तिक और गणेशजी की माता हैं, शिवजी की प्रियतमा भार्या हैं, हे भवानी ! आप की जय हो, जय हो ॥३॥

चंड भुजदंड खंडनि बिहंडनि मुंड,
महिष मद भङ्ग करि अङ्ग तोरे ।
सुम्भ निः-सुम्भ कुम्भीस रन केसरिन,
क्रोध-बारिधि बैरिबन्द बोरे ॥४॥

चण्ड दैत्य की भुजाओं को काटनेवाली और मुण्ड दैत्य का नाश करने वाली हैं, आप ने ही महिषासुर के घमण्ड को चूर चूर कर उसके समस्त अंग तोड़ डाले थे। शुम्म ओर निशुम्भ रूपी मतवाले हाथियों के मस्तक रणभूमि में फोड़ने के लिये आपने सिंहिका रूपी अपने क्रोध रूप समुद्र में शत्रुओं के झुण्ड को डुबो दिया था ॥४॥

निगम आगम अगम गुर्वि तब गुन कथन,
उर्बीधर कहत जेहि सहस जीहा ।
देहि मा मोहि पन-प्रेम निज-नेम यह,
राम घनस्याम तुलसी पपीहा ॥५॥

हे सती शिरोमणि ! आप के यश वर्णन करना वेद और शास्त्रों को भी दुर्गम है, पृथ्वी को धारण करनेवाले शेषनाग जिनकी हजार जीभ हैं वह भी यही कहते हैं । हे माता! मुझे प्रेम की प्रतिज्ञा का दृढ़ नेम दीजिये कि रामचन्द्रजी रूपी श्याम मेघ का तुलसी चातक रूप हो॥५॥

(१६)

राग-सारङ्ग जय जय जगजननि देवि,
सुर नर मुनि असुर सेबि,
भक्त मुक्ति-दायनि भय हरनि कालिका ।
मङ्गल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्व सर्वरीस-बदनि,
ताप तिमिर तरुन-तरनि किरन मालिका ॥१॥

हे जगन्माता कालिका देवि ! आपकी जय हो, जय हो । देवता, मुनि, मनुष्य और दैत्य सेवा करते हैं, आप भक्त-जनों के भय को हरनेवाली और उन्हें मोक्ष प्रदान करने वाली हैं । आनन्द, मंगल और सिद्धियों का आप स्थान हैं, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान आपका मुख है, दुःख रूपी अन्धकार के लिए आप मध्याह्न के सूर्य की किरण-राशि के बराबर हैं ॥१॥

बर्म चर्म कर कृपान, सल सेल धनुष बान,
धरनि दलनि दानव-दल रन करालिका ।
पूतना पिसाच-प्रेत, डाकिनि साकिनि समेत,
भूत-प्रमथ-ग्रह खगालि हेतु जालिका ॥२॥

कवच पहने, हाथ में ढाल, तलवार, त्रिशुल, साँगा, धनुष और बाण लिए रणभूमि में दानवों की सेना का नाश करने में आप बहुत ही भीषण हैं । बालकों की अहवाधा, पिशाच प्रेत, चुड़ैल, योगिनी, भूत, प्रमथ और क्रूरग्रह रूपी पक्षियों के झुण्ड को फंसाने में आप जाल रूपी है ॥२॥

जय महेस भामिनी, अनेक रूप नामिनी,
समस्त लोक स्वामिनि हिम-सैल-बालिका ।
रघुपति-पद-पदुम प्रेम, तुलसी चह अचल नेम,
देहि होइ प्रसन्न पाहि प्रनत-पालिका ॥३॥

हे शिवजी की प्रियतमा! आपकी जय हो। आप अनेक रूप, अनन्त नामवाली, सम्पूर्ण लोकों को स्वामिनी और हिमाचल की कन्या हैं। रघुनाथजी के चरण-कमलों में अविचल नियम-पूर्वक तुलसी प्रेम चाहता है, हे दीन जनों की रक्षा करने वालो माहेश्वरी ! प्रसन्न होकर मुझको यह वर दीजिये ॥३॥

(१७)

जय भगीरथ-नन्दिनि, मुनि चय चकोर चन्दिनि,
नर नाग बिबुध बन्दिनि जय जह्नु-बालिका ।
बिष्नु-पद-सरोजजासि, ईस सीस पर बिभासि,
त्रिपथगासि पुन्यरासि पाप-छालिका ॥३॥

दे भगीरथ नन्दिनी जहमुनि की कन्या ! आप की जय हो, जय हो। मुनिवृन्द रूपी चकोर के लिए आप चन्द्रमा की किरण रूप है, मनुष्य, नाग और देवताओं से वन्दनीय हैं। विष्णुभगवान के चरण-कमलों से उत्पन्न, शिवजी के मस्तक पर सुशोभित, आकाश, पाताल, धरती तीनों मार्गों से गमन करनेवाली, पुण्य की राशि और पापों को धोनेवाली हैं ॥१॥

बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रय ताप हारि,
भँवर बर बिभङ्ग तर तरन मालिका ।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि-धवल-धार,
भञ्जन भुबि भार भक्त-कल्प-थालिका ॥२॥

निर्मल शीतल गम्भीर जल से बहती हुई तोनों ताप को हरनेवाली, अत्यन्त सुन्दर भंवर और ऊँची लहरों से युक्त हैं । पुरवासियों द्वारा पूजा की सामग्री पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य आदि के सहित आप की उज्वल धारा चन्द्रमा के समान शोभायमान है, पृथ्वी से पाप के बोझ को नसाने वाली और भक्त रूपी कल्पवृक्ष के लिए थाला रूपिणी हैं ॥२॥

निज-तट-बासी बिहङ्ग, जल-थल-चर पसु पतङ्ग
कीट जटिल; तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तव तीर तीर, सुमिरत रघुबंस-बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥३॥

अपने किनारे के रहनेवाले पक्षी, जलचर, थलचर, पशु, पक्षी, कीड़े, हिंसक जीव और तपस्वी सबको बराबर पालनेवाली हैं। हे मोह रूपी महिषासुर की कालिका ! तुलसी आप के किनारे रघुकुल के वीर (रामचन्द्रजी) का स्मरण करते हुए भ्रमण करता है, इसको बुद्धि प्रदान कीजिये ॥३॥

(१८)

राग-रामकली

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी ।
विष्नु-पद-कज मकरन्द इव अम्बु बर,
बहसि दुख दहसि अघ-छन्द-बिद्रावनी ॥१॥

हे गंगा जी! आप सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करनेवाली हैं, आपकी जय हो, जय हो। विष्णु भगवान् के चरण-कमल के रस के समान पवित्र जल बहता हुआ दुःख को जलानेवाला है, आप पाप की राशि का नाश करनेवाली हैं ॥ १ ॥

मिलित-जलपात्र अज जुक्त हरि-चरन रज,
बिरज तर बारि त्रिपुरारि सिर धामिनी ।
जह्नु कन्या धन्य पुन्य कृत सगर-सुत,
भूधरद्रोनि बिदरनि बहु नामिनी ॥२॥

आप का अत्यन्त निर्मल जल ब्रह्मा के कमण्डलु में नारायण के चरणों की धूलि से मिला हुआ सुशोभित है। हे जह मुनि की पुत्रिका! आप धन्य हैं। आपने राजा सगर के साठ हज़ार पुत्रों को पवित्र कर दिया, पर्वत और नौका को चीरने वाली आपके बहुतेरेनाम हैं ॥२॥

जच्छ गन्धर्व मुनि किन्नरोरग दनुज,
मनुज मज्जहिँ सुकृत पुञ्ज जुत कामिनी ।
स्वर्ग सोपान विज्ञान ज्ञान प्रदे,
मोह-मद मदन-पाथोज हिम-जामिनी ॥३॥

यक्ष, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य स्त्री सहित स्नान कर पुण्य के राशि हाते हैं। आप स्वर्ग की सीढ़ी हैं, विज्ञान तथा ज्ञान को देनेवाली और अंज्ञान-मद-कामदेव, रूपी कमल के लिये पाला की रात्रि हैं ॥३॥

हरित गम्भीर बानीर दुहुँ तीर बर,
मध्य धारा बिसद बिस्व अभिरामिनी ।
नील परजङ्क कृत सयन सस जनु,
सहस सीसावली स्रोत सुर-स्वामिनी ॥४॥

दोनों किनारों पर हरे हरे बेंत के सघन वृक्ष हैं और बीच में जगत को आनन्द देनेवाली आप की श्रेष्ठ उज्जवल धारा बहती है। ऐसा मालूम होता है मानो नीले रंग के पलँग पर शेषनाग शयन किये हों, हे सुर स्वामिनी ! आप के सहस्रों सोते उनकी फनावली हैं ॥४॥

अमित महिमा अमित-रूप भूपावली,
मुकुटमनि बन्दिते लोक त्रय गामिनी ।
देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भर मातु,
दासतुलसी त्रास हरनि भव-भामिनी ॥५॥

अनन्त महिमा और अपार रूपवाली, राजाओं के मुकुट-मणि से वन्दनीय और तीनों लोकों में गमन करनेवाली हैं। हे माता! शिवजी को प्रियतमा त्रास को हरनेवाली तुलसीदास को रघुनाथजी के चरणों में पूर्ण प्रेम दीजिये ॥५॥

(१९)

हरति पाप त्रिविध ताप, सुमिरत सुरसरित ।
बिलसत महिं कल्पबेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥१॥

गंगा जी स्मरण करते ही पाप और तीनों तापों का हरण कर लेती हैं, आनन्द और वाञ्छित फल से फली हुई धरती पर कल्पलता के समान लहराती हैं ॥१॥

सहित ससि-धवल-धार, सुधा-सलिल भरित ।
बिमल तर तरङ्ग लसत, रघुबर से चरित ॥२॥

अमृत रूप जल से भरी चन्द्रमा के समान आप की उज्वल धारा शोभित है। रघुनाथजी के यश के समान आपकी अत्यन्त निर्मल लहरें विराजती हैं ॥२॥

तो बिनु जगदम्ब गङ्ग, कलिजुग का करित ।
घोर भव अपार सिन्धु, तुलसी किमि तरित ॥३॥

हे जगन्माता गङ्गाजी ! आप के विना कलियुग न जाने क्या करता ! संसार रूपी अपार भीषण समुद्र से तुलसी किस तरह पार होता? ॥३॥

(२०)

ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ पताल धरनि ।
मुनि सुर नर नाग सिद्ध, सुजन मङ्गल-करनि ॥१॥

आप शिवजी के सिर पर निवास करती हैं और आकाश, पाताल, धरती तीनों मार्ग में शोभायमान होती हैं। आप मुनि, देवता, मनुष्य, नाग, सिद्ध और सज्जनों का कल्याण करनेवाली हैं ॥१॥

देखत दुख-दोष-दुरति,दाह-दारिद दरनि ।
सगर-सुवन सासति समन, जलनिधि जल-भरनि ॥२॥

दर्शन से दुःख, दोष, पाप, ताप, दरिदता नष्ट होती है, आप सगर के पुत्रों की दुर्दशा मिटानेवाली और जलराशि-समुद्र को जल से भरनेवाली हैं ॥२॥

महिमा की अवधि करसि, बहु बिधि-हरि-हरनि ।
तुलसी करु बानि बिमल, बिमल-बारि-बरनि ॥३॥ .

अनेकों प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी को महिमा में वृद्धि करती हैं अर्थात ब्रह्मा के कमण्डलु में स्थित होकर, विष्णुभगवान के चरणों से उत्पन्न होकर और शिवजी की जटा में विहार करती हुई तीनों देवों की महिमा बढ़ानेवाली हैं। हे निर्मल जल और वर्णवाली ! तुलसी की वाणी को विमल कीजिये ॥३॥

(२१)

राग बिलावल

जमुना ज्यौँ ज्यौँ लागी बाढ़न ।
त्यौँ त्यौँ सुकृत सुभट कलि भूपहि, निदरि लगे वहि काढ़न ॥ १॥

जैसे जैसे यमुनाजी बढ़ने लगी वैसे वैसे पुण्य रूपी वीर कलियुग रूपी राजा का अनादर करके संसार रूपी राजधानी से उसको बाहर निकालने लगे ॥१॥

ज्याँ ज्यौँ जल मलीन त्या त्याँ जम-गन मुख मलीन लह आढ़ न ।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्याँ, अनघ-आगि लगे डाढन ॥२॥

जैसे जैसे बाढ़ के कारण पानी गंदला होता है वैसे वैसे यमदूतों के मुख पर उदासी बढ़ती जाती है, वह अपने बचाव के लिये आश्रय नहीं पाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं- जगत के पाप रूपी यवा से निष्पापता अर्थात पुण्य रूपी आग से जलने लगे अर्थात् यमुनाजी की वृद्धि से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि हुई है ॥२॥

(२२)

राग भैरव

सेइय सहित सनेह देह-भरि, कामधेनु कलि कासी ।
समन सोक-सन्ताप-पाप-रुज, सकल सुमङ्गल रासी ॥१॥

कलियुग में काशी रूपी कामधेनु की सेवा शरीर रहने तक प्रेम पूर्वक करनी चाहिये जो शोक, दुःख, पाप और रोगों का नाश करती है तथा सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलों की राशि है ॥१॥

मरजादा चहुँ ओर चरन बर, सेवत सुर-पुरबासी ।
तीरथ सब सुभ अङ्ग रोम सिव,लिङ्ग अमित अबिनासी ॥२॥

चारों दिशाओं की सीमा ही जिसका सुन्दर चरण है, पुरवासी रूपी देवता सेवा उसकी करते हैं अर्थात् जिस प्रकार देवलोक में कामधेनु की सेवा देवतावृन्द करते हैं वैसे ही काशी-कामधेनु की सेवा नगर-निवासी रूपी देवता करते हैं । कल्याण रूप काशी जी के समस्त तीर्थ अंग हैं और अपरिमित अक्षय शिवलिंग रोमावलियाँ हैं ॥ २॥

अन्तर-अयन अयन भल थन-फल, बच्छ-बेद-बिस्वासी ।
गलकम्बल बरना बिभाति जनु, लूम लसति सरितासी ॥३॥

अन्तर्गृही अर्थात काशी का मध्य स्थान रहने का सुन्दर स्थान अर्थात गौशाला है, चारों फल- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष थन हैं और वेदों में श्रद्धा और विश्वास रखनेवाले प्राणी बछड़े हैं। वरनानदी ऐसी शोभायमान दिखाई देती है मानो गले का कम्बल हो और असी-नदी पूँछ के समान शोभायमान होती हैं ॥३॥

दंडपानि भैरव बिषान मल, रुचि खल-गन भयदा-सी ।
लोल-दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनधंट घंटा सी ॥४॥

दण्डपाणि और भैरव सींग हैं वह पाप में लिप्त रहनेवाले खलों की भयदायक तलवार हैं। ललार्क कुंड और त्रिलोचन इसके नेत्र हैं और कर्णघंटा तीर्थ गले के घंटे के समान है॥४॥

मनिकनिका बदन ससि सुन्दर, सुरसरि-सुख सुखमा सी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पञ्चकोस महिमा सी ॥५॥

मणिकर्णिका-कुण्ड चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है और गंगा जी का आनन्द परम शोभा है। स्वार्थ और परमार्थ की परिपूर्णता से युक्त पञ्चकोसी परिक्रमा महिमा के बराबर है ॥ ५॥

विस्वनाथ पालक कृपाल चित, लालति नित गिरिजा सी।
सिद्धि सची सारद पूजहिँ मन, जोगवत रहति रमा सी॥६॥ ..

दयालु चित्त जगत के स्वामी शिवजी इसका पालन करने वाले और पार्वतीजी के समान सती शिरोमणि सदा इसको प्यार दुलार करनेवाली हैं। आठों सिद्धियाँ इन्द्राणी-ब्रह्माणी शुश्रूशा करती हैं और लक्ष्मीजी के समान त्रिलोक स्वामिनी इसको देखती रहती हैं ॥६॥

पञ्चाच्छरी-प्रान मुद-माधव, गब्य सुपञ्च-नदा सी ।
ब्रह्म जीव सम राम-नाम दोउ-आखर विस्व-बिकासी ॥७॥

पञ्चाक्षरी मन्त्र – ॐ नमः शिवाय इसके पाँचों प्राण हैं, माधव तीर्थ प्रसन्नता है, पाँचों नदियाँ -गङ्गा, वरना, असी, किरणा और धूतपापा पञ्चगव्य के समान हैं। राम नाम के दोनों अक्षर 'रकार' और मकार' ब्रह्म और जीव के समान संसार के प्रकाशक हैं अर्थात् जैसे ब्रह्म-जीव शरीर में विद्यमान रहकर जगत को प्रकाश देता है, वैसे काशी-कामधेनु में दोनों अक्षर ब्रह्म और जीव के समान हैं ॥७॥

चारित चरति करम कुकरम करि, मरत जीव-गन घासी।
लहत परम-पद पय पावन जेहि, चहत प्रपञ्च-उदासी ॥८॥

सुकर्म और कुकर्म करके मरनेवाले जीव-समूहों के चरित्र ही चरने की घास अर्थात चारा है। उन जीवों को मोक्ष प्राप्त होना पवित्र दूध है जिसको समस्त संसार के विरक्त जन चाहते हैं । ॥८॥

कहत पुरान रची केसव निज, कर करतूति-कला सी ।
तुलसी बसि हरपुरी राम-जपु, जो भयो चहइ सुपासी ॥६॥

पुराण कहते हैं कि विष्णु भगवान ने काशी पुरी को अपने हाथ से बना कर अपनी समस्त कलाओ का सम्मिश्रण इसमें करके अपने कारीगरी का कौशल सा दिखाया है । हे तुलसी ! यदि तू सुखी होना चाहता है तो शिवपुरी काशी में रह कर राम नाम का जाप किया कर ॥६॥

(२३)

राग वसन्त

सब सोच बिमोचन चित्रकूट । कलि हरन करन कल्यान-बूट ॥१॥

सब प्रकार के सोच को चित्रकूट छुड़ानेवाला, पापहारी और कल्याण-कारी वृक्ष रूप है ॥२॥

सुचि अवनि सुहावनि प्रालवाल । कानन बिचित्र बारी बिसाल ॥

मन्दाकिनि मालिन सदा सींच । बर बारि बिषम नर नारि नीच ॥२॥

सुहावनी पवित्र भूमि थाला है, विलक्षण वन बड़ा बगीचा है जिसको मन्दाकिनी रूपी मालिन अपने श्रेष्ठ उत्तम जल से नीच स्त्री पुरुष रूपी पौधों को सींचती हैं अर्थात उन नीच स्त्री पुरुषों का उद्धार करती है जो नित्य इसके जल में स्नान करते हैं ॥२॥

साखा सुसृङ्ग भूरुह सुपात । निर्भर मधु बर मृदु मलय बात ॥
सुक-पिक-मधुकर मुनिबर बिहारु । साधन-प्रसून फल चारि-चारु ॥३॥

चित्रकूट के सुन्दर शिखर ही इसकी शाखाएँ हैं और वृक्ष उत्तम पत्ते हैं, झरनों का उत्तम जल मकरन्द है और चन्दन की खुशबू से सुगन्धित पवन ही कोमलता है। यहाँ विहार करने वाले मुनिवर ही तोता, कोयल और भ्रमर पुञ्ज हैं, उनके विविध प्रकार के साधन फूल तथा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह चारों उत्तम फल हैं ॥३॥

भव घोर घाम हर सुखद छाँह । थपेउ थिर प्रभाउ जानकी नाह ॥
साधक सुपथिक बड़ भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ॥४॥

चित्रकूट रुपी वृक्ष संसार रूपी भयंकर धूप को दूर कर छाँह का सुख देनेवाली है, इस वृक्ष के प्रभाव को जानकीनाथ ने अटल रूप से स्थापित किया है। सुन्दर साधना करनेवाले यात्री बड़े भाग्य से इसकी

छाँह पाते हैं और अनेक प्रकार के मनोरथों को प्राप्त कर तृप्त हो जाते हैं ॥४॥

रसएक रहित गुन-कर्म-काल ।
सिय-राम-लखन पालक कृपाल ॥
तुलसी जो राम-पद चाहिय प्रेम।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥५॥

चित्रकूट सदा एक समान गुण, कर्म और समय के दोषों से रहित है, कृपालु रामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी इसके रक्षक हैं । तुलसी! यदि तू रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम चाहता है तो कपट छोड़ कर नियम-पूर्वक चित्रकूट पर्वत कामतानाथ की सेवा किया कर ॥५॥

(२४)

राग कान्हरा

अब चित चेति चित्रकूटहि चल ।
कोपित कलि लोपित मङ्गल-मग,
बिलसत बढ़त मोह-माया मल ॥१॥

अब मन सचेत होकर तू चित्रकूट को चल, क्योंकि कलियुग ने क्रुद्ध होकर मंगल करने वाले मार्ग को छिपा दिया है, दिनों दिन अविद्या, छल और पाप क्रीड़ा करते हुए बढ़ते जाते हैं ॥१॥

भूमि बिलोकि राम-पद-अङ्कित,
बन बिलोकि रघुबर बिहार- थल ।
सैल-मृङ्ग भव भङ्ग हेतु लखि,
दलन कपट-पाखंड-दम्भ-दल ॥२॥

रामन्द्रजी के चरण-चिन्हों से चिन्हित धरती को देख और रघुनाथजी के विहारस्थल वन को निहार तथा संसार सम्बन्धी दुःखों के नाश के कारण एवम् कपट, पाखण्ड, अहंकार समूह का नाश करने वाले पर्वत-शिखर का दर्शन कर ॥२॥

जहँ जनमे जग-जनक जगतपति,
विधि हरि हर परिहरि प्रपञ्च-छल ।
सकृत प्रबेस करत जेहि प्रास्त्रम,
बिगत बिषाद भये पारथ नल ॥३॥

जहाँ जगत के पिता, लोकों के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेश संसार के उत्पन्न, पालन तथा प्रलय के विस्तार के बहाने को छोड़ कर जन्मे थे। जिस आश्रम में एक बार प्रवेश करते ही अर्जुन और राजा नल विषाद रहित हो गये थे ॥३॥

न करु बिलम्ब बिचारु चारु-मति,
बरिस पाहिले सम अगिलो-पल ।
मन्त्र सो जाइ जपहि जो जपत भये,
अजर अमर हर अँचइ हलाहल ॥४॥

हे उत्तम बुद्धि ! कुछ भी विलम्ब न कर, आनेवाले पल को बीते हुए वर्ष के समान समझ। चित्रकूट में जा कर वह मन्त्र जप, जिसको जप कर शिवजी विष पान करके भी अजर अमर हुए हैं अर्थात श्री राम नाम मन्त्र का जाप कर ॥४॥

राम-नाम जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जल।
करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महाफल ॥५॥

राम-नाम के जाप का यज्ञ करने से और नित्य पयस्विनी के पवित्र जल में स्नान तथा पान करने से रामन्द्रजी मनोभिलाष पूरा करेंगे, इस सुख मय साधन से बिना परिश्रम के ही महान् फल की प्राप्ति होगी ॥५॥

कामद-मनि कामता-कल्पतरु, सो जुग जुग जागत जगतीतल।
तुलसी तोहि बिसेष बूझिये, एक प्रतीति- प्रीति एकइ बल ॥६॥

कामतानाथ पर्वत जगतीतल अर्थात पृथ्वी पर मनोवांछित फल देने के लिये युग युग से चिन्तामणि और कल्पवृक्ष रूप प्रसिद्ध हैं। तुलसी ! तुझ को विशेष रूप से उन कामतानाथ में विश्वास, प्रीति और एक उन्हीं का बल समझना चाहिये ॥६॥

(२५)

राग धना श्री

अञ्जनागर्भ-अम्भोधि-सम्भूत-बिधु, विबुध-कुल-कैरवानन्दकारी।
केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद,लोक-गनसोक-सन्ताप
हारी॥३॥

आप अञ्जनी के गर्भ रूपी समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा रूप, देव-कुल रूपी कुमुद वन को आनन्दित करनेवाले, केशरी वानर के सुन्दर नेत्र रूपी चकोर को सुख प्रदान करने वाले और समस्त लोको के शोक-सन्ताप का हरण करने वाले हैं ॥२॥

जयति जय बाल-कपि-केलि कौतुक उदित,
चंडकर-मंडल ग्रासकर्ता ।
राहु रबि सक्र पवि गर्व खर्बीकरन,
सरन भय हरन जय भुवन-भर्ता ॥२॥

आपने बाल्यावस्था में वानरी खेल का कुतूहल करके उदित हुए सूर्य-मण्डल को निगल लिया था और राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्र के गर्व को चूर चूर कर दिया था। लोकों के स्वामी, शरणागतो के भय के हरनेवाले पवनकुमार की जय हो, जय हो, जय हो ॥२॥

जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि,
रुद्र अवतार संसार पाता ।

बिप्र सुर सिद्ध मुनि आसिषाकर बपुष,
बिमल-गुन बुद्धि बारिधि-विधाता ॥३॥

हे हनुमान जी ! आप युद्ध में साहसी, रघुनाथजी के हितैषी, देवताओं के शिरोमणि, शिवजी के अवतार और संसार के रक्षक हैं । ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियों के आशीर्वाद-स्वरूप शरीरवाले, स्वच्छ गुणों के समुद्र तथा बुद्धि के ब्रह्मा हैं अर्थात बुद्धि को उत्पन्न करने वाले हैं ॥३॥

जयति सुग्रीव सिच्छादि रच्छन निपुन,
बालि बल-सालि बध मुख्य हेतू ।
जलधि लङ्घन सिंह सिंहिका-मद-मथन,
रजनिचर नगर उत्पात केतू ॥४॥

आप शिक्षा आदि से सुग्रीव की रक्षा करने में प्रवीण और बल से भरे बालि को मारने के मुख्य कारण हो । आप की जय हो । समुद्र लाँघते हुए सिंह के समान निर्भय सिंहिका राक्षसी के घमण्ड को मथनेवाले और राक्षसों के नगर लंका के लिये उत्पातकारी धूम केतु अर्थात पुच्छल तारा रूपी हो ॥४॥

जयति भू-नन्दिनी-सोच-मोचन बिपिन,
दलन घननाद-बस बिगत सङ्का ।
लूम-लीला अनल-ज्वालमालाकुलित,
होलिका करन लङ्केस लङ्का ॥५॥

जनकनन्दिनी के शोक का निवारण कर, रावण की अशोकवाटिका को विध्वंस कर, निशंक मेघनाद के वश हो गये। आप की जय हो। अग्नि की ज्वालमाला से युक्त पूँछ के खेल से लंकापति की राजधानी लंका को होलिका की भांति दग्ध कर दिया था ॥५॥

जयति सौमित्रि रघुनन्दनानन्दकर,
रिच्छ-कपि-कटक सङ्कट विधाई ।
बाँधि वारिधि सेतु अमर मङ्गल हेतु,
भानुकुल-केतु रन विजयदाई ॥६॥

लक्ष्मण और रघुनाथजी को आनन्दित करने के लिये आप भालु-बन्दरों की सेना के व्यवस्थापक हुए, आप की जय हो। देवताओं के कल्याणार्थ समुद्र पर पुल बाँध कर सूर्यवंश की पताका को युद्ध में विजय लाभ प्राप्त करवाया ॥६॥

जयति जय बजतनु दसन मुख नख विकट,
चंड भुजदंड तरु सैल पानी ।
समर तैलिकजन्त्र तिल-तमीचर-निकर,
पेरि डारे सुभट घालि घानी ॥७॥

वज्र के समान कठोर शरीर, दाँत, मुख और नख विकराल है, अप्रमेय बलशाली भुजाएँ, हाथ में पर्वत तथा वृक्ष धारण किये हुए आप की

जय हो । आपने युद्ध रूपी काल में तिल रूपी राक्षस समूह को कोल्हू की तरह पेर कर नष्ट कर डाला ॥७॥

जयति दसकंठ घटकरन वारिदनाद,
कदन-कारन कालनेमि हन्ता ।
अघट घटना सुघट सुघट-विघटन बिकट,
भूमि पाताल जल गगन गन्ता ॥८॥

रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के नाश के कारण और कालनेमि के वध करनेवाले, आप की जय हो। आप असंभव कार्य को कर दिखाने वाले और संभव कार्य को असम्बव बनाने वाले अत्यंत भीषण हो। पृथ्वी, पाताल, जल और आकाश में आपकी गति निर्बाध है ॥ ८ ॥

बिस्व विख्यात बानइत बिरदावली,
बिदुष बरनत बेद बिमल बानी ।
दासतुलसी त्रास समन सीता-रमन,
सङ्ग सोभित राम-राजधानी॥६॥

वीरता में आप की नामवरी जगप्रसिद्ध है, विद्वान और वेद निर्मल वाणी से आपका वर्णन करते हैं। आप तुलसीदास के भय का नाश करने वाले और सीतारमण श्री राम चन्द्र जी के साथ उनकी राजधानी अयोध्यापुरी में शोभित होनेवाले हैं॥६॥

(२६)

मर्कटाधीस मृगराज बिक्रम महा, देव मुद-मङ्गलालय कपाली।
मोह मद कोह कामादि-खल-सङ्कला, घोर-संसार-निसि किरनमाली
॥१॥

हे वानरों के स्वामी! आप सिंह के समान पराक्रमी, देवताओं में श्रेष्ठ, आनंद मंगल के स्थान और शिवजी के रूप हैं। अज्ञान, घमण्ड, क्रोध और काम आदि दुष्टों से भरी हुई संसार रूपी भीषण रात्रि का नाश करने वाले सूर्य हैं ॥१॥

जयति लसदलनादितिज कपि केसरी,
कस्यपप्रभव जगदार्ति-हर्ता।
लोक लोकप कोक-कोकनद सोक हर,
हंस-हनुमान कल्यान-कर्ता ॥२॥

अंजनी रूपिणी अदिति और केशरी वानर रूपी कश्यप से उत्पन्न देवता जगत के दुःख को हरनेवाले, आप की जय हो। हे हनूमानजी! आप लोक रूपी चक्रवाक और दिगपाल रूपी कमल के शोक को दूर करने में सूर्य के समान कल्याण करने वाले हैं ॥२॥

जयति सुबिसाल बिकराल-विग्रह
बज-सार सर्वाङ्ग भुजदंड भारी।
कुलिस नख दसन बर लसत बालधि बहद,

बीर सस्त्रास्त्र धर कुधर-धारी ॥३॥

आपका सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर विशाल, भयानक और वज्र का सार रूप है तथा भुजाएँ लम्बी हैं, आपकी जय हो। नख और दाँत वन के समान श्रेष्ठ, लम्बी सुहावनी पूँछ, शूरवीर अस्त्र शस्त्र लिये द्रोणाचल पर्वत धारी हैं ॥३॥

जानकी सोच सन्ताप मोचन राम, लछमनानन्द बारिज बिकासी।
कीस कौतुक केलि लूम लङ्का दहन,दलनकानन तरुन-तेज-राासी॥४॥

आप जानकीजी के शोक को दूर करने वाले और रामचन्द्रजी के दुःख का अंत करने वाले हो , लक्ष्मणजी के आनंद रूपी कमल को विकसित करनेवाले, वानरी कुतूहल के खेल से पूँछ द्वारा लंका को जलाने वाले, अशोक वन के नाशक और नवीन तेज के राशि सूर्य समान हो ॥४॥

जयति पाथोधि पाषान जलजान कर, जातुधान-प्रचुर हर्ष-हाता ।
दुष्ट रावन कुम्भकर्न पाकारिजित, मर्मभित्कर्म परिपाक-दाता ॥५॥

आप समुद्र में पत्थर को जहाज़ बनानेवाले और राक्षसवृन्द के आनन्द के नाशक, आपकी जय हो । दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के भेद को जान कर उन्हें कर्म का फल देनेवाले हैं ॥५॥

जयति भुवनैक-भूषन बिभीषन बरद,
विहित कृत राम-संग्राम साका ।
पुष्पकारूढ़ सौमित्रि सीता सहित,
भानुकुल-भानु कीरति-पताका ॥६॥

जगत के अद्वितीय भूषण रूप, विभीषण को राम भक्ति का वर देनेवाले और संग्राम में रामचन्द्रजी के लिये वीरोचित कार्य सम्पूर्ण करके सुख्याति पानेवाले, आप की जय हो। लक्ष्मण और सीताजी के सहित पुष्पक विमान पर विराजमान सूर्यवंश के सूर्य रामचन्द्रजी के सयश के आप पताका रूपी हो ॥६॥

जयति पर जन्त्र-मन्त्राभिचार प्रसन, कार्मन-कूट कृत्यादि हन्ता ।
साकिनी डाकिनी पूतना प्रेत वेताल भूत प्रमथ जूथ जन्ता ॥७॥

विरोधियों के किये यन्त्र, मन्त्र, मारण-मोहन प्रादि प्रयोगों के नष्ट करने वाले, कपट और राक्षसी बाधा आदि कामों के नाश करने में प्रवीण, आप की जय हो । योगिनी, चुड़ैल, बालकों की ग्रहबाधा, पिशाच, बेताल, भूत और प्रमथ वृन्द के आप नियंत्रण कर्ता हो ॥७॥

जयति वेदान्त विधि विविध विद्या विसद,
बेद बेदाङ्ग-बिद ब्रह्मबादी ।
ज्ञान वैराग्य विज्ञान भाजन बिभव,
विमल गुन गनत सुक नारदादी ॥८॥

आप शास्त्र-वेदान्त, विविध प्रकार की निर्मल विद्या, चार वेद और छह वेदांग - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्ति के ज्ञाता और ब्रह्म ज्ञानी हो, आपकी जय हो । ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के पात्र हो, जिनके विशुद्ध गुण को शुकदेव और नारद आदि मुनि गाते हैं ॥८॥

काल गुन कर्म माया मथन निरूचल,
ज्ञान व्रत सत्य-रत धर्म-चारी ।
सिद्ध सुरबन्द जोगीन्द्र सेवित सदा,
दासतुलसी प्रनत भय तमारी ॥९॥

आप काल, गुण, कर्म और माया को मथने वाले अर्थात इनका नाश करने वाले, ज्ञानव्रत में अटल, सत्य में तत्पर और धर्मानुसार चलनेवाले, सिद्ध देवतागण और योगेश्वरों द्वारा सदा सेवित और शरणागत तुलसीदास के भय रूपी अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य हो। ॥८॥

(२७)

मङ्गलागार संसार भारापहर, बानराकार-बिग्रह पुरारी।
राम रोषानल ज्वालमालामिष,-ध्वान्तचर सलभ संहार-कारी ॥१॥

मङ्गल के भवन, संसार-सम्बन्धी भार के हरनेवाले, वानर के प्राकृतिक देह धारण किये हुए आप साक्षात् शिव हैं। रामचन्द्रजी के

क्रोधाग्नि की ज्वाला के मूर्तिरूप राक्षस रूपी पतंगों के आप संहार करनेवाले हैं ॥१॥

जयति मरुदञ्जनामोद-मन्दिर नतग्रीव सुग्रीव दुःखैक बन्धो।
जातुधानोद्यत क्रुद्ध कालाग्नि हर, सिद्ध-सुर-सज्जनानन्द सिन्धो ॥२॥

पवनदेव और अंजनी के मनोविनोद के मन्दिर, दुःख से नीची गर्दन किये सुग्रीव के अद्वितीय सहायक-बन्धु, आप की जय हो । उन राक्षसों के क्रोध रुपी प्रलयाग्नि को नष्ट करनेवाले सिद्ध, देवता और सज्जनों के लिये आनंद के समुद्र हैं ॥२॥

जयति रुद्रागनी बिस्व विद्यायनी, विस्व विख्यात भट चक्रवर्ती ।
सामगाताग्रनी काम-जेताग्रनी, राम हित राम भक्तानुवर्ती ॥३॥

ग्यारह रुद्रों में प्रधान, संसार की विद्याओं में अग्रगण्य, जगद्विख्यात सार्वभौम योद्धा, आप की जय हो । सामवेद के गाने में प्रमुख गायनाचार्य, काम को जीतने में सर्वश्रेष्ठ रामचन्द्रजी के उपकारी ओर रामभक्तों के अनुयायी हैं ॥३॥

जयति संग्राम जय राम सन्देह हर,
कोसला कुसल कल्यान भाखी।
राम विरहार्क सन्तप्त भरतादि
नर-नारि सीतल-करन कल्पसाखी ॥४॥

संग्राम में जीत दिला कर, रामचन्द्रजी के सन्देह को हरनेवाले और अयोध्यापुरी के कुशल मंगल के कहनेवाले, आप की जय हो। रामचन्द्रजी के वियोग रूपी सूर्य से जलते हुए भरत आदि अयोध्यावासी स्त्री-पुरुषों को शीतल करनेवाले आप कल्पवृक्ष की शाखा स्वरुप हैं॥४॥

जयति सिंहासनासीन सीता-रमन, निरखि निर्भर हरष नृत्यकारी ।
राम-सम्माज सोभा सहित सर्वदा, तुलसि-मानस रामपुर बिहारी ॥५॥

सीतारमण को सिंहासन पर बैठे देख आनन्द से परिपूर्ण होकर नृत्य करने वाले, आप की जय हो । रामचन्द्रजी के साम्राज्य की शोभा के सहित सदा तुलसी के मन रूपी रामनगर अयोध्या में आप विहार करनेवाले हैं ॥५॥

(२८)

बात-सञ्ज्ञात विख्यात विक्रम रहबाहुबल बिपुल बालधि विसाला ।
जातरूपाचलाकार-विग्रह-लसत, लोम विद्युल्लता-ज्वाल माला ॥१॥

पवनकुमार प्रसिद्ध पराक्रमी, आजानबाहु अर्थात विशाल बाहू वाले, अत्यन्त बलवान और लम्बी पूंछवाले हैं। आपका सोने के पहाड़ की

प्रकृति का पीतवर्ण शरीर शोभायमान है और रोमावलियाँ बिजली की लता के समान प्रकाशमान हैं ॥१॥

जयति बालार्क बर बदन पिङ्गल-नयन,
कपिस कर्कस जटा जूट-धारी ।
बिकट भृकुटी बज-दसन-नख बैरि मद,
मत्त कुञ्जर पुज कुञ्जरारी ॥२॥

उदयकाल के सूर्य के समान श्रेष्ठ मुख, पीले नेत्र और लाल रंग मिश्रित भूरे रंग की जवानों का कठोर जूड़ा सिर पर धारण करनेवाले, आप की जय हो । टेढ़ी भौंह, वज्र के समान दाँत और नख, शत्रु रूपी मदोन्मत्त हाथियों के झुण्ड के लिये आप सिंह रूप हैं ॥२॥

जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्व,हर धनञ्जय-रथ त्रानकेतू।
भीषम द्रोन करनादि पालित काल,-दृक सुजोधन चमू निधन हेतू
॥३॥

भीमसेन, अर्जुन और गरुड़ के गर्व को हरनेवाले, अर्जुन के रथ में पताका पर बैठ कर रक्षा करनेवाले आप की जय हो। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण आदि वीरों से रक्षित काल की दृष्टिवाली दुर्योधन की सेना के आप ही नाश के कारण हैं ॥३॥

जयति गत राज दातार हरतार संसार-सङ्कट दनुज-दर्प-हारी ।
इति अति भीति ग्रह प्रेत चौरानल, व्याधि वाधा समन घोरमारी ॥४॥

सुग्रीव और विभीषण का गया हुआ राज्य देनेवाले, संसारी दु:खों के नाशक और राक्षसों के गर्व को हरनेवाले, आप की जय हो । आप राज्य के आक्रमणरूप खेती में बाधक अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे और पक्षी तथा महाभय ग्रह-पीड़ा, प्रेत, चोर, अग्नि, रोग और महामारी की बाधा आदि क्लेशों का नाश करने वालें हैं ॥४॥

जयति निगमागम-व्याकरन कर्नलिपि,
काव्य कौतुक कला कोटि सिन्धो ।
सामगायक भक्त-काम-दायक
वामदेव श्रीराम प्रिय प्रेम-बन्धो ॥५॥

वेद, शास्त्र, व्याकरण को सुन कर उस पर भाष्य लिखने वाले, काव्य के कौतक की कला में असंख्यों समुद्र के समान, आप की जय हो। आप सामवेद के गानेवाले, हरिभक्तों को वांछित फल प्रदान करने वाले, साक्षात् शंकर, श्रीरामचन्द्र जी के प्यारे और प्रेमी जनों के आप सहायक हैं ॥१॥

जयति धर्मान्सु सन्दग्ध सम्पाति नव, पच्छ लोचन दिव्य देह दाता।
काल कलि पाप सन्ताप सङ्कुल सदा, प्रनत तुलसीदास तात माता
॥६॥

सूर्य से जले हुए सम्पाति को नवीन पंख, नेत्र और सुन्दर शरीर देने वाले आप की जय हो । कलिकाल के पाप और दुःख से पूर्ण हुए दीन तुलसीदास की सदा रक्षा करने में आप पिता-माता है ॥६॥

(२९)

निर्भरानन्द-सन्दोह कपि-केसरी, केसरी-सुवन भुवनैक भर्ता ।
दिव्य भूम्यजना मञ्जुलाकर मने, भक्त-सन्ताप चिन्तापहर्ता ॥१॥

हे केशरीनन्दन ! श्राप पूर्णानन्द के राशि, वानरों में सिंह और भुवनमात्र के एक ही स्वामी हैं । अंजनी रूपी दिव्य भूमि की सुन्दर खान से उत्पन्न रत्न रूप आप भक्तों की चिन्ता और दुःख के हरनेवाले हैं ॥१॥

जयति धर्मार्थ कामापबर्गद विभो, ब्रह्लोकादि वैभव विरागी।
बचन मानस कर्म सत्य धर्मवती, जानकीनाथ चरनानुरागी ॥२॥

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष देने में समर्थ, ब्रह्मलोक आदि के ऐश्वर्य से विरक्त, आप की जय हो। आप वचन, मन और कर्म से सत्य तथा धर्मवत के पालक और सीतानाथ के चरणों के अनुरागी हैं ॥२॥

जयति विहँगेस बल बुद्धि बेगाति मद,
मथन मन्मथ मथन ऊर्धरेता ।
महानाटक निपुन कोटि कवि-कुल-तिलक,

गान गुन गर्व गन्धर्ब-जेता ॥३॥

गरुड़ के बल, बुद्धि और अत्यन्त वेग के घमण्ड को नष्ट करने वाले कामदेव के दर्प को छुड़ानेवाले बाल ब्रह्मचारी आप की जय हो। आप महानाटक-काव्य निर्माण करने में प्रवीण, करोड़ों कवि-कुल के शिरोभूषण और गानविद्या के गुण में गर्वीले गन्धर्वों पर विजय प्राप्त करने वाले वाले हैं ॥३॥

जयति मन्दोदरी केस करषन विद्यमान दसकंठभट मुकुट मानी।
भूमिजा दुःख-सञ्जात रोषान्तकृज्जातना जन्तु कृतजातु धानी॥४॥

रावण जैसे घमण्डी वीरशिरोमणि योद्धा की मौजूदगी में उसकी पटरानी मन्दोदरी के बाल पकड़ कर खींचनेवाले आप की जय हो। सीताजी के दुःख से उत्पन्न हुए क्रोध द्वारा राक्षसियों की वैसी ही दुर्दशा की जैसा कि यमराज पापी जीवों की किया करते हैं ॥४॥

जयति रामायन स्रवन सञ्जात रोमाञ्च लोचन सजल सिथिल बानी।
राम-पद पद्य-मकरन्द मधुकर पाहि, दासतुलसी सरन सूल-पानी ॥५॥

कानों से रामायण सुनकर रोमाञ्चित होकर आँखें सजल और वाणी गद्गद् हो जाती है, आपकी जय हो। रामचन्द्रजी के चरण-कमलों के रस के भ्रमर, हे हाथ में त्रिशूल शिवरूप हनुमान जी! या दास तुलसी आपका शरणागत है, इसकी रक्षा कीजिए ॥५॥

(३०)

<u>राग-सारङ्ग</u>

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजिआई यह रेखा कुलिस पखान की ॥१॥

जिसको सभी प्रकार से हनुमानजी का सहारा है, उसकी हर प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, यह वज्र से खींची हुई पत्थर की लकीर है ॥१॥

अघटित-घटन सुघट-विघटन अस, बिरदाबली न आन की।
सुमिरत सङ्कट सोच बिमोचन, मूरति मोद-निधान की ॥२॥

क्योंकि असंभव को संभव और संभव को असंभव करने वाला जैसा यश हनुमान जी का है वैसा यश किसी और का नहीं है । हनुमान जी की आनंदमयी मूर्ती का स्मरण करते ही समस्त कष्ट और सोच का नाश हो जाता है॥२॥

ता पर सानुकूल गिरिजा हर, लखन राम अरु जानकी ।
तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यान की ॥३॥

हनुमान जी के भक्त पर पार्वती, शिव, लक्ष्मण, रामचन्द्र और जानकी जी प्रसन्न रहते हैं । तुलसीदास जी कहते हैं कि हनुमानजी की कृपा दृष्टि सम्पूर्ण कल्याणों की खान है ॥३॥

(३१)

<u>राग-गौरी</u>

ताकिहै, तमकि ताकी ओर को ।
जाको है सब भाँति भरोसो, कपि केसरी-किसोर को ॥१॥

उसकी ओर क्रोध करके कौन देख सकता है जिसको सब तरह वानर केशरी के पुत्र हनूमानजी का भरोसा है ॥१॥

जन-रजन अरि-गन-गञ्जन मुख, भजन-खल बरजोर को।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल-सुभट-सिरमोर को ॥२॥

भक्तजनों को प्रसन्न, शत्रु-वृन्द का नाशक और दुष्टों का मुख चूर चूर करनेवाला हनुमान जी के अतिरिक्त बलवान और कौन है ? सम्पूर्ण शूरवीरों के शिरोमणि हनूमान जी का पराक्रम वेद और पुराणों में प्रसिद्ध है ॥२॥

उथपे-चपन थप्यो-उथपन करि, बिबुधन्ह बन्दीछोर को।
जलधि लंघि दहिलङ्क प्रबल दल, दलन निसाचर घोर को ॥३॥

उजड़े हुए सुग्रीव-विभीपण को बसा कर और बसे हुए बालि -रावण को स्थान भ्रष्ट करके देवताओं को कैद से छुड़ानेवाला हनुमान जी के अतिरिक्त और कौन है ? समुद्र लांघकर और लंका जलाकर

अत्यन्त बली भीषण राक्षसों की सेना का संहार करनेवाला आप के सिवा दूसरा कौन है ? ॥३॥

जा को बाल-विनोद समुझि जिय, डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुक चोट चूरन किय, रद मद कुलिस कठोर को ॥४॥

जिनकी बालपन की लीला का मन में ध्यान कर सवेरे के सूर्य डरते हैं। जिनकी ठोढ़ी की चोट ने कठोर वज्र के घमण्ड को चूर चूर कर दिया ॥४॥

लोकपाल अनुकूल बिलोकव, चहत विलोचन कोर को।
सदा अभय जय मुद-मङ्गलमय, जे सेवक रनरोर को ॥५॥

जिनके नेत्रों के कोने की कृपामयी चितवन को इन्द्रादि लोकपाल चाहते हैं। युद्ध में हाहाकर मचानेवाले पवनकुमार के जो सेवक हैं वह सदा निर्भय, विजयी और आनंद मंगल से भरे रहते हैं ॥५॥

भगत कामतरु नाम राम, परिपूरन चन्द चकोर को।
तुलसी फल चारो करतल जस,-गावत गई-बहोर को ॥६॥

भक्तों के कल्पवृक्ष, राम-नाम रूपी पूर्ण चन्द्रमा के चकोर और खोई हुई वस्तु के लौटानेवाले श्री हनूमान जी का यश गान करने से तुलसीदासजी कहते हैं अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों की प्रप्ति हो जाती है ॥ ६ ॥

(३२)

<u>राग-बिलावल</u>

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले ।
साहेब कहूँ न राम से तुम से न वसीले ॥ १॥

हे लठीले हनूमानजी | ऐसा आप को नहीं समझना चाहिये कि मेरे संकट की सूचना मेरे स्वामी तक नहीं पहुँचे। रामचन्द्रजी के समान कोई अन्य स्वामी नहीं है और आप से बढ़ कोई अन्य सहायक नहीं है अर्थात दयालु प्रभु की सेवा में मेरा समाचार पहुँचाने करने वाले केवल आप ही हैं ॥ १ ॥

तेरे देखत सिंह के सिसु, मेढक लीले ।
जानत हौं कलि तेरऊ मनु-गुन-गन कीले ॥२॥

आप के देखते हुए सिंह के बच्चे को मेढक निगल रहा है अर्थात आप जैसे सिंह स्वरुप के शरणागत मुझ बालक को कलियुग रूप मेंढक निगल रहा है, ऐसा मालूम होता है मानों कलियुग ने आप के गुण-समूह को भी अवरुद्ध कर दिया है ॥२॥

हाँक सुनत दसकन्ध के भये, बन्धन ढीले ।
सो बल गयउ किधौं अब भये, गर्ब गहीले ॥३॥

आप की ललकार सुनते ही रावण के बंधन ढीले पड़ गए थे अर्थात अंग प्रत्यंग हिल गए थे, आपका वह बल पराक्रम मेरी बारी में कहाँ चला गया या फिर अब आप गर्वीले हो गये हो ? ॥३॥

सेवक को परदा फटै तुम, समरथ सी ले ।
अधिक श्रापु तें आपनो सुनि, मानस हीले ॥४॥

सेवक का परदा फटता है, आप समर्थ हैं उसको सी लीजिये अर्थात सेवक की प्रतिष्ठा बचा लीजिए आप बड़े समर्थ हैं। पहले तो आप सेवक को अपने से अधिक मानते थे, उनका दुःख सुन कर आपका मन चञ्चल हो जाता था, अब क्या हो गया? ॥४॥

सासति तुलसीदास की लखि, सुजस तुहीं ले ।
तिहूँ काल तिनको भलो जो, राम रँगीले ॥५॥

तुलसीदास की दुर्दशा को देख कर आप ही उसको दूर करने का सुयश ले लीजिये, उसको हाथ से न जाने दीजिये। । जो रामचन्द्रजी के रंग में रंगे हैं उनकी तीनों काल में कल्याण होता है ॥५॥

(३३)

समरथ सुवन-समीर के रघुबीर पियारे ।
मो पर कीवी तोहि जो करि लेहि भिया रे ॥१॥

हे रघुनाथजी के प्यारे सर्व समर्थ पवनकुमार, भइया ! जो आप को मुझ पर अनुग्रह करना हो वह अभी कर लीजिये अब इससे बढ़ कर संकट का समय कौन आवेगा ?) ॥२॥

तेरी महिमा तेँ चलइ चिंञ्चिनी चियाँ रे ।
अँधियारो मेरी बार क्याँ त्रिभुवन उँजियारे ॥२॥

आप की महिमा से इमली का बीज भी मूल्यवान सिक्कों अशर्फी की भाँति चल सकते हैं अर्थात यदि तू चाहे तो मेरे जैसे निक्कामों की भी गणना भक्तों में हो सकती है। आप तीनों लोकों में उजाला करनेवाले हैं। फिर मेरी ही बारी में इतना अँधेरा क्यों कर रहे हैं ? ॥२॥

केहि करनी जन जानि के सनमान किया रे।
कहि अघ अवगुन आपनो करि छाडि दिया रे ॥३॥

किस करनी से मुझे अपना सेवक समझ कर सम्मान किया और किस पाप के दोष से अपना करके त्याग दिया है ? ॥३॥

खाई खाँची माँगि मैं तुव नाम लिया रे।
तेरे बल बलि आज लौँ जग जागिं जिया रे ॥४॥

मैंने तो आपका ही नाम लिया तथा भीख माँग कर खाया है। बलिहारी जाता हूँ। आप ही के बल पर आज तक जगत में जीता हूँ ॥४॥

जाँ तो साँ होतो फिरो मम हेतु हिया रे ।
तौ क्यों बदन दिखावतो कहि वचन इयारे॥५॥

यदि मेरा हार्दिक प्रेम आप से फिर गया होता तो मित्र की तरह बातें कह कर कैसे मुंह दिखाता ? अर्थात् विमुखी होने पर सहायता के लिये बिनती करने का साहस न होता ॥५॥

तो से ज्ञान-निधान को सर्वज्ञ बिया रे ।
समुभत साँई-द्रोह की गति छार छिया रे ॥६॥

आपके समान ज्ञाननिधान और सर्वज्ञ दूसरा कौन है ? स्वामिद्रोहियों की दशा मैं जानता हूँ, उनको तो नष्ट भ्रष्ट अवश्य ही हो जाना पड़ता है ॥६॥

तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिया रे ।
तहँ तुलसी कह कौन को काको तकिया रे ॥७॥

आप के स्वामी रामचन्द्रजी और स्वामिनी सीताजी के समान हैं, वहाँ तुलसी का समाचार पहुँचाने वाला कोई अन्य नहीं है। मुझे तो केवल आप का ही सहारा है।

(३४)

अति-भारत अति-स्वारथी, अति-दीन-दुखारी।
इनको बिलग न मानिये, बोलहिँ न विचारी ॥१॥

अत्यन्त दुखी, अत्यन्त स्वार्थी, अत्यन्त दीन और अत्यंत दुखी के कहे हुए वचनों का विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह घबराए हुए होने के कारण भले बुरे का विचार नहीं करते ॥२॥

लोक रीति देखी सुनी, ब्याकुल नर नारी।
अतिवरषे अनबरषेहूँ देहि देवहि गारी ॥२॥

संसार की रीति देखी सुनी है कि घबराये हुप स्त्री-पुरुष अतिवृष्टि होने पर और अनावृष्टि होने पर भी दैव को गाली देते हैं ॥२॥

नाकहि आये नाथ सों, सासति भई भारी ।
कहि आयउ कीवी छमा, निज ओर निहारी ॥ ३ ॥

जब भारी दुर्दशा हुई और नाक में दम आ गया, तब स्वामी से कहना पड़ा, अब अपनी ओर देख कर क्षमा कीजिये ॥३॥

समय सांकरे कर सुमिरिये, समरथ हितकारी।
सो सब विधि उपकार कर, अपराध बिसारी॥४॥

संकट के समय लोग समर्थ हितकारी स्वामी का स्मरण करते हैं और वह स्वामी अपराधों को भुला कर सब तरह सेवक की रक्षा करता है ॥२॥

विगरी सेवक की सदा, साहेबहि सुधारी।
तुलसी पर तेरी कृपा, निरुपाधि निरारी ॥५॥

सेवक से बिगड़ी हुई यात का सुधार सदा स्वामी ही करते हैं, फिर तुलसी पर तो आप को स्वार्थरहित निराली कृपा है ॥५॥

(३५)

कटु कहिये गाढ़े परे, सुनि समुझि सुसाँई।
करहिं अनभले को भलो, आपनी भलाई ॥१॥

जब संकट पड़ता है, अल्पज्ञ जन श्रेष्ठ स्वामी को कड़ी बात कहते हैं, उसको अच्छे स्वामी सुन समझ कर अपनी भलाई से बुरे सेवक का भी भला कर देते हैं ॥१॥

समरथ सुभ जे पावहीं, बीर पीर पराई।
ताहि तके सब ज्यों नदी, बारिधि न बुलाई ॥२॥

जो भलाई करने में समर्थ दयावीर हैं और पराये की पीड़ा पर द्रवीभूत होते हैं, उनके समीप समस्त आर्त मनुष्य ऐसे दौड़ते हैं जैसे बिना बुलाये नदियाँ समुद्र के पास जाती है ॥२॥

अपने अपने को भलो, चहइँ लोग लुगाई।
भावइ जो जेहि तेहि भजइ, सुभ असुभ सगाई ॥३॥

क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी अपनी अपनी भलाई चाहते हैं। उसके लिये भले बुरे का सम्बन्ध, जिसको जो अच्छा लगता है वह उसी की सेवा करता है ॥३॥

बाँह बोल देइ थापिये, जो निज बरिपाई।
बिनु सेवा सो पालिये, सेवक की नाँई ॥४॥

जिसको आपने अपनी भुजाओं के बल से आपने बलात अपनी शरण में ले लिया, अब यदि अह आपकी सेवा नहीं भी करता है तब भी आपको उसका पालन सेवक ही की तरह करना चाहिए ॥४॥

चूक चपलता मेरिये, तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ है, अति नीच निचाई॥५॥

जल्दबाजी की चूक मेरी ही है, आप बड़े हैं और मुझ जैसों को क्षमा करने में आप की बड़ी महिमा है । अत्यन्त नीच प्राणी आदर करने से ढीठ बन जाते है और नीचता करने लगते हैं जैसा कि मैंने किया है ॥५॥

बन्दिछोर बिरदावली, निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को, तेरियै निकाई ॥६॥

आप बन्धनों से मुक्त करने वाले हैं, आपका ऐसा सुयश वेद और शास्त्र गाते हैं। तुलसी दास की भलाई आप ही के भलेपन से होगी ॥६॥

(३६)

<u>राग-गौरी</u>

मङ्गलं-मूरति मारुत-नन्दन।
सकल अमङ्गल-मूल निकन्दन॥१॥

पवनकुमार महल की मूर्ति और समस्त अमंगलों का जड़ से समूल नाश करने वाले हैं ॥२॥

पवन-तनय सन्तन्ह हितकारी हृदय विराजत अवध-विहारी ।
मातु पिता गुरु गनपति सारद । सिवा समेत सम्भु सुक नारद ॥२॥

पवन नन्दन श्री हनुमान जी सन्तों के हितकारी है, उनके हृदय में श्रीरामचन्द्रजी विराजते हैं। माता, पिता, गुरु, गणेश, सरस्वती, पार्वतीजी के सहित शंकर, शुकदेव और नारद मुनि ॥२॥

चरन बन्दि बिनवउँ सब काहू । देहु राम-पद नेहु निबाहू ।
बन्दउँ राम लखन बैदेही । जे तुलसी के परम सनेही ॥३॥

इन सभी के चरणों की वन्दना करके विनती करता हूँ कि रामचन्द्रजी के चरणों में स्नेह निबाहने की क्रिया का वर मुझे दीजिये । रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और जानकीजी को प्रणाम करता है, जो तुलसी के परम प्रेमी और सर्वस्व हैं ॥३॥

(३७)

लाडिले लखनलाल हित हौ जन के ।
सुमिरे सङ्कट हारि सकल मङ्गलकारि,
पालक कृपाल अपने पन के ॥१॥

हे प्यारे लक्ष्मणलालजी! आप सेवकों के हितकारी हैं । स्मरण करने से दुःख के हरनेवाले, सम्पूर्ण मंगलों को करनेवाले, अपनी की हुई प्रतिज्ञा के पालने वाले और दया के स्थान हैं ॥१॥

धरनी धरनहार भञ्जन भुवन भार, अवतार साहसी सहस फन के।
सत्यसन्ध सत्यव्रत परम-धरम-रत, निर्मल करम बचन अरु मन के ॥२॥

धरती के धारण करनेवाले, पृथ्वी के भार का नाश करनेवाले, आप पराक्रमी शेषनाग के अवतार हैं । सत्यवादी, सत्यवती, अत्युत्तम धर्म में तत्पर, कर्म, वचन और मन से निर्मल हैं ॥२॥

रूप के निधान धनु-बान-पानि तून-कटि,

महाबीर बिदित जितैया बड़े रन के ।
सेवक सुखदायक सबल सब लायक,
गायक जानकीनाथ गुन-गन के ॥३॥

शोभा के स्थान, हाथ में धनुप-बाण लिये, कमर में तरकस बाँधे और प्रसिद्ध उत्तम महावीरों को रण में जीतनेवाले हैं। सेवकों को सुख देनेवाले, सामर्थ्यवान, सब प्रकार से योग्य और जानकीनाथ के गुणों को गानेवाले हैं ॥३॥

भावते भरत के सुमित्रा-सीता के दुलारे,
चातक चतुर राम स्याम घन के ।
बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेह बस,
धनी-धन तुलसी से निरधन के ॥४॥

भरत जी के प्यारे, मुमित्रा और सीता जी के दुलारे तथा रामचन्द्रजी रूपी श्याम मेघ के आप चतुर पपीहा हैं। उर्मिला के प्राणेश्वर, स्नेह के अधीन सहज में मिलनेवाले और तुलसी जैसे निर्धनी के लिये आप धन-कुबेर हैं ॥४॥

(३८)

<u>राग-धनाश्री</u>

लक्ष्मनानन्त भगवन्त भूधर भुजगराज भुवनेस भू-भार हारी ।
प्रलय पावक महाज्वालमाला वमन, समन सन्ताप लीलावतारी॥१॥

हे लक्ष्मणजी ! आप अनन्त ऐश्वर्य शाली, भूमि को धारण करनेवाले शेषनाग के अवतार, लोकों के स्वामी और धरती के भार को हरनेवाले हैं। क्रोध के समय प्रलयाग्नि की प्रचण्ड ज्वालमाला को उगलने वाले, दुःख के नाशक और अपनी लीला वश अवतार धारण करने वाले हो ॥३॥

दासरथि समर समरथ सुमित्रा सुवन, सत्रूसूदन भरम राम बन्धो ।
चारु चम्पक बरन वसन भूषन धरन, दिव्यतर भव्य लावन्य-सिन्धो
॥२॥

दशरथ महाराज के पुत्र, संग्राम में समर्थ, सुमित्रानन्दन, शत्रुघन, भरत और रामचन्द्रजी के भाई हैं। सुन्दर चम्पा के रङ्ग पीत वस्त्र और अत्यन्त दिव्य आभूपण धारण किये, कल्याण रूप तथा शोभा के समुद्र हैं ॥२॥

जयति गाधेय-गौतम-जनक सुख-जनक,
बिस्व कंटक कुटिल कोटि हन्ता।
बचन चय चातुरी परसुधर-गर्व-हर,
सर्बदा रामभद्रानुगन्ता ॥३॥

विश्वामित्र, गौतमऋषि, राजाजनक को सुख उत्पन्न करने वाले और संसार के कण्टक रूपी दुष्टो के समुदाय के नाशक, आप की जय

हो । वचनों की अपार चतुराई से परशुरामजी के गर्व को हरनवाले और सदा कल्याण रूप रामचन्द्रजी के पीछे चलनेवाले हैं ॥३॥

जयति सीतेस सेवा सरस विषय-रस-निरस निरुपाधि धुर धर्म-धारी।
बिपुल बल-मूल सार्दूल बिक्रम जलदनाद मर्दन महाबीर भारी ॥४॥

सीतानाथ की सेवा में रसीले, विषयानन्द से रूखे, उपाधि रहित और धर्म के बोझ को धारण करनेवाले आप की जय हो । अत्यन्त बल के मूल, सिंह के समान पराक्रमी और बडे भारी शूरवीर मेघनाद का आप संहार करनेवाले हैं ॥४॥

जयति संग्राम-सागर-भयङ्कर तरन, राम हित करन बर बाह सेतु।
उर्मिला-रवन कल्यान-मङ्गल भवन, दासतुलसी दोष दवन हेतू
॥५॥

भयंकर समर रूपी समुद्र से रामचन्द्र जी को पार करने के लिये अपनी भुजाओं के पुल बनानेवाले, आपकी जय हो । उर्मिलाकान्त, कल्याण-मंगल के स्थान और तुलसीदास के दोषों के नाश करने में आप आदिकारण हैं ॥५॥

(३९)

भूमिजा-रमन-पद-कब मकरन्द रस, रसिक-मधुकर भरत भूरि भागी ।
भुवन-भूषन भानुबंस-भूषन, भूमिपाल-मनि रामचन्द्रानुरागी ॥१॥

सीतानाथ रामचन्द्र जी के चरण कमलों के स्नेह रूपी रस के रसिक भरतजी बड़े भाग्यवान भ्रमर रूप हैं । संसार के भूषण, सूर्यकुल के तिलक और राजाओं के शिरोमणि श्रीराम चन्द्रजी के प्रेमी हैं ॥१॥

जयति बिबुधेस-धनदादि दुर्लभ
महाराज सम्म्राज सुख पद-विरागी ।
खड्गधारा व्रती प्रथम रेखा प्रगट,
सुद्ध मति जुबति पति-प्रेम-पागी ॥२॥

इन्द्र, कुबेर आदि लोकपालों को भी जो अत्यंत दुर्लभ हैं, ऐसे दुष्प्राप्य महाराज दशरथजी के साम्राज्य-सुख के अधिकार से विरक्त होने वाले, आप की जय हो। सेवा-धर्म कठिन खड्ग की धार है, उस व्रत के निबाहने में जिनका प्रथम चिह्न प्रसिद्ध है और जिनकी पवित्र बुद्धि रूपिणी स्त्री पति रामचन्द्रजी के प्रेम में सराबोर अर्थात आदर्श पतिव्रता रूपी है ॥२॥

जयति निरुपाधि भक्ति-भाव जन्त्रित हृदय,
बन्धु हित चित्रकूटाद्रिचारी।
पादुका नृप सचिव पुहुमि पालक परम,
धीर गम्भीर वर वीर भारी ॥३॥

निश्चल भक्तिभाव से द्रवित हृदय भाई रामचन्द्रजी के लिए चित्रकूट पहाड़ पर पैदल जाने वाले, आप की जय हो। जो श्रीराम जी की

पादुका रुपी राजा के मंत्री बनकर पृथ्वी का पालन करते रहे, जो अत्युत्तम साहसी, अच्छे सहनशील और बड़े शूरवीर हैं ॥२॥

जयति सञ्जीवनी समय सङ्कट हनूमान धनु-बान महिमा बखानी ।
बाहुबल विपुल परमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकी-जान जानी ॥४॥

संजीवनी लाते समय संकट में पड़ कर हनुमानजी ने जिनके धनुष - बाण की महिमा का वर्णन किया था, आप की जय हो । जिनकी भुजाओं में बड़ा बल है, जिनका असीम पराक्रम है और जो जानकीनाथ के गूढ़ रहस्यों के जाननेवाले हैं ॥४॥

जयति रन-अजिर गन्धर्व-गन गर्व-हर,
फेरि किय राम-गुन गाथ गाता।
मांडवी चित्त चातक नवाम्बुद बरन,
सरन तुलसीदास अभय-दाता ॥ ५॥

जिन्होंने संग्राम में गन्धर्वों के गर्व का नाश कर फिर उन्हें रामचन्द्रजी के गुणों की कथा का गानेवाला बनाया, आप की जय हो। माण्डवीजी के चित्त रूपी चातक के लिए नवीन मेघ के वर्ण वाले और शरणागत तुलसीदास का निर्भय पद देने वाले हैं ॥५॥

(४०)

जयति जय सत्रु-करि केसरी सत्रुहन,
सत्रु-तम-तुहिन-हर किरनकेतू ।
देव महिदेव महि धेनु सेवक सुजन,
सिद्ध मुनि सकल कल्यान-हेतू ॥१॥

हे शत्रुघ्नजी ! श्राप शत्रु रूपी हाथी के लिये सिंह, शत्रु रूपी अन्धकार और हिम के लिये सूर्य रूप है, आप की जय हो, जय हो । देवता, ब्राह्मण, पृथ्वी, गौ, हरिभक्त, सज्जन, सिद्ध और मुनि सब से कल्याण करने वाले हैं ॥१॥

जयति सर्वाङ्ग सुन्दर सुमित्रा-सुवन, भुवन विख्यात भरतानुगामी।
बर्म चर्मासि धनु बान तूनीर धर, सत्रु सङ्कट समन यत्प्रनामी ॥२॥

सर्वांग सुन्दर, सुमित्रानन्दन, लोकों में प्रसिद्ध और भरतजी के अनुयायी, आप की जय हो । कवच, ढाल, तलवार, धनुष, वाण और तरकस धारण किये, प्रणाम करनेवालों के शत्रु संकट को नष्ट करनेवाले हैं ॥२॥

जयति लवनाम्बुनिधि कुम्भ-सम्भव महा,
दनुज दुर्जन दवन दुरित-हारी ।

लछमनानुज भरत राम-सीता-चरन,
रेनु भूषित भाल तिलक-धारी ॥३॥

लवण दैत्य रूपी समुद्र के लिये अगस्त्य मुनि रूप, बड़े बड़े दुष्ट दानवों के नाशक और पाप के हरनेवाले, आप की जय हो। लक्ष्मणजी के छोटे भाई, भरतजी, रामचन्द्रजी और सीताजी के चरणों की धूलि माथे पर तिलक धारण किये हुए शोभायमान हैं ॥३॥

जयति सुतिकीर्ति-बल्लभ सदुर्लभ,
सुलभ,नमत नर्मदभक्तभक्ति दाता ।
दासतुलसी चरन-सरन सीदत बिभो,
पाहि दीनात्ते सन्ताप-हाता ॥४॥

श्रुतिकीर्ति के प्रियतम, श्रेष्ठ, दुर्लभ,सहज में मिलनेवाले, प्रणाम करनेवालों को कल्याण दायक, भक्तों को भक्ति देनेवाले, आप की जय हो । प्रभो! आप दीन दुखियाओं के दुःख का नाश करनेवाले हैं, आपके चरणों की शरण में तुलसीदास खिन्न हो रहा है, रक्षा कीजिये ॥४॥

(४१)

राग-केदारा

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
मेरियो सुधि द्याइबी कछु, करुन कथा चलाइ॥१॥

हे माता जानकीजी ! कमी समय पा कर श्री राम चन्द्र जी से कुछ दया भरी चर्चा चला कर मेरी भी सुधि दिलाइयेगा ॥१॥

दीन सब अंग-हीन छीन, मलीन अघी अघाइ ।
नाम लेइ भरे उदर एक प्रभुदासी दास कहाइ ॥२॥

ऐसा कहियेगा की एक दीन और साधन के सभी अङ्गों से हीन, खिन्न, मलिन और पापों से भरा हुआ मनुष्य आपकी दासी तुलसी का दास कहला कर और केवल पेट भरने के लिये आपका नाम लेता है ॥२॥

बूझिहँ सो कौन कहिबी, नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपाल के मम, बिगरियो बनि जाइ ॥३॥

जब स्वामी पूंछे कि वह कौन है ? तब आप मेरा नाम लेकर दशा सूचित कर देना। कृपालु रामचन्द्रजी के इतना सुन लेने से ही मेरी बिगड़ी बात भी बन जायेगी ॥३॥

जानकी जग-जननि जन की, किये बचन सहाइ ।
तरइ तुलसीदास भव तव, नाथ गुन-गनं गाइ ॥४॥

हे जगन्माता जानकीजी ! यदि आप इस दास की वचनों से सहायता करेंगी तो तुलसीदास आप के स्वामी श्री रामचन्द्रजी का गुण गान करके संसार से पार हो जायेगा ॥४॥

(४२)

कबहुँ समय सुधि द्याइबी, मेरि मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेत हाँ किये पन, चातक ज्याँ प्यास प्रेम पान की
॥१॥

हे माता जानकीजी ! कभी मौके पाकर मेरी याद स्वामी को दिलाइयेगा। मैं उनका सेवक कहला कर नाम लेता हूँ और पपीहा की तरह प्रतिक्षा किये हुए, प्रेम रूपी जल पीने के लिये प्यासा हूँ ॥१॥

सरल प्रकृति आपुजानिये, करुनानिधान की।
निज-गुन अरि कृत-अनहितउ दास-दोष,
सुरति चित रहति न दिये दान की ॥२॥

आप जानती हैं कि दयानिधान रामचन्द्रजी का स्वभाव अत्यंत सरल है। उन्हें अपना गुण, शत्रु द्वारा किया हुआ अपकार, दासों के अवगुण और दिये हुए दान की याद उनके मन में नहीं रहती अर्थात् उपर्युक्त चारों वाते भुला देते हैं ॥ २॥

बानि बिसारन-सील है, मानद अमान की ।
तुलसिदास न विसरिये मन क्रम बचन,
जा के सपनेहुँ गति नपान की॥३॥

उनकी आदत भूल जाने की है, वह अपने आप मान रहित और दूसरों को मान देनेवाले हैं। तुलसीदास को मन, कर्म और वचन से सपने में भी दूसरे का सहारा नहीं है, कहीं इसको भूल न जाएँ ॥३॥

(४३)

राग-धनाश्री

जयति जय सच्चिदानन्द ब्यापक ब्रह्म, विग्रह ब्यक्त लीलावतारी ।
बिकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध सङ्कोच-बस, बिमल गुन गेह नर देह धारी
॥ १ ॥

सत् चित् आनन्द के रूप परमात्मा, सर्वव्यापी, आदिपुरुष, खेल से जन्म लेकर सशरीर प्रकट होनेवाले आप की जय हो ब्रह्मा आदि देवता और सिद्धों को व्याकुल देख कर उनके संकोच के अधीन हो निर्मल गुणों संपन्न मनुष्य देह धारण करनेवाले हैं ॥१॥

कोसलाधीस कल्यान-कोसलसुता,
कुसल कैवल्य फल चारु चारी।
वेद-बोधित कर्म-धर्म-धरनी-धेनु,
विप्र-सेवक-साधु मोदकारी ॥२॥

अयोध्या के राजा, कल्याण रूपिणी पुण्यशीला कौशल्याजी के यहाँ चार भाइयों रूप के उत्पन्न हुए मोक्ष के सुन्दर चार फल – सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य हैं । वेदों के बताये हुए कर्म, धर्म,

धरती, गौ, ब्राह्मण, सेवक और साधुजनों को आनन्दित करनेवाले हैं ॥२॥

जयति रिखि-मख-पाल समन सज्जन साल,
साप बस मुनिबधू पाप-हारी ।
भजि भव-चाप दलि दाप भूपावली,
सहित भृगुनाथ नतमाथ-भारी ॥३॥

विश्वामित्र मुनि के यज्ञ -रक्षक, सज्जनों के दुःख नाशक और शाप के अधीन ऋषिपत्नी अहिल्या के पाप दूर करनेवाले आप की जय हो । शिवजी के धनुष को तोड़ कर राजाओं के दल का दर्प चूर्ण किया और परशुरामजी का बहुत मस्तक झुका कर गर्व पर प्रहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

धार्मिक धीर धुर बीर रघुबीर गुरु,-मातु-पितु-बन्धु बचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रि बिन्ध्याद्रि दंडक-विपिन, धन्यकृत पुन्य-कानन-बिहारी ॥४॥

रघुनाथजी धर्मात्मा, असाधारण साहसी, बलवान, गुरु, पिता, माता और भाइयों के कथनानुसार चलनेवाले हैं। चित्रकूटपर्वत, विन्ध्याचल और दण्डकवन को धन्य किया, पुण्य रूपी वन में विहार करनेवाले हैं ॥४॥

जयति पाकारि-सुत काक करतूति फल,
दानि खनि गर्त गोपित बिराधा।
दिब्य देबी बेष देखि लखि निसिचरी,
जन बिडम्बित करी बिस्व-बाधा ॥५॥

इन्द्र के पुत्र जयन्त रुपी कौए कप उसकी करनी का फल देनेवाले और गड्ढा खोद कर विराध राक्षस को उसमें गाड़ने वाले, आप की जय हो । दिव्य देवाङ्गनाओं के वस्त्रालंकार से सुसज्जित शूर्पणखा राक्षसी को देख उसे पहचान कर मानो संसारभर को व्यथित करने वाले रावण को अपमानित किया ॥५॥

जयति खर त्रिसिर दूषन चतुर्दस सहस-सुभट मारीच संहार कर्ता।
गिद्ध सबरी भक्ति-बिबस करुनासिन्धु, चरित निरुपाधि त्रिविधार्ति हर्ता ॥६॥

खर, दूपण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसों और मारीच राक्षस के संहार करनेवाले, आप की जय हो । गिद्ध और शबरी की भक्ति के अधीन होकर उनका उद्धार करने वाले, दया के सागर, निष्कलंक चरित्र और तीनों तापों का हरण करनेवाले हैं ॥६॥

जयति मद अन्ध कुकबन्ध-बधि बालि बल,
सालि बध करन सुग्रीव राजा ।
सुभट मर्कट भालु कटक सङ्घट सजत,

नमत पद रावनानुज निवाजा ॥७॥

मदान्ध नीच कवन्ध के नाशक, बलवान बालि का वध करनेवाले और सुग्रीव को राजा बनाने वाले आप की जय हो । आप वानर भालू शूरवीरों की सेना को एकत्र कर व्यूहाकार सजाने वाले और चरणों में प्रणाम करते ही रावण के छोटे भाई विभीपण पर दया करनेवाले हैं ॥७॥

जयति पाथोधि कृत सेतु कौतुक हेतु,
काल मन अगम लइ ललकि लङ्का ।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रन,
लोक लोकप किये रहित सङ्का ॥८॥

खेल ही खेल में समुद्र पर पुल बनवाने वाले और काल के मन में भी दुर्गम लंका को उत्साह के साथ जीतने वाले, आप की जय हो । आपने सपरिवार, छोटे भाई - कुम्भकर्ण और सेना के सहित संग्राम में रावण का संहार करके लोक तथा लोकपालों को निर्भय किया है ॥८॥

जयति सौमित्रि सीता सचिव सहित चलि,
पुष्पकारूढ़ निज राजधानी ।
दासतुलसी मुदित अवधबासी सकल,
राम भे भूप बैदेहि रानी ॥९॥

लक्ष्मण, सीताजी और मन्त्रियों के सहित पुष्पक विमान पर सवार होकर अपनी राजधानी अयोध्या की ओर चले, आप की जय हो ।

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी राजा हुए और सीताजी रानी हुई, सम्पूर्ण अयोध्या-निवासी प्रसन्न हुए ॥९॥

(४४)

राज राजेन्द्र राजीव लोचन राम, नाम कलि कामतरु स्याम साली।
अनय अम्भोधि कुम्भज निसाचर निकर, तिमिर घनघोर खर
किरनमाली ॥ १॥

हे राजाधिराज कमल-नयन श्रीरामचन्द्रजी ! कलियुग में आप का नाम श्यामता युक्त 'कल्पवृक्ष' है। आप अनीति रूपी समुद्र के अगस्त्य और राक्षस वृन्द रूपी भीषण अन्धकार केलिये तीव्र सूर्य हैं ॥१॥

जयति मुनिदेव नरदेव दसरथ्थ के,
देव मुनि बन्ध किय अवधबासी।
लोक नायक कोक सोक सङ्कट समन,
भानुकुल कमल-कानन बिकासी ॥२॥

हे दशरथनन्दन ! आप मुनियों के देव और मनुष्यों के देवता हैं, अयोध्या वासियों को देवता तथा मुनियों से वन्दनीय किया, आपकी जय हो। लोकपाल रूपी चक्रवाकों के शोक और संकट का नाश करने वाले तथा सूर्यकुल रूपी कमल-धन के प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य हैं ॥२॥

जयति सिङ्गार रस तामरस-दाम-दुति, देह गुनगेह विस्वोपकारी।
सकल सौभाग्य सौन्दर्य सुखमारूप, मनोभव कोटिग पहारी ॥३॥

आप श्रृंगार रस की साक्षात मूर्ति हैं, आपकी नीले कमल की माला के समान शरीर की कान्ति है, आप सम्पूर्ण गुणों के स्थान और समस्त संसार का उपकार करने वाले हैं, आप की जय हो । सम्पूर्ण सौभाग्य, सुन्दरता और अतिशय शोभा के रूप आप करोड़ों कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले हैं ॥३॥

सुभग सारङ्ग सुनिखङ्ग सायक सक्ति,
चारु चर्मासि वर वर्म धारी ।
धर्म धुर धीर रघुवीर भुजवल अतुल,
हेलया दलित भू भार भारी ॥४॥

सुन्दर शार्ना धनुष, उत्तम तरकस, बाण, शक्ति, सुहावनी ढाल, तलवार, श्रेष्ठ कवच धारण करनेवाले रघुनाथजी धर्म-धुरन्धर हैं । इनकी भुजाएँ अपरिमित बल से भरी हैं और खेल ही खेल में यह पृथ्वी के अत्यंत विशाल भार को नष्ट करनेवाले हैं ॥४॥

जयति कलधौत मनि मुकुट कुंडल सवन,
तिलक भल भाल विधु-बदन सोभा।
दिव्य भूषन वसन पीत उपवीत किय,
ध्यान कल्यान भाजन न को भा ॥५॥

सुवर्ण और मणियों के मुकुट, कानों में कुण्डल, माथे पर सुन्दर तिलक और चन्द्रमा के समान मुखमण्डल शोभायमान है, आप की जय हो। दिव्य आभूपण, पीताम्बर और जनेऊ धारण किये हुए रूप का ध्यान करने से कौन कल्याण का पात्र नहीं हुआ है ? ॥५॥

भरत सौमित्रि सत्रुघ्न सेवित सुमुख,
सचिव सेवक सुखद सर्व दाता।
अधम भारत दीन पतित पातक पीन,
सकृत नतमात्र कहि पाहि पाता ॥६॥

भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से सेवनीय, प्रसन्न मुख, मन्त्री और सेवकों को सुखदायक, भक्तों को सर्वस्व प्रदान करने हैं। आप दुखी, गरीब, अधम, महापापी, धर्मत्यागी प्राणी के एक बार प्रणाम मात्र कर लेने से और मात्र 'मेरी रक्षा कीजिये' कहने से उनको शरण में ले लेते हैं ॥६॥

जयति जय भुवन दस चारि जस जगमगत,
पुन्यमय धन्य जय राम राजा।
चरित सुरसरित कवि-मुख्य-गिरि-निःसरित,
पिवत मज्जत मुदित सतसमाजा ॥७॥

हे राजा रामचन्द्रजी! आप का पुण्य रूप धन्य यश चौदहों लोकों में जगमगा रहा है, आप की जय हो, जय हो, जय हो। प्रधान कवि

वाल्मीकि रूपी पर्वत से कीर्ति रूपिणी गंगा नदी निकली है, जिसमें प्रसन्नता से सज्जनमण्डली स्नान और पान करती है ॥७॥

जयति बरनास्त्रमाचार पर नारि नर,
सत्य सम दम दया दान-सीला।
बिगत दुख दोष सन्तोष सुख सर्बदा, सुनत गावत राम-राज-लीला
॥८॥

श्री राम चन्द्र की जय हो, जिनके राज्य में चारों वर्ण और आश्रम के श्रेष्ठ स्त्री-पुरुष सत्यवादी, समता युक्त, जितेन्द्रिय, दयावान और दानशील हैं, वह राम-राज्य की लीला सदा सुख सन्तोष के साथ सुनते और गाते हैं जिस से दुःख और दोष उनके दूर हो जाते हैं ॥८॥

जयति बैराग्य बिज्ञान बारान्निधे,नमत नर्मद पाप-ताप हर्ता ।
दासतुलसी चरन सरन संसय हरन, देहि अवलम्ब बैदेहि-भर्ता ॥६॥

वैराग्य और विज्ञान के सागर, प्रणाम करनेवालों को कल्याण-दायक, पाप और दुःख का हरण करने वाले आप की जय हो । हे जानकीनाथ ! तुलसीदास आपके चरणों के शरण में है, आप सन्देह को हरनेवाले हैं, मुझे आश्रय दीजिये ॥६॥

(४५)

राग-गौरी

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरन भव भय दारुनं ।
नव कञ्ज लोचन कन्ज-मुख कर, कज पद-कञ्जारुनं ॥१॥

हे मन ! कृपालु श्रीरामचन्द्रजी को भज, वह भयंकर संसार के जन्म मरण रूप भय का नाश करने वाले हैं। उनके नेत्र नवीन कमल के समानहैं, मुख हाथ और चरण भी लाल कमल के सदृश्य हैं ॥१॥

कंदर्प अगनित अमित छबि, नव नील नीरज सुन्दरं ।
पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि, नौमि जनक-सुता-बरं ॥२॥

उनका नवीन श्यामकमल के समान सुन्दर शरीर, असंख्यो कामदेव की अपार शोभा से परिपूर्ण है। उनके शरीर पर पीताम्बर मेघ रुपी शरीर में बिजली के समान चमक रहा है, ऐसे पावन रूप जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

भजु दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्य बंस निकन्दनं ।
रघुनन्द आनदकन्द कोसल,-चन्द दसरथ-नन्दनं ॥३॥

हे मन ! दुखी जनों के सहायक, सूर्य के समान तेजस्वी, दानव और दैत्यकुल के वंश का समूल नाश करने वाले, रघुकुल को प्रसन्न करने

वाले, आनन्द के मूल, अयोध्यानगरी के चन्द्रमा दशरथनन्दन श्री रामचन्द्र जी का भजन कर ॥३॥

सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु, उदार अंग विभूषनं ।
आजानु-भुज सर चाप धर, संग्रामजित खर दूषनं ॥४॥

सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, मस्तक पर सुन्दर तिलक और अंगों में श्रेष्ठ आभूषण शोभायमान है । जिनकी भुजाएं लम्बी हैं, जो धनुषवाण धारण किये युद्ध में खर और दूषण को जीतनेवाले हैं ॥४॥

इति वदत तुलसीदास सङ्कर, सेष मुनि मन रञ्जनं ।
मम हृदय का निवास करि, कामादि खल दल गञ्जनं ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजी, शेषजी और मुनियों के मन को प्रसन्न करनेवाले हैं। मेरे हृदय रूपी कमल में निवास करके काम क्रोध लोभ आदि दुष्ट-समूह का नाश करें ॥५॥

(४६)

राग-रामकली

राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु, राम जपु मूढ़ मन बार बारं।
सकल सौभाग्य सुख-खानि जिय जानि सठ, मानि बिस्वास वद बेद-सारं ॥१॥

अरे मूर्ख मन ! सदा सदैव राम जप, राम जप, राम जप, राम जप, राम जप । रे मूर्ख ! जिसको वेद तत्व रूप कहते हैं, विश्वास मान कर मन में सम्पूर्ण सुखों की खान समझ कर राम नाम का स्मरण कर ॥१॥

कोसला इन्द्र नव नील कञ्जाभ तनु, मदनरिपु कञ्ज-हृदि चञ्चरीकं।
जानकी-रवन सुख-भवन भुवनैक-प्रभु, नम भज स्मर परम कारुनीकं ॥२॥

अयोध्या के राजा, नवीन नील कमल के समान शरीर की कान्ति है और कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के हृदय रूपी कमल के भ्रमर हैं। जानकीजी को रमानेवाले, सुख के मन्दिर भुवन मात्र के एक ही स्वामी परम दयालु श्री रामचन्द्रजी को नमस्कार कर, उनका भजन कर और उन्हीं का स्मरण कर ॥२॥

दनुज-बन-धूमध्वज पीन आजानुभुज,दंड कोदंड बर चंड बानं ।
अरुन कर चरन मुख नयन-राजीव गुन,अयन बहु मयन सोभा-निधानं ॥३॥

राक्षस रूपी वन के दावानल, पुष्ट लम्बे भुजदण्ड, उत्तम धनुष और तीक्ष्ण बाण धारण किये, लाल कमल के समान, हाथ, पाँव, मुख और नेत्र, गुणों के मन्दिर बहुत से कामदेव की शोभा के स्थान हैं ॥३॥

बासनाबृन्द-कैरव-दिवाकर काम-क्रोध-मद-कञ्ज-काननतुषारं।
लोभ अति मत्त नागेन्द्र पञ्चाननं, विप्र हित हरन संसार भारं ॥४॥

विविध कामना रूपी समूह कुमुद वन का नाश करने वाले सूर्य, काम, क्रोध और घमण्ड रूपी कमल वन का नाश करने के लिए हिम रूप हैं। लोभ रूपी अत्यन्त मतवाले गजेन्द्र के लिये सिंह रूप, ब्राह्मणों के हितकारी और संसार के पाप के हरनेवाले हैं ॥४॥

केसवं क्लेसहं केस बन्दित पद-इन्द मन्दाकिनी मूल-भूतं ।
सर्बदानन्द सन्दोह मोहापहं, घोर संसार-पाथोधि पोतं ॥ ५ ॥

विष्णु, क्लेश का नाश करनेवाले, जिनके युगल चरण की वन्दना शिवजी करते हैं और जो गंगा जी का उद्गम स्थान हैं। सदा अनिन्द के राशि, मोह के नाशक और संसार रूपी भीषण समुद्र के जहाज रूप हैं ॥५॥

सोक-सन्देह पाथोद-पटलानिलं, पाप पर्वत कठिन कुलिस रूपं ।
सन्तजन कामधुकधेनु बिस्त्राम-प्रद, नाम कलि कलुष भजन अनपं
॥६॥

शोक और सन्देह रूपी बादलों की पंक्ति छिन्न भिन्न करने में पवन रूप, पाप रुपी पर्वत को भेदनेवाले कठोर वन रूप हैं । सन्त जनों को आनन्द देने में कामधेनु रूप और जिनका नाम कलि के पापों को चूर चूर करने में अद्वितीय प्रभावशाली है ॥६॥

धर्म-कल्पद्रुमं नाम हरिधाम पथ,-सम्बलं मूलमिदमेवमेकं ।
भक्ति बैराग्य विज्ञान सम दान दम, नाम आधीन साधन अनेक
॥७॥

जिनका नाम धर्म रुपी कल्पवृक्ष है और वैकुण्ठ के मार्ग का एक यही मुख्य पाथेय है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, समता, दान, इन्द्रिय-दमन आदि असंख्यों शुभ-साधन नाम ही के अधीन है अर्थात् राम-नाम का जाप करने से यह समस्त अपने आप ही आ जाते हैं ॥७॥

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सब कृतं कर्म-जालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृत-मनिसमनवद्यमवलोक्य कालं ॥८॥

उसने शरार को अग्नि से तपाया, उसी ने सर्वस्व दान दिया और उसी ने समस्त कर्म-समूह यज्ञ आदि को किया, जिसने समय को देख कर निरन्तर निर्दोष श्रीराम नाम रूपी अमृत का पान किया ॥८॥

श्वपच खल भिल्ल जमनादि हरिलोक गत, नाम बल बिपुल मति मलिन परसी ।
त्यागि सब आस संत्रास भव-पास असि, निसित हरिनाम जपु दासतुलसी ॥९॥

दुष्ट, चाण्डाल, भील, यमन आदि असंख्यों मलिन बुद्धि की छुआछूत वाले नाम के बल से भगवान के लोक वैकुण्ठ को गये । तुलसीदासजी

कहते हैं कि तू सब आशाओं को त्याग कर हरि नाम जप, जो संसार के बंधन और कठिन भय को काटने के लिये तीक्ष्ण तलवार रूप है ॥९॥

(४७)

ऐसी आरती राम की करहि मन ।
हरन दुख द्वन्द गोबिन्द आनन्द घन ॥१॥

हे मन ! तू इस तरह रामचन्द्रजी की आरती कर, वह दुःख और कलह का नाश करने वाले, आनन्द के राशि परमेश्वर हैं ॥ १ ॥

अचर चर रूप हरि सर्बगत सर्वदा, बसत इति बासना धूप दीजै।
दीप निज बोध गत-क्रोध-मद-मोह-तम-प्रौढ़ अभिमान चितरत्ति छीजै ॥२॥

चराचर जीव मात्र भगवान के रूप हैं, वह सदा सभी में स्थित है; हृदय में बसी हुई ऐसी इच्छा को धूप दीजिये। आत्मज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से क्रोध, घमण्ड और अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाता है तथा बढ़ा हुआ अभिमान और चित्त की चञ्चलता नष्ट हो जाती है ॥२॥

भाव अतिसय विसद प्रबर नैवेद्य सुभ, श्रीरमन परम सन्तोषकारी।
प्रेम ताम्बूल गत सूल संसय सकल, बिपुल भव बासना-बीज हारी ॥३॥

अत्यन्त स्वच्छ प्रीति श्रेष्ठ मंगल नैवेद्य रूप है, जो लक्ष्मीकान्त भगवान को बहुत अच्छी तरह सन्तुष्ट करनेवाला है। अनुराग रूपी ताम्बूल सम्पूर्ण शूल और सन्देहों को दूर कर देता है एवम् बहुत बड़ी संसार-सम्बन्धी कामना के अंकुर को हरनेवाला है ॥३॥

असुभ-सुभ कर्म घृत-पूर्न दसबर्तिका,
त्याग-पावक सतोगुन प्रकासं ।
भक्ति बैराग्य बिज्ञान दीपावली,
अर्पि नीराञ्जन जगनिवासं ॥४॥

शुभाशुभ कर्म रूपी घृत से भरी हुई दसों इन्द्रिय रूपी बत्तियाँ हैं, उन्हें उत्सर्गरूपी अग्नि से प्रज्वलित करे और सतोगुण का प्रकाश हो, तव भक्ति वैराग्य तथा विज्ञान रूपी दीपमाला की आरती परमात्मा को अर्पण करे ॥४॥

विमल हृदि भवन कृत सान्ति परजङ्क सुभ,
सयन बिस्राम श्रीराम राया।
छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका,
यत्र हरि तत्र नहिँ भेद-माया ॥५॥

निर्मल हृदय रूपी मन्दिर में सुन्दर शान्ति रूपी पलँग पर राजा श्रीरामचन्द्रजी को विश्राम के हेतु शयन करवा कर विश्राम कराए। वहाँ क्षमा और दया प्रधान सेविकाएँ हैं, जहाँ भगवान सोते हैं वहाँ भेद उत्पन्न करनेवाली माया टिक नहीं पाती ॥५॥

आरती निरत सनकादि सुति सेष सिव,
देवरिषि अखिल मुनि तत्व-दरसी ।
जो करइ सो तरइ परिहरइ काम सब,
बदत इति अमल मति दासतुलसी ॥ ६॥

इनकी आरती में समस्त ब्रह्मदर्शी, सनकादिक मुनीश्वर, वेद, शेष और शिवजी लगे रहते है। तुलसीदासजी कहते हैं कि समस्त निर्मल बुद्धि वाले ऐसा कहते हैं जो इस प्रकार की आरती कर, कामनाओं का त्याग करेगा वही संसार से पार होगा ॥ ६॥

(४८)

हरति प्रारति सकल भारती राम की ।
दहनि दुख दोष निर्मूलनी काम की ॥१॥

'रामचन्द्रजी की आरती समस्त विकलताओं को कर लेती है, दुःख और पापों को जलाने वाली तथा कामना का निर्मूल नाश करने वाली है ॥१॥

सुभग सौरभ धूप दीप बर मालिका ।
उड़त अघबिहँग सुनि ताल करतालिका ॥२॥

वह सुन्दर सुगन्धित धूप और उत्तम दीपमाला हाथ की ताली रूप है जिसको सुन कर पाप रूपी पक्षी उड़ जाते हैं ॥२॥

भगत हृदि भवन अज्ञान-तम हारिनी।
बिमल विज्ञानमय तेज बिस्तारिनी ॥३॥

भक्तों के हृदय रूपी मन्दिर का अज्ञान रूपी अन्धकार हरनेवाली और निर्मल विज्ञान रूपी प्रकाश फैलानेवाली है ॥३॥

मोह मद कोह कलि कल-हिम जामिनी ।
मुक्ति की दूतिका देह दुति दामिनी ॥४॥

यह मोह, मद, क्रोध और पाप रूपी कमल को हिम की रात्रि रूपी है। मोक्ष रूपी नायिका से मिलाने के लिये दूती है, उसके अंग की कान्ति बिजली के समान है॥४॥

प्रनतजन कुमुद बन इन्दु-कर-जालिका ।
तुलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका ॥५॥

शरणागत जन रूपी कुमुदवन के विकसित करनेवाली चन्द्रमा की समूह किरण रूप है। तुलसी के अभिमान रूपी महिषासुर का नाश करने के लिये बहुत सी कालिका रूपिणी है ॥ ५॥

(४९)

हरिशंकरी

<u>राग-धनाश्री</u>

दनुज बन दहन गुन गहन गोविन्द नन्दादि आनन्ददाता विनासी ।
सम्भु सिव रुद्र सङ्कर भयङ्कर भीम, घोर तेजायतन क्रोध-राशी ॥१॥

विष्णु भगवान राक्षस रूपी वन के जलानेवाले, गुणों के अथाह सागर, नन्द आदि गोपालों को आनन्द प्रदान करने वाले और अक्षय हैं । भगवान् शिवजी कल्याण-रूप, रुद्रमूर्ति, मङ्गल कर्ता, भीषण, डरावने, अत्यन्त तेज के स्थान और क्रोध के राशि हैं ॥ १

अनन्त भगवन्त जगदन्त अतंक त्रास, शमन श्री-रमन भुवनाभिरामं ।
भूधराधीस जगदीस ईसान बिज्ञान घन ज्ञान कल्यान-धामं ॥२॥

विष्णु गोविन्द भगवान अनंत हैं, ऐश्वर्यवान, जगत का अन्त करनेवाले, यमराज की त्रास का नाश करने वाले, लक्ष्मीकान्त और लोकों को आनन्द देनेवाले हैं । भगवान् शिवजी कैलाश के स्वामी, जगत के ईश्वर, ईशान, विज्ञान के मेघ, मान और कल्याण के स्थान हैं ॥२॥

वामनाब्यक्त पावन परावर बिभो, प्रगट परमातमा प्रकृति स्वामी।

चन्द्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज, अमित अवछिन्न वृषभेसगामी ॥३॥

विष्णु भगवान-वामन रूप, अगोचर, पवित्र, चराचर के स्वामी, प्रत्यक्ष परमात्मा और प्रकति के स्वामी हैं। भगवान् शिवजी चन्द्रमौलि, शूलपाणि, हर, निष्पाप, अजन्मे, असीम, अमेय , अखंड और बैलों के स्वामी नन्दी पर सवार होकर चलनेवाले हैं ॥३॥

नील जलदाभ तनु स्याम बहु काम छबि,
राम राजीव लोचन-कृपालं ।
कम्बुकपूर बपु धवल निर्मल मौलि,
जटा सुरतटिनि सित सुमन मालं ॥४॥

विष्णु भगवान- नीले मेघ की कान्ति के समान श्याम शरीरवाले बहुत से कामदेवों की शोभा से युक्त, राम, सम्पूर्ण जगत में रमने वाले, कमल नयन और दया के स्थान है। भगवान् शिवजी का शरीर निर्मल उज्वल शंख और कपूर के समान है और इनके मस्तक पर जटा में सफेद फूलों की माला के सद्दश देव नदी गंगा जी लहराती हैं ॥ ४॥

बसन किचल्क धर चक्र सारङ्ग दर,
कञ्ज कौमोदकी अति बिसालं।
मार करि मत्त मृगराज त्रय नयन हर,
नौमि अपहरण संसार-ज्वालं ॥५॥

विष्णु भगवान -कमल की केसर के रंग का वस्त्र और सुदर्शनचक्र, शांग्र धनुष और हाथ में कमल कौमोद नाम की बहुत बड़ी गदा धारण किये हैं। भगवान् शिवजी कामदेव रूपी मतवाले हाथी के लिये सिंह रूप, तीन नेत्रवाले, आवागमन रुपी जगत की ज्वाला को छुड़ानेवाले हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

कृष्न करुना भवन दवन कालीय खल,
बिपुल कंसादि निबंसकारी ।
त्रिपुर मद भङ्ग कर मत्तगज-चर्म-धर,
अन्धकोरग आसन पनगारी ॥६॥

विष्णु भगवान श्रीकृष्णचन्द्र दया के स्थान, दुष्ट कालियानाग के दमन कर्ता और कंस आदि खल-समूह का विनाश करनेवाले हैं। भगवान् शिवजी त्रिपुरदैत्य के गर्व का नाश करने वाले, मतवाले हाथी का चर्म धारण किये, अन्धकदैत्य रूपी सर्प के ग्रसनेवाले गरुड़ रूप हैं ॥ ६॥

ब्रह्म ब्यापक अकल सकल पर परम हित,
ज्ञान गोतीत गुन-वत्ति हौ ।
सिन्धु सुत गर्व गिरि बज्व गौरीस भव,
दच्छ मख अखिल बिध्वन्स-कर्ता ॥७॥

विष्णु भगवान पूर्ण ब्रह्म, समस्त जगत में व्याप्त, अखण्ड, सब से श्रेष्ठ, परम हितैषी, ज्ञान तथा इन्द्रियों से अतीत और तीनों गुणों की वृतियों का हरण करने वाले हैं। भगवान् शिवजी जलन्धर के गर्व रूपी पर्वत

के लिये वज्र रूप, पार्वती के स्वामी, संसार के उत्पत्ति स्थान और दक्ष के सम्पूर्ण यज्ञ के नाश करनेवाले हैं ॥७॥

भक्ति प्रिय भक्तजन कामधुकधेनु हरि,
हरन दुर्घटः बिकट विपति हारी ।
सुखद नर्मद वरद बिरज अनवद्यखिल,
विपिन आनन्द वीथिन्ह बिहारी ॥ ८॥

विष्णु भगवान को भक्ति प्यारी है, भक्तजनों की कामना पूर्ण करने के लिये कामधेनु रुप, नारायण, बहुत बड़ी भीषण और दुसाध्य आपदा के हरनेवाले हैं। भगवान् शिवजी सुख और कल्याण के दाता, मनोवांछित वर देनचाले, अज्ञान रहित, निर्दोष, सर्वांग पूर्ण और काशीपुरी का गलियों में विहार करनेवाले हैं। ॥ ८॥

रुचिर हरिसङ्करी नाम मन्त्रावली, द्वन्द दुख हरनि श्रानन्द खानी ।
विष्नु-सिव लोक सोपान सम सर्वदा, बदत तुलसीदास विसद बानी ॥९॥

यह विष्णु और शंकरजी के नामों की सुन्दर मन्त्रावली कलह के दुःख को हरने वाली आनंद की खान है । विष्णु लोक वैकुंठ तथा शिवलोक कैलाश पहुँचाने की सनातन सीढ़ी के समान है, तुलसीदासजी कहते है कि स्वच्छ वाणी वाले ऐसा कहते हैं ॥९॥

(५०)

भानुकुल-कमल-रबि कोटि कन्दर्पछवि,
कालकलि ब्यालमिव बैनतेयं ।
प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड धर,
तून वर विसिख बलमप्रमेयं ॥१॥

सूर्यकुल रूपी कमल वन के सूर्य, करोड़ों कामदेवों के शोभा से युक्त और कलिकाल रुपी सर्प को ग्रसने के लिये गरुड़ के समान है। अत्यन्त बलशाली भुजदण्ड, हाथ में विकराल धनुप-बाण, कमर में श्रेष्ठ तरकस धारण किये हुए अपरिमित बलवाले हैं ॥१॥

अरुन राजीव दल नयन सुखमा-अयन,
स्यामतनु कान्ति बर बरिदाभं ।
तप्त काञ्चन वस्त्रसस्त्र-विद्या निपुन,
सिद्ध सुर सेव्य पाथोजनाभं ॥२॥

लाल कमल के पंखुड़ियों के समान जिनके नेत्र हैं, जो शोभा के स्थान और श्याम शरीर की कान्ति उत्तम जल भरे मेघ के समान है। जो तपाये हुए सुवर्ण के रंग का वस्त्र, जो शस्त्र-विद्या में प्रवीण, कमलनाभ, सिद्ध और देवताओं से भी उपासनीय हैं ॥२॥

अखिल लावन्य-गृह बिस्व-विग्रह परम,
प्रौढ़ गुनगूढ महिमा-उदारं ।

दुर्धुर्ष दुस्तरं स्वर्ग-अपवर्ग-पति,
भग्न संसार पादप-कुठारं ॥३॥

जो सम्पूर्ण शोभा के स्थान, विश्वात्मा और जिनके अत्यन्त बढ़े हुए गम्भीर गुणों की महिमा श्रेष्ठ है। जिनको कोई जीत नहीं सकता, अगम्य, स्वर्ग और मोक्ष के मालिक, संसार रूपी वृक्ष की जड़ को काटने के लिये कुल्हाड़ा रूपी हैं ॥३॥

सापबस मुनिवधू मुक्तकृत विप्रहित,जज्ञ-रच्छन-दच्छ पच्छ कर्ता।
जनक नृप सदसि सिव-चाप भञ्जन उग्र, भार्गव-गर्ब गरिमापहर्ता
॥४॥

जो शाप के अधीन मुनिपत्नी अहिल्या का उद्धार करने वाले, ब्राह्मण विश्वामित्र के यज्ञ के हेतु अथवा या रक्षा में कुशल और अपने भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। जनकराजा की सभा में शिवजी के धनुष को तोड़ कर परशुराम के उत्कट घमण्ड को हरनेवाले हैं ॥४॥

गुरु गिरा गौरव अमर दुस्त्यज राज्य,
त्यक्त करि सहित सौमित्रि भ्राता ।
सङ्ग जनकात्मजा मनुजमनसत्य प्रज,
दुष्ट बध निरत त्रैलोक्य त्राता ॥५॥

जिन्होंने पिता के वचन के सम्मान हेतु जो राज्याधिकार देवताओं द्वारा भी त्यागने में कठिन है, उसको निर्विलंब त्याग कर भाई लक्ष्मण और

जनकनंदिनी को साथ में लेकर मनुष्य रूप में अजन्मे परमात्मा श्री रामचन्द्रजी तीनों लोकों के रक्षक दुराचारियों के संहार करने में तत्पर हुए ॥५॥

दंडकारन्य कृत पुन्य पावन चरन, हरन मारीच माया कुरङ्गं ।
वालि बल मत्त गजराज इव केसरी, सुहृद सुग्रीव दुख रासि भङ्गं ॥६॥

जिन्होंने अपने पवित्र चरणों से दण्ड आरण्य को रमणीय किया और कपटी मृग रूपधारी मारीच के प्राण हरनेवाले हैं । बलवान बालि रूपी मतयाले हाथी के लिये सिंह के समान और मित्र सुग्रीव के दुःखों की राशि का नाश करने वाले हैं ॥६॥

ऋक्ष मर्कट बिकट सुभट उद्भट समर,
शैल संकाश रिपु त्रासकारी ।
बद्ध पाथोधि सुर निकर मोचन सकुल,
दलन दससीस भुज बीस भारी ॥७॥

जिन्होंने भालू-बन्दर भयानक शूरवीर युद्ध में प्रचण्ड पर्वत के समान भारी शरीरवाले, शत्रुओं को भय देने वाले हैं। उनके द्वारा समुद्र में पुल बाँध कर देवताओं को छुड़ाने के लिये भारी दस सिर और विशाल बीस भुजावाले रावण का कुल समेत संहार किया ॥७॥

दुष्ट विबुधारि सङ्घात अपहरन महि, भार अवतार कारन अनूपं ।
अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन, ब्रह्म सुमिरामि नर-भूप रूपं
॥८॥

देवताओं के शत्रु-समूह दुष्टों का नाश करके धरती के बोझ को हरने के लिये जिनके जन्म लेने का अनुपम कारण है। निर्मल, निर्दोष, अद्वितीय, निर्गण और सगुण ब्रह्म मनुष्य रूपी राजा श्री रामचन्द्रजी का मैं स्मरण करता हूँ।

सेष स्रुति सारदा सम्भु नारद सनक,
गनत गुन अन्त नहि तव चरित्रं ।
राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्बदा,
दासतुलसी त्रास-निधि बहिनं ॥९॥

शेषजी, वेद, सरस्वती, शिव, नारद और सनकादिक आप के गुण और चरित्र गान करते हैं; किन्तु अन्त नहीं जान पाते । काम के वैरी शिवजी के प्यारे, अयोध्या के राजा और तुलसीदास को सदा त्रास रूपी समुद्र से पार करने के लिये जहाज रूप हैं ॥९॥

(५१)

जानकीनाथ रघुनाथ रागादि तम, तरनि तारुन्य तनु तेज धामं ।
सच्चिदानन्द मान्दकन्दाकरं, बिस्व बिस्राम रामाभिरामं ॥१॥

जानकीनाथ रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्र जी राग, द्वेष रूपी अन्धकार के लिये जिनका शरीर मध्याह्नकाल के सूर्य के समान तेज का स्थान है। परमात्मा, आनन्दकन्द के खान, संसार के प्रिय और आराम देनेवाले हैं॥२॥

नील नव बारिधर सुभग सुभ कान्तिकर,
पीत कौसेय बर बसन धारी ।
रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि,
भानु सतकोटि उद्योतकारी ॥२॥

नधीन श्याम मेघ के समान सुन्दर मामांगलिक शोभा उत्पन्न करनेवाले और पीले रंग का उत्तम रेशमी वस्त्र धारण किये है, रत्नों से जड़ा हुया सुवर्ण का मुकुट मस्तक पर असंख्यों सूर्य के समान प्रकाश करनेवाला है ॥२॥

स्रवन कुंडल भाल तिलक भ्रू रुचिर अति,
अरुन अम्भोज लोचन बिसालं ।
बक्त्र अवलोकि त्रैलोक्य सोकापह,
मार अरि हृदयमानस मरालं ॥३॥

कानों में कुण्डल, माथे पर तिलक, अत्यन्त सुहावनी भौंह और लाल कमल के समान विशाल नेत्र हैं । मुख देख कर तीनों लोकों का संताप दूर होता है, कामदेव के शत्रु शंकर जी के हृदय रुपी मानसरोवर के हंस है ॥३॥

नासिका चारु सुकपोल द्विज बज दुति,
अधर बिम्बोपमा मधुर हासं ।
कंठ दर चिवुक बर बचन गम्भीर तर,
सत्यसङ्कल्प सुर त्रास नासं ॥४॥

मनोहर नासिका, सुन्दर गाल, हीरे जैसे चमचमाते दाँत, कुन्दुरू के समान लाल होंठ और सुहावनी प्यारी हंसी है । कण्ठ शंख के सदृश्य, उत्तम ठोढ़ी, अत्यन्त गम्भीर वचन, दृढ प्रतिज्ञ और देवताओं के भय का नाश करने वाले हैं ॥४॥

सुमन सुबिचित्र नव तुलसिकादल जुतं,
मृदुल बनमाल उर भ्रजमानं ।
भ्रमत आमोद बस मत्तमधुकर निकर,
मधुर तर मुखर कुर्बन्ति गानं ॥ ५ ॥

सुन्दर विलक्षण पुष्प और नवीन कोमल तुलसीदल से युक्त वनमाला हृदय में शोभायमान है, जिसके चारों ओर प्रसन्नता से झुण्ड के झुण्ड भ्रमर अत्यन्त रसीली आवाज से गायन करते हैं ॥५॥

सुभग श्रीवत्स केयूर कङ्कन हार, किङ्किनी रटनि कटि तट रसालं।
बाम दिसि जनकजासीन सिंहासनं, कनक मृदु बल्लिमिव तरु तमालं ॥६॥

भगवान के हृदय पर सुन्दर श्री वत्स का चिन्ह है, भुजाओं में बाजूबंद, गले में हार और कमर में करधनी का सुहावना शब्द हो रहा है। बायीं और सिंहासन पर विराजमान जानकीजी ऐसी शोभित हो रही हैं जैसे तमालवृक्ष के समीप सुवर्ण की मुलायम लता के समान हो ॥६॥

बृहद भुजदंड कोदंड मंडित बाम,बाहु दच्छिन पानि बानमेकं ।
अखिल मुनि निकर सुर सिद्ध गन्धर्ब बर, नमत नर नाग अवनिप अनेकं ॥७॥

जिनके भुजदंड घुटनों तक लम्बे हैं, बाँये भुजदण्ड में धनुष और दाहिने हाथ में एक बाण शोभित है। जिनको समस्त मुनिवृन्द, देवता, सिद्ध, श्रेष्ठ मनुष्य, नाग और अनेक राजा नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

अनघ अवछिन्न सर्वज्ञ सर्बेस खलु, सर्वतोभद्र दातासमाकं।
प्रनतजन खेद बिच्छेद विद्या निपुन, नौमि श्रीराम सौमित्रि साकं ॥८॥

निष्पाप, सब से पृथक, सब जाननेवाले, सब के स्वामी और निश्चय ही हमारे लिये यज्ञ में प्रधान देवता का आसन देनेवाले हैं। दीनजनों के दुःख दूर करने की विद्या में प्रवीण, पुरुषार्थ रूप लक्ष्मणजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

जुगल-पद-पद्म सुख-सद्म पद्मालयं,

चिह्न कुलिसादि सोभाति भारी।
बिमल हनुमन्त हृदि परम मन्दिर सदा,
दासतुलसी सरन सोकहारी ॥६॥

दोनों चरण-कमल सुख के स्थान है, लक्ष्मीजी के निकेतन, वज्र आदि के चिन्हों से युक्त और बहुत बड़ी शोभावाले हैं। हनुमानजी के निर्मल इदय की सुन्दर मन्दिर में सदा विहरनेवाले और शरणागत तुसलीदास के शोक को हरनेवाले है |

(५२)

कोसलाधीस जगदीस जगदेक-हित,
अमित गुन विपुल विस्तार लीला ।
गायन्ति तव चरित सुपवित्र स्रुति सेष,
सम्भु सुक सनकादि मुनि मननसीला ॥१॥

अयोध्या के राजा जगदीश्वर श्री रामचन्द्र जी जगत के अद्वितीय हितकारी हैं, उनके अनन्त गुण और लीला का बहुत बड़ा विस्तार है। आप के सुन्दर पवित्र चरित को वेद, शेष, शिवजी, शुकदेव, और सनकादिक मुनि चिन्तन तथा गान करते हैं ॥१॥

बारिचर बपुष धर भक्त निस्तार पर,
धरनि कृत नाव 'महिमाति गुर्वी ।
सकल जज्ञांस-मय उग्र विग्रह क्रोड़,

मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी ॥२॥

भक्तों के बचाव के लिये मछली का शरीर धारण कर पृथ्वी को दूसरी नौका बनाया, आप की अतिशय श्रेष्ठतर महिमा है। सम्पूर्ण यज्ञों के अंश से परिपूर्ण, शंकर के उत्कट शरीर से दैत्येन्द्र हिरण्याक्ष का वध करके धरती का उद्धार करनेवाले हैं ॥२॥

कमठ अति बिकट तनु कठिन पृष्ठोपरी,
भ्रमत मन्दर कंडु सुख मुरारी ।
प्रगट कृत अमृत गो इन्दिरा
इन्दु टन्दारकारन्द आनन्दकारी ॥ ३॥

मुर दैत्य का नाश करने वाले विष्णु भगवान अत्यन्त भीषण कछुए के शरीर धारण किए हुए अपनी कठोर पीठ पर घूमते हुए मन्दराचल को धारण कर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे खाज के खुजाने से खाजवाले को प्रसन्नता होती है। देवतावृन्द को आनन्दित करने के लिये समुद्र मथवा कर अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमा को प्रकट किया ॥३॥

मनुज मुनि सिद्ध सुर नाग त्रासक दुष्ट,
दनुज द्विजधर्म मरजादहर्ता ।
अतुल मृगराज बपु धरित बिद्दरित अरि,
भक्त प्रहलाद अहलाद-कर्ता ॥४॥

मनुष्य, मुनि, सिद्ध देवता और नागों को भय उत्पन्न करनेवाला दुष्ट दैत्य हिरण्यकशिपु ब्राह्मण-धर्म की प्रतिष्ठा को नष्ट करनेवाला था। आपने अद्वितीय सिंह का रूप धारण कर शत्रु को विदीर्ण किया, आप प्रह्लाद भक्त को हर्षित करनेवाले हैं ॥४॥

छलन बलि कपट बपु रूप वामन ब्रह्म,
भुवन परजन्त पद तीनि करनं ।
चरन नख नीर त्रैलोक्य पावन परम,
बिबुध-जननी दुसह सोक हरनं ॥५॥

आप बलि को छलने के लिये वामन रूप ब्राह्मण बनकर भुवन पर्यन्त तीन पग रख कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नाप लिया, आपके चरण के नखों का जल तीनों लोकों को परम पवित्र करनेवाला गंगाजल है और आप देवराज इंद्र जो पुन: स्थापित करके देवताओं की माता अदिति के असहनीय दुःख का हरण करनेवाले हैं ॥५॥

छत्रियाधीस करि निकर बर केसरी,
परसुधर विप्र ससि जलद रूपं ।
बीस भुजदंड दससीस खंडन चंड,
बेग सायक नौमि राम भूपं ॥६॥

आप क्षत्रिय राजा रूपी हाथी के झुण्ड के लिये श्रेष्ठ सिंह रूपी परशुराम हुए जो ब्राह्मण रूपी खेती को हरी भरी करनेवाले मेघ रूप हैं। रावण के बीसों भुजदण्ड को छिन्न भिन्न करने की अद्भुत शक्ति

जिनके बाणों में हैं ऐसे राजा रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

भूमि भर भार हर प्रगट परमातमा, ब्रह्म नर रूप धर भक्त हेतू ।
बष्ण्रिकुल कुमुद राकेस राधारमन कंस बंसाटवी धूमकेतू ॥७॥

भूमि के पालन करने और भार को हरनेवाले परब्रह्म परमात्मा भक्तों के हित मनुष्य रूप धारण कर प्रकट हुए । यदुकुल रूपी कुमुदवन के पूर्ण चन्द्रमा, राधिका रमण (श्रीकृष्णचन्द) कंस कुल रूपी अथवा कंस रूपी बाँस के वन के किए अग्नि रूप हुए हैं ॥७॥

प्रवल पाखंड महिमंडलाकुल देखि
निन्द्यकृत अखिल मख कर्म-जालं ।
शुद्ध बोधक घन ज्ञान गुन धाम अज,
बुद्ध अवतार बन्दे कृपालं ॥८॥

पाखण्ड की अत्यन्त प्रबलता से पृथ्वीमण्डल को उद्विग्न देख कर आपने कारण वश सम्पूर्ण कर्म-समूह की निन्दा की। विशुद्ध आत्मज्ञान के अद्वितीय मेघ, ज्ञान और गुणों के स्थान, जन्म रहित, दया निधान बुद्ध अवतार को मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

कालकलि जनित मल मलिन मन सर्व नर,
मोह निसि निविड़ जमनान्धकारं ।
विष्नुजस पुत्र कल्की दिवाकर उदित,

दासतुलसी हरन विपति भारं ॥ ९ ॥

कलिकाल से उत्पन्न पापों द्वारा समस्त मनुष्यों के मन मलिन हो गये हैं उस पर अज्ञान रूपी रात्रि के समान यवन घने अन्धकार रूप है। विष्णुयश ब्राह्मण के पुत्र होकर कल्कि रूप से उदय होने वाले सूर्य तुलसीदास की विपत्ति के बोझ को हरनेवाले है ॥९॥

(५३)

सर्व सौभाग्य-प्रद सर्वतोभद्रनिधि, सर्व सर्बेस सर्वाभिरामं ।
सर्व हदि कज मकरन्द मधुकर रुचिर,-रूप भूपालमनि नौमि रामं ॥१॥

समस्त सौभाग्य के दाता, यज्ञपुरुष, सब में विद्यमान, सब के स्वामी और सब को आनन्द देनेवाले, शिवजी के हृदय रूपी कमल-रस के समर रूप, सुन्दर रूपवाले और राजाओं के मुकुटमणि रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥१॥

सर्व सुखधाम गुनग्रामं बिस्राम-प्रद, नाम सर्बास्पदमति पुनीतं ।
निर्मलं सान्त सुविसुद्ध बोधायतन, क्रोध मद हरन करुना निकेतं ॥२॥

सब सुखों के स्थान, जिनके गुणों की कथा आनन्ददायिनी और नाम अत्यन्त पवित्र सारी प्रतिष्ठा को प्रदान करने वाला है। निर्मल, स्थिर,

सुन्दर विशुद्ध विज्ञान के स्थान, दया के मन्दिर, क्रोध और मद के हरनेवाले हैं ॥२॥

अजित निरुपाधि गोतीतमब्यक्त बिभु, मेकमनवद्यमजम द्वितीयं ।
प्राकृतं प्रगट परमातमा परम हित, प्रेरकानन्त बन्दे तुरीयं ॥३॥

अजेय, निरुपद्रव, अगोचर, अप्रत्यक्ष, समर्थ, अद्वितीय, अनिन्द्य, अजन्मे अनुपम, माया से प्रकट हुए परमात्मा, परम हितैषी, आज्ञा करनेवाले ब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

भूधरं सुन्दरं श्रीबरं मदन-मद-मथन सौन्दर्य सीमातिरम्यं ।
दुःप्राप्य दुःप्रेक्ष्य दुस्तयं दुःपार, संसार हर सुछम भाव गम्यं ॥४॥

पृथ्वी को धारण करनेवाले सुन्दर लक्ष्मीकान्त शोभा में अतिशय रमणीयता के हद कामदेव के घमंड को नष्ट करने वाले हैं । दुर्लभ, कठिनता से दिखाई देनेवाले, तर्कों से परे, दुस्तर, संसार-बन्धन के मिटाने में अतीव समर्थ और प्रेम से प्राप्त होनेवाले हैं ॥४॥

सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्बदा.पुष्ट, सन्तुष्ट सङ्कष्टहारी।
धर्म वर्मनि ब्रह्मकर्मबोधैकद्विज,-पूज्य ब्रह्मन्य जनप्रिय मुरारी ॥५॥

सत्य को उत्पन्न करने वाले, सत्य में तत्पर रहने वाले, सत्यव्रत धारण करने वाले, सदा ही दृढ़, तृप्त और संकट हारी हैं। धर्म के कवच,

ब्राह्मण-कर्म के अद्वितीय ज्ञाता, ब्राह्मणों के पूजनीय, ब्राह्मण को पूज्य माननेवाले,, भक्तों के प्यारे और मुर दैत्य को नष्ट करने वाले हैं ॥५॥

नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि, ज्ञानधन सच्चिदानन्द मूलं ।
सर्व रच्छक सर्व भच्छकाध्यक्ष कूटस्थ गूढाचि भक्तानुकूलं ॥६॥

त्रिकाल व्यापी, ममता रहित, नित्यमुक्त, निरभिमान, नारायण, ज्ञान के राशि और आदि कारण परब्रह्म हैं। सब की रक्षा करनेवाले, सर्वभक्षक-काल के भी स्वामी, सर्वोपरि, गूढ़ तेजोमय और उपासना से भक्तों के अनुसार चलने वाले हैं ॥६॥

सिद्ध साधक साध्य वाच्य वाचक रूप, मन्त्र जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा।
परम कारन कञ्जनाभ जलदाभ तनु, सगुन निर्गुन सकल दृस्य द्रष्टा ॥७॥

आप ही सिद्ध पुरुष, साधना करनेवाले, सिद्ध होने योग्य हैं, आप ही वाच्य और वाचक हैं। आप ही मन्त्र, जापक, जाप्य तथा आप ही सृष्टि और सृष्टा हैं। आप ही परम कारण हैं, आप ही कमल नाभ, मेघ के समान शरीर की कान्तिवाले, सगुण और निर्गुण ब्रह्म तथा आप ही दृश्य तथा दृष्टा हैं ॥७॥

ब्योम व्यापक विरज ब्रह्म वरदेस वैकुंठ बामन विमल ब्रह्मचारी ।
सिद्ध बन्दारकाबन्द बन्दित सदा, खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥ ८॥ .

आकाश के समान सर्वव्यापी, अज्ञान रहित,आदिपुरुष, वरदायकों के स्वामी, विष्णु, वामन रूप शुद्ध ब्रह्मचारी हैं । सिद्ध तथा देवतावृन्द से सदा वन्दनीय और पाखण्ड का नाश करके उसको निर्मूल करनेवाले हैं ॥८॥

पूरनानन्द सन्दोह अपहरन सम्मोह अज्ञान गुन सन्निपातं ।
वचन मन कर्म गत सरन तुलसीदास, त्रास.पाथोधि इव कुम्भजातं
॥९॥

पूर्ण आनंद की राशि, सम्यक मोह और अविवेक के हरनेवाले तथा तीनों गुणों से हुए त्रिदोष के छुड़ानेवाले हैं। मन, वचन और कर्म से शरणागत तुलसीदास के भय रूपी समुद्र को सुखाने में अगस्त मुनि के समान हैं। ॥९॥

(५४)

बिस्व विख्यात बिस्वेस बिस्वायतन, बिस्व-मरजाद ब्यालारिगामी।
ब्रह्म बरदेस बागीस ब्यापक विमल, बिपुल बलवान निर्वान-स्वामी
॥१॥

जगद्विख्यात भूमण्डल के स्वामी, विश्वरूप, जगत की मर्यादा के रक्षक और गरुड़ पर चढ़ कर चलनेवाले हैं। परब्रह्म, वरदायकों के स्वामी, वाणीपति, सर्व व्यापी, निर्मल, महा बलवान और मोक्ष के प्रदाता हैं ॥१॥

प्रकृति महतत्व सब्दादि गुन देवता,
ब्योम मरुदग्नि अमलाम्ब उर्बी।
बुद्धि मन इन्द्रिय प्रान चित्तातमा,
काल परमानु चिच्छक्ति गुर्बी ॥२॥

माया, परब्रह्म, शब्द आदि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इन्द्रियों के विषय, तीनों गुण, देवता, आकाश, पवन, अग्नि, स्वच्छ जल, पृथ्वी, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, पाँचों प्राण, चित्त, आत्मा, महाकाल, अल्पसमय और अत्युत्तम चित्त की शक्ति भी आप ही हैं ॥२॥

सबमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि ब्यक्त अब्यक्त गतभेद बिष्नो।
भवन भवदङ्ग कामारि बंदित पद, हन्द मन्दाकिनी-जनक जिष्नो
॥३॥

है राजशिरोमणि ! यह सभी आप के रूप हैं, आप प्रकट और गुप्त भेद रहित विष्णु है। जगत आप का ग्रह है, दोनों चरण शिवजी से वन्दनीय, मन्दाकिनी को उत्पन्न करने वाले और विजयी हैं ॥३॥

आदि मध्यान्त भगवन्त त्वं सर्बगत, मीस पस्यन्ति जे ब्रह्मबादी ।
जथा पटतन्तु घट-मृत्तिका सर्प-स्रग, दारु-करि कनक
कटकाङ्गदादी ॥४॥

हे भगवन्त ! आप आदि, मध्य, अन्त सब में वर्तमान ईश्वर हैं, जो वेदान्ती हैं वह ऐसा ही देखते हैं जैसे वस्त्र और सूत, घड़ा और मिट्टी, साँप और माला, हाथी और लकड़ी, कंगन, बाजूबंद आदि गहना और सुवर्ण सब आप में ही विद्यमान हैं ॥४॥

गूढ़ गम्भीर गर्बन गूढार्थवित, गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता।
ज्ञेय ज्ञान प्रिय प्रचुर गरिमागार, घोर संसार पर पार दाता ॥५॥

गुप्त, जटिल, गर्व का मर्दन करने वाले, छिपे अर्थ के जाननेवाले, गूढ़, अगोचर और श्रेष्ठ ज्ञान के दाता हैं। जानने योग्य, ज्ञान को प्रिय माननेवाले, बहुत बड़ी महिमा के स्थान, भयानक संसार से परे और जीवों को पार करनेवाले हैं ॥५॥

सत्यसंकल्प अतिकल्प कल्पान्त कृत,
कल्पनातीत अहितल्प बासी ।
बनज लोचन बनजनाभ बनदाभ
बपु बनचरध्वज-कोटि रूपरासी ॥६॥

सत्य प्रतिज्ञा वाले, महाकल्प और कल्प का अन्त करनेवाले, कल्पना से परे और शेष की सेज पर शयन करनेवाले हैं। कमल नयन, कमलनाम, मेघ की कान्ति के समान शरीर वाले तथा करोड़ों कामदेव की शोभा के राशि हैं ॥६॥

सुकर दुःकर दुराराध्य दुर्व्यसन हर, दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गात्ति हर्ता ।
बेदगर्भार्भकाभ्र गुन गर्व अर्बाग पर गर्व निर्वापकर्ता ॥७॥

सुन्दर कर्ता, दुःसाध्य, कठिनाई से आराधना करने योग्य, दुर्व्यसन को छुड़ावाले, दुर्गम, दुर्दमनीय, दुर्गति को हरनेवाले हैं। वेदगर्भ (ब्रह्मा) के अर्भक (पुत्र), अभ्र (समूह) अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमारादि को हुए अधिक गुण के गर्व अर्थात समीपी तथा श्रेष्ठ होने के ममत्व को दूर करनेवाले हैं ॥७॥

भक्त अनुकूल भव सूल निर्मूल कर, तूल अघ नाम पावक समानं।
तरल तृष्ना तमी तरनि धरनी धरन, सरन भय हरन करुनानिधानं ॥८॥

भक्तों के अनुकूल रहने वाले, संसार की पीड़ा को निर्मूल करनेवाले और नाम पाप रूप वालों के के लिये अग्नि के समान है । क्षणभंगुर तृष्णा रूपी रात्रि के लिये सूर्य रूप, धरती को धारण करने वाले और शरणागती के भय को हरनेवाले दया के स्थान हैं ॥८॥

बहुल वन्दारु बन्दारकाबन्द पद, इन्द मन्दार मालोरधारी।
पाहि मामीस सन्ताप-सङ्कुल-सदा, दासतुलसी प्रनत रावनारी ॥९॥

जिनके युगल चरणों को अधिकांश देवतावृन्द प्रणाम करनेवाले हैं और जो हृदय में पारिजात के फूलों की माला पहने हैं। हे रावण के वैरी परमात्मन् ! शरणागत तुलसीदास सदा दुःखों से भरा है, मेरी रक्षा कीजिये॥९॥

(५५)

सन्त सन्ताप हर बिस्व बिस्राम कर, राम कामारि अभिरामकारी।
सुद्ध बोधायतनसच्चिदानन्द घन सज्जनानन्दवर्द्धन खरारी॥१॥

रामचन्द्रजी संतों के संताप को हरनेवाले, जगत को विश्राम देनेवाले और शिवजी को आनंदित करनेवाले हैं। विशुद्ध ज्ञान के स्थान, सत् चित् आनंद की राशि, परब्रह्म, सज्जनों के आनन्द की वृद्धि करनेवाले, खर राक्षस के शत्रु है ॥१॥

सील-समता-भवन विषमतामति समन, राम-सीतारमन रावनारी।
खड्ग कर चर्म बर बर्म धर रुचिर कटि,-तून सर सक्ति सारङ्गधारी ॥२॥

रावण के श,त्रु सीता रमण रामचन्द्रजी शुद्धाचरण और सर्वज्ञता के स्थान तथा कुटिलता का अतिशय नाश करनेवाले हैं। हाथ में तलवार, ढाल, शरीर पर श्रेष्ठ कवच धारण किये, कमर में सुन्दर तरकस, बरछा और शार्न्ग धनुष धारण किए हुए हैं ॥२॥

सत्यसन्धान निर्बान-प्रद सर्व हित,सर्व गुन-ज्ञान-विज्ञान साली ।
सघन तम घोर संसार भर सबरी, नाम दिवसेस खर किरनमाली ॥३॥

सत्याचरण, मोक्षदायक, सभी के उपकारी, समस्त गुण ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण हैं। गहरे भीषण अन्धकार से भरे संसार रूपी रात्रि के लिये जिनका नाम तीक्ष्ण समूह किरणों वाला सूर्य रूप है॥३॥

तपन तीच्छन तरुन तीब्र तापघ्न तप रूप तनु भूप तम पर तपस्वी।
मान मद मदन मत्सर मनोरथ मथन, मोह अम्भोधि-मन्दर मनस्वी
॥४॥

ताप रूपी तीक्ष्ण तरुण सूर्य के ताप को नष्ट करने वाले, तप के स्वरुप राजा का शरीर होकर तमोगुण से परे और तपस्वी हैं। अभिमान, मद, काम, मत्सरता, कामना और अज्ञान रूपी समुद्र को मथने के लिये मन्दराचल रूप तथा यथेच्छाचारी हैं ॥४॥

बेद विख्यात बरदेस बामन विरज, बिमल बागीस बैकुंठ स्वामी ।
काम क्रोधादि मर्दन बिबर्धन छमा, सान्त-बिग्रह बिहगराज-गामी
॥५॥

वेद में प्रसिद्ध वर देनेवालों के स्वामी, वामन रूपधारी, निर्मल, वाणीपति और वैकुण्ठ नाथ हैं। काम क्रोधादि के संहारक, क्षमा को बढ़ानेवाले, शान्त स्वरुप और पक्षिराज पर सवार होकर गमन करनेवाले है ॥५॥

परम पावन पाप पुज मुजाटवी, अनल इव निमिष निर्मूल कर्ता ।

भुवन भूषन दूषनारि भुवनेस भू-नाथ सुतिमाथ जय भुवन-भर्ता ॥६॥

अत्यन्त पवित्र, पाप की राशि रूपी सरपत के वन को पल भर में अग्नि के समान भस्म करनेवाले हैं। भूमण्डल के आभूषण, दूपण के शत्रु, लोकों के स्वामी, धरणीपति परमात्मा और पृथ्वी के पालन करनेवाले आप की जय हो ॥६॥

अमल अबिचल अकल सकल सन्तप्त कलि,बिकलता भजनानन्द रासी।
उरगनायक-सयन तरुन पङ्कज-नयन, कीरसागर-प्रयन सर्व बासी ॥ ७॥

निर्मल, अचल, अंग हीन, समस्त कलियुग को तपानेवाली विकलता के नाशक और आनन्द की राशि हैं। शेषनाग पर शयन करनेवाले, नवीन फूले हुए कमल के समान लाल नेत्र, तीर सिन्धु स्थान और अव्यक्त रूप से सभी में विद्यमान हैं। ॥ ७॥

सिद्ध कबि कोबिदानन्ददायक पद, द्वन्द मन्दात्म मनुजैर्दुरापं ।
जब सम्भूत अतिपूत जन सुरसरी, दरसनादेव अपहरति पापं ॥८॥

सिद्ध, कवि और विद्वानों को आनन्द देनेवाले, दोनों चरण नीचात्मा मनुष्यों के लिए अत्यंत दुर्लभ हैं। जिन चरणों से अत्यन्त पवित्र

जलवाली गङ्गाजी उत्पन्न हुई हैं जो दर्शन के योग्य और पापों को हर लेती हैं ॥८॥

नित्य निर्मुक्त संजुक्त-गुन निर्गुनानन्त भगवन्त न्यामक नियन्ता ।
विस्व पोषन भरन बिस्व कारन करन, सरन तुलसीदास त्रास-हन्ता ॥९॥

सदा स्वतन्त्र, गुणों से युक्त, गुण रहित, अनन्त, परमात्मा, नियामक और परधाम पहुँचाने वाले रथ के सारथी हैं । संसार के पालन पोषण करनेवाले, जगत के आदि कारण और उपजानेवाले तथा शरणागत तुलसीदास के भय का नाश करने वाले हैं ॥९॥

(५६)

दनुज-सूदन दयासिन्धु दम्भापहन,दहन दुर्दोष दर्पापहर्ता ।
दुष्टता दमन दम-भवन दुःखौघ हर, दुर्ग दुर्वासना नास कर्ता ॥१॥

राक्षसों के संहारक, दया के समुद्र, अहंकार दूर करने वाले, कठिन दोषों को नष्ट करने वाले और उदण्डता को हरनेवाले हैं। दुष्टता को दबानेवाले, इन्द्रियदमन के स्थान, दुःख समूह के हर्ता और दुर्गम कामनाओं का नाश करनेवाले हैं ॥१॥

भूमि भूषन भानुमन्त भगवन्त भव, भजनाभयद भुवनेस भारी ।

भावनातीत भव-बन्ध भव-भक्त-हित, भूमि-उद्धरन भूधरन धारी ॥२॥

धरती के भूषण, सूर्य के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान, संसार के भय का नाश करके अभयदान देनेवाले और बड़े भुवनेश्वर हैं । निस्पृह, शिवजी से वन्दनीय, शंकर जी के भक्तों के हितकारी, पृथ्वी को ऊपर उठानेवाले और पर्वतों को धारण करनेवाले हैं ॥२॥

वरद बनदाभ बागीस विस्वातमा, बिरज बैकुंठ-मन्दिर बिहारी ।
ब्यापक ब्योम बन्याध्रि पावन विभो, ब्रह्मविदब्रह्म चिन्तापहारी ॥३॥

वरदायक, मेघ की कान्ति युक्त, वाणी के स्वामी, जगत के आत्मा, निर्मल और वैकुण्ठ भवन विहार करनेवाले हैं। आकाश के समान सर्वत्र फैले हुए, वन्दनीय चरण, पवित्र, समर्थ, ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म और चिन्ता को हरनेवाले हैं ॥३॥

सहज सुन्दर सुमुख सुमन सुभ सर्वदा, सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छन्दचारी ।
सर्वकृत सर्वभृत सर्वजित सर्वहित, सत्यसङ्कल्प कल्पान्तकारी ॥४॥

स्वाभाविक सुन्दर, हँसमुख, अच्छे मनवाले, कल्याण रूप, सदा स्वच्छ, सर्वस्व जाननेवाले और स्वेच्छाचारी है। सब के कर्ता, सब के पोषण करनेवाले, सभी के जीतनेवाले, सब के हितैषी, ढ़प्रतिज्ञ और कल्प का अंत अर्थात प्रलय करनेवाले हैं ॥४॥

नित्य निर्मोह निर्गुन निरञ्जन निजानन्द निर्मान निर्बान दाता ।
निर्भरानन्द निःकम्प निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम बिधाता ॥५॥

निरन्तर मोह रहित, गुणों से परे, निर्लिप्त, आत्मानन्द स्वरूप, निरभिमान और मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं। पूर्ण आनन्द स्वरुप, अचल, सीमारहित, स्वतन्त्र, उपाधि रहित, ममता रहित और सबके विधाता हैं ॥५॥

महामङ्गल-मूल मोद-महिमायतन,
मुग्ध-मधु-मथन मानद अमानी।
मदन मर्दन-मदातीत माया रहित,
मञ्जु मा-नाथ पाथोज पानी ॥६॥

महा मंगलों के मूल, आनंद और महिमा के स्थान, मूर्ख मधु दैत्य का नाश करने वाले, दूसरों को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले और स्वयं मान रहित हैं। कामदेव के नाशक, निरभिमान, माया से रहित, सुन्दर लक्ष्मीपति और हाथ में कमल धारण करने वाले हैं ॥६॥

कमल-लोचन कला-कोस कोदंडधर, कोसलाधीस कल्यान रासी।
जातुधान प्रचुर मत्तकरि केसरी, भक्त मन पुन्य-भारन्य बासी ॥७॥

कमल नेत्र, कौतुक निधान, धनुर्धर, अयोध्या के राजा और कल्याण के राशि हैं। राक्षस समूह रूपी मतवाले हाथी के लिये सिंह रूप और भक्तों के मन रूपी पवित्र वन में निवास करनेवाले हैं ॥७॥

अनघ अद्वैत अनवद्य अब्यक्त अज,
अमित अविकार आनन्द सिन्धो ।
अचल अनिकेत अबिरल अनामय
अनारम्भ अम्भोदनादन-बन्धो ॥८॥

निष्पाप, अद्वितीय, निर्दोष, अप्रकट, अजन्मे, असीम, विकार रहित और आनन्द के समुद्र हैं । निश्चल, स्थान रहित, सघन, आरोग्य अर्थात माया के विकारों से रहित, अनुष्ठान विहीन और मेघनाद के नाशक लक्ष्मणजी के भाई हैं ॥८॥

दासतुलसी खेद-खिन्न आपन्न इह,सोक सम्पन्न अतिसय सभीतं ।
प्रनत पालक राम परम करुना धाम, पाहि मामुर्बिपति दुविनीतं
॥९॥

यह तुलसीदास संसार के दुखों से दुखि, ग्लानि से दुर्बल, शोक से भरा, अत्यन्त भयभीत, आपद ग्रस्त होकर आप की शरण आया है । हे शरणागतों के रक्षक, अत्युत्तम दया के स्थान, धरती के स्वामी रामचन्द्रजी! मुझ दुर्विनीत की रक्षा कीजिये ॥९॥

(५७)

देहि सतसङ्ग निजङ्ग श्रीरङ्ग भव-भङ्ग-कारन सरन-सोक हारी।
जेतुभवदध्रि-पल्लव-समास्त्रित सदा, भक्तिरत विगत-संसय मुरारी
॥१॥

हे मुरारि लक्ष्मीकान्त ! सत्संग आप का अङ्ग है, वह मुझे प्रदान कीजिए, वह संसार के आवागमन का नाश निर्मूल करने वाला और शरणागतों के शोक का हरनेवाला है दीजिये। जो आप के चरण रूपी पल्लवों के आश्रित रह कर सदा भक्ति में तत्पर रहते हैं वह सन्देह से रहित हो जाते हैं ॥२॥

असुर सुर नाग नर जच्छ गन्धर्ब खग,
रजनिचर सिद्ध जे चापि अन्ने।
सन्त संसर्ग त्रयवर्गपर-परमपद,
प्राप्य निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ॥२॥

दैत्य, देवता, नाग, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध तथा ने जो भी जीव हैं; वह सभी आप की भक्ति में संलग्न सन्तो की संगति से त्रिवर्ग अर्थात अर्थ, धर्म, काम से भी परे मोक्षपद पाने की अप्राप्य गति प्रपात कर लेते हैं जो केवल आप के प्रसन्न होने से ही प्राप्त हो सकती हैं ॥२॥

वत्त वलि बान प्रहलाद मय ब्याध गज,

गिद्ध द्विजबन्नु निजधर्म त्यागी ।
साधु-पद-सलिल निधूत कल्मष सकल,
स्वपच जवनादि कैवल्य-भागी ॥३॥

वृत्रासुर, बलि, वाणासुर, प्रहाद, मयदैत्य, व्याध, गजेन्द्र, गिद्ध और स्वधर्म त्यागी अधम ब्राह्मण- अजामिल चाण्डाल तथा यवन आदि के समस्त पाप साधु-चरणों के बल से नष्ट हो गये और वह कल्याण पद - मोक्ष के भागी हो गए ॥३॥

सान्त निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन,
सब्द ब्रह्मैक पर ब्रह्मज्ञानी ।
दच्छ-समदृक स्वडक बिगत अति स्व-पर-मति,
परम रति बिराति तव चक्रपानी ॥४॥

हे चक्रपाणि ! जो आप में परम प्रेम रखते हैं वह शान्त, निस्पृह, ममता रहित, आरोग्य, गुणों से पृथक, अद्वितीय, वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, समता की दृष्टि में कुशल, आत्मरूप को जानने वाले, अपनी पराई बुद्धि से अतिशय हीन और वैराग्यवान होते हैं ॥४॥

बिस्व उपकार हित ब्यग्रचित सर्बदा,
त्यक्त मद मन्यु कृत पुन्य-रासी ।
जत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज सर्व हरि,
सहित गछन्ति छीराब्धि-बासी ॥५॥

संसार की भलाई के लिये जिनका चित्त सदा उद्विग्न रहता है, गर्व और क्रोध को त्याग कर पुण्य की राशि सम्पादन करते हैं। वह जहाँ रहते हैं वहाँ ब्रह्मा, शिवजी के सहित क्षीरसागर-निवासी विष्णु भगवान स्वयं जाते हैं ॥५॥

बेद-पयसिन्धु सुविचार-मन्दर महा,
अखिल मुनिबन्द निर्मथन कर्ता।
सार सत्सङ्गमुद्धृत्य इति निस्चितं,
बदत श्रीकृष्न बैदर्भि-भर्ता ॥६॥

वेद रूपी क्षीरसागर को सुन्दर विचार रूपी मन्दराचल से समस्त बड़े बड़े मुनिवृन्द रूपी देवता मन्थन करते हैं और उस मंथन से सत्संग रूपी सार अमृत निकालते हैं यह सिद्धान्त रुक्मिणीकान्त श्रीकृष्णचन्द्रजी कहते हैं ॥६॥

सोक सन्देह भय हर्ष तम तर्ष गन,
साधु सद-जुक्ति बिच्छेद कारी।
जथा रघुनाथ सायक निसाचर चमू,
निचय निर्दलन पटु बेग भारी ॥७॥

शोक, सन्देह, भय, हर्ष, अज्ञान और तृष्णा-समूह को साधुजन अपनी श्रेष्ठ युक्ति से वैसे ही नष्ट कर डालते हैं जैसे रघुनाथजी के बाण राक्षसों

की अपार सेना का नाश अत्यंत वेग और तीक्ष्ण शक्ति से करते हैं ॥७॥

जत्र कुत्रापिमम जन्म निजकर्म-बस,
भ्रमत जगजोनि सङ्कट अनेक।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा,
भवतु मे राम विनाममेकं ॥८॥

जहाँ कहीं भी मेरा जन्म अपने कर्मों के अधीन हो और संसार में विविध संकट सहता हुआ योनियों में भ्रमण करूँ। वहाँ आप की भक्ति और सज्जनों का समागम मुझे सदा प्राप्त हो, हे रामचन्द्रजी ! मेरा एकमात्र आसरा केवल आप हो ॥८॥

प्रबल भव जनित त्रय ब्याधि भेषज भक्ति,
भक्त भैषज्यमद्वैत दरसी ।
सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहाँ,
किमपि मति-बिमल कह दासतुलसी ॥९॥

संसार से उत्पन्न प्रबल तीन रोग अर्थात काम, क्रोध, लोभ के लिये भक्ति औषधि रूपी है और आत्मदर्शी भजन वैद्य रूप हैं। सन्त और ईश्वर में किंचित भी अन्तर नहीं है, तुलसीदासजी कहते हैं कि निर्मल बुद्धिवाले शिवजी, वेद, शेषनाग, शारदा आदि सब यही कहते हैं ॥९॥

(५८)

देहि अवलम्ब कर-कमल कमलारमन,
दमन-दुख समन सन्ताप भारी ।
ग्रसन अज्ञान निसिपति बिधुन्तुद गर्व,
काम करि मत्त हरि दूषनारी ॥१॥

हे लक्ष्मीकान्त ! अपने कर-कमलों का मुझे सहारा दीजिये, जो दुःख के दमन करनेवाले और विशाल सन्ताप के नाशक हैं । हे दूषण नाशक! आप अज्ञान रूपी चन्द्रमा के ग्रसने में राहु रूप हैं और कामदेव रूपी मतवाले हाथी के गर्व का मर्दन करने में सिंह रूप हैं ॥१॥

बपुष ब्रह्मांड सुप्रबत्ति लङ्का दुर्ग,
रचित मन दनुज मय रूप धारी ।
बिबिध कोसौघ अति रुचिर मन्दिर निकर,
सत्वगुन प्रमुख त्रय कटक-कारी ॥२॥

शरीर रूपी भूमण्डल में अत्यन्त प्रवृत्ति अर्थात संसारिक विषयों का ग्रहण रूपी लंका का गढ़ है, जिसको मन रूपी दानव ने मय दैत्य का रूप धारण कर बनाया है। इसमें विद्यमान अनेकों कोष अर्थात- अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोष इत्यादि, अत्यन्त सुन्दर मन्दिरों को श्रेणी हैं और तीनों गुण सत, रज, तम प्रधान सेनापति रूप हैं ॥२॥

कुनप अभिमान सागर भयङ्कर घोर,
बिपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक रागादि सङ्कुल मनोरथ सकल,
सङ्ग सङ्कल्प बीची बिकारं ॥३॥

देहाभिमान रूपी अत्यन्त भयंकर समुद्र अत्यंत ही अथाह, दुर्गम और अपार है। राग द्वेषादि रूपी घड़ियालों से भरा है, सम्पूर्ण कामना तथा आसक्ति की प्रतिज्ञाएँ तरंग -मालाओं का परिणाम है ॥३॥

मोह दसमौलि तदभ्रात अहँकार पाकारिजित-काम बिस्राम हारी ।
लोभ-अतिकाय मत्सर-महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट बिबुधान्तकारी ॥४॥

द्वेष-दुर्मुख दम्भ-खर अकम्पन-कपट,
दर्प-मनुजाद मद सूलपानी ।
अमित बल परमदुर्जय निसाचर निकर,
सहित षडबर्ग मो जातुधानी ॥५॥

मोह रूपी रावण, अहंकार रूपी उसका भाई कुम्भकर्ण, कामदेव रूपी इन्द्रजीत आनन्द के हरनेवाले हैं। लोभ रूपी अतिकाय, मत्सर रूपी दुष्ट महोदर, क्रोध पापात्मा देवांतक रूपी है। द्रोह रूपी दुर्मुख, दंभ रूपी खर, कपट रूपी अकम्पन, दर्प रूपी मनुजभक्षक और मद रूपी शूलपाणि असीम बली, अत्यन्त अजेय राक्षसों का समुदाय

है, इन मोह आदि षड्वर्ग राक्षसों के साथ, इन्द्रियाँ रुपिणी राक्षसियां भी शरीर रूपी कोट में निवास करती हैं ॥५॥

जीव भवदध्रि सेवक विभीषन बसत, मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता ।
नियम जम सकल सुरलोक लोकेस लङ्केस-बस नाथ अत्यन्त भीता ॥६॥

आप के चरणों का सेवक जीव रूपी विभीषण दुष्टो रूपी वन के बीच चिन्ता से जकड़ा हुआ निवास करता है। हे नाथ ! नियम रूपी देवलोक और संग्रम रूपी लोकपाल सब रावण के वश में होकर अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं ॥६॥

ज्ञान अवधेस गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भू भार हो ।
भक्त सङ्कष्ट अवलोक पितु वाक्य कृत, गमन किय गहन वैदेहि भर्ता ॥७॥

ज्ञान रूपी राजा दशरथ और सुन्दर भक्ति रूपिणी गृहभार्या कौशल्याजी के यहाँ जन्म लेकर आप धरती का बोझ हरनेवाले हैं। हे जानकी नाथ ! भक्तों को सङ्कटापन्न देख कर जैसे पिता के वचन से आपने वन-गमन किया वैसे ही मेरे ह्रदय रुपी वन में पधारिये ॥७॥

मोच्छ साधन अखिल भालु मर्कट विपुल,
ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू ।

प्रबल वैराग्य दारुन प्रभजन-तनय,
विषय वन भवनमिव धूमकेतू ॥८॥

मोक्ष के सम्पूर्ण साधन समूह भालू-बन्दर रूप हैं, ज्ञान रूपी सुग्रीव ने समुद्र में पुल बना दिया हैं। प्रबल वैराग्य रूपी पवन कुमार विषय समूह रूपी मन्दिर के लिये भीषण अग्नि के समान हैं ॥८॥

दुष्ट दनुजेस निवंस कृत दास हित, विस्व दुख हरन बोधेकरासी ।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा, दासतुलसी हृदय-कमल-बासी ॥ ९ ॥

हे सम्यकज्ञान के अद्वितीय राशि, रामचन्द्रजी! आपने भक्तों के उपकारार्थ दुष्ट रावण का वंश सहित नाश करके संसार का दुःख दूर कीजिए। अपने छोटे भाई लक्ष्मणजी और जानकीजी के सहित सदा तुलसीदास के हृदय रूपी कमल में निवास कीजिए ॥ ९ ॥

(५९)

दीन उद्धरन रघुबर्ज करुना-भवन, समन सन्ताप पापौघहारी ।
बिमल विज्ञान विग्रह अनुग्रह रूप, भूप बर बिबुध नर्मद खरारी ॥१॥

हे रघुनाथजी ! श्राप दीनजनों के उद्धार करने वाले, दया के स्थान, दुःख नाशक और पाप-समूह का हरण करने वाले हैं । निर्मल विज्ञान

के शरीर, कृपा के रूप, राजाओं में श्रेष्ठ, देवताओं के कल्याणकारी और खर के बैरी हैं ॥१॥

संसार कान्तार घोर गम्भीर घन, गहन तरु-कर्म सङ्कुल मुरारी।
बासना बल्लि खर कंटकाकुल बिपुल, निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी ॥२॥

हे मुरारि! भगवन यह संसार रूपी अत्यंत घना भयावह जंगल कर्म रूपी जटिल वृक्षों से परिपूर्ण है । कामना रूपी लताएं कठिन काँटों से युक्त अत्यंत फैली हुई हैं, यह सघन पेड़ों का वन बड़ा दुष्कर है ॥२॥

बिबिध चितरत्ति खग निकर सेनोलक,
काक बक गिद्ध आमिष अहारी ।
अखिल खल निपुन छल छिद्र निरखत सदा,
जीव जन पथिक मन खेद-कारी ॥ ३॥

अनेक प्रकार चित्त की गति बाज, उलूक, कौआ, बगुला और गिद्ध आदि मांसाहारी पक्षियों का झुण्ड है। यह सब दुष्ट धोखेबाजी में चतुर सदा अवसर देखा करते हैं और अवसर पाते ही जीव रूपी - पथिकजन के मन में कष्ट उत्पन्न करनेवाले हैं ॥३॥

क्रोध करि मत्त मृगराज-कन्दर्प मद,
दर्प बक भालु अति उग्रकर्मा ।

महिष-मत्सर-क्रूर लोभ-सूकरसूर,
फेरु-छल दम्भ मार्जारधर्मा ॥४॥

इस संसार वन में क्रोध रूपी मतवाला हाथी, कामदेव रूपी सिंह, मद रूपी भेड़िया, गर्व रूपी भालू घोर कर्म करनेवाले हैं । मत्सर रूपी निर्दयी भैंसा, लोभ रूपी सुअर, छल रूपी सियार और घमण्ड रूपी बिलाव धर्मी अर्थात बिल्ली के समान छिप कर घात करनेवाला है ॥४॥

कपट-मर्कट बिकट ब्याघ्र-पाखंडमुख,
दुखद मृग 'ब्रात उत्पातकर्ता ।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं,
पाहि मा पाहि भो विस्व-भर्ता ॥५॥

कपट रूपी बन्दर, धूर्तता रूपी भयंकर व्याघ्र आदि दुःखदाई जानवरों का झुण्ड संत रुपी मृगों को सदा संतप्त करके उपद्रव मचाने वाले हैं। यह शोक हृदय में देख कर मैं आप की शरण आया हूँ, हे जगदीश्वर! आप विश्व के पालनकर्ता हैं, मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥५॥

प्रबल अहँकार दुर्घट महीधर महा,
मोह-गिरि-गुहा निविड़ान्धकारं।
चित्त-बेताल भनुजाद-मन प्रेतगन,
रोग भोगौघ-बस्चिक बिकारं ॥६॥

उद्धत अहंकार रूपी दुर्गम पहाड़, महामोह रूपी घनी अँधेरी पर्वत की गुफा है। चित्त रूपी बेताल, मन रूपी राक्षस, रोग रूपी प्रेतगण और विलास-समूह रूपी बिच्छू का दोष जहर है ॥६॥

विषयसुख लालसा दंस-मसकादि खल,
झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी ।
तत्र प्राक्षिप्त तव विषम-माया नाथ,
अन्ध मैं मन्द ब्यालाद-गामी ॥७॥

विषयों के आनन्द की अत्यन्त अभिलाषा मच्छर आदि विषैली मक्खियों का काटना है, दुष्ट मनुष्य रुपी झिल्ली और रूप, रस, गन्धादि सर्पराज अजगर हैं। हे गरुड़ गामी! हे स्वामिन् ! आप की भीषण माया ने मुझे ऐसे भयंकर वन में ढकेल रक्खा है और मैं मूर्ख अन्धा होने के कारन यहाँ से निकल कर भागने में अशक्य हूँ ॥७॥

घोर अवगाह भव-श्रापगा पाप-जल,पूर दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर अपारा ।
मकर षड़बर्ग गो-नक चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ दुख तीव्र-धारा ॥८॥

विकराल अथाह संसाररूपी नदी पाप रूपी जल से भरी दुर्दर्शन, दुर्गम और अपार है। षड्वर्ग - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रुपी मगर, इन्द्रिय रूपी घड़ियाल, विषय रूपी कछुओं से व्याप्त, शुभाशुभ कर्म रूपी किनारे और दुःख रूपी प्रचण्ड धारा है ॥८॥

सकल सङ्कट पोच सोच बस सर्बदा,
दासतुलसी विषम गहन प्रस्तं।
त्राहि रघुबंस-भूषन कृपाकर कठिन,
काल बिकराल कलि त्रास त्रस्तं ॥९॥

समस्त नीच संयोग से तुलसीदास इस भीषण वन में जकड़ा हुआ सदा चिंता के अधीन हो रहा है । हे कृपा की खान रघुकुल भूपण ! मैं भयंकर कलिकाल के भय से अत्यंत त्रस्त हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥९॥

(६०)

नौमि नारायनं नरं करुनायनं, ध्यान पारायनं ज्ञान मूलं ।
अखिल संसार उपकार कारन सदय-हृदय. तप निरत प्रनतानुकूलं ॥१॥ .

ज्ञान के मूल, ध्यान में तत्पर और दया के स्थान श्री नर-नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त संसार के उपकार के लिये दयामय हृदय वाले भक्तों पर कृपा करनेवाले परमात्मा तपस्या में लगे हुए हैं ॥१॥

स्याम नव तामरस-दाम-दुति बपुष छबि,
कोटि मदनार्क अगनित प्रकासं।
तरून रमनीय राजीव लोचन ललित,

बदन राकेस कर निकर हासं॥२॥

जिनके शरीर की कान्ति नवीन नील कमल की माला के समान और शोभा करोड़ों कामदेव के बराबर है और जो असंख्य सूर्य के समान प्रकाशमान हैं । नव-विकसित खिले हुए मनोहर लाल कमल के समान सुन्दर नेत्र और मुख रूपी पूर्ण चन्द्रमा में हंस रूपी समूह किरणे विराजमान हैं ॥२॥

सकल सौन्दर्य-निधि बिपुल गुन धाम विधि,
बेद बुध सम्भु सेवित अमानं ।
अरुन पद-कल मकरन्द मन्दाकिनी,
मधुप मुनिबन्द कुन्ति पानं ॥३॥

जो समस्त सुन्दरता के भण्डार, विशाल गुणों के मन्दिर, ब्रह्मा, वेद, विद्वान और शिवजी से सेवनीय तथा निरभिमान है । लालकमल रूपी चरणों के प्रेम रूपी मकरन्द गंगाजल को मुनि वृन्द रूपी मधुकर पान करते हैं ॥३॥

सक्र प्रेरित घोर मार मद भङ्ग कृत, क्रोधगत बोधरत ब्रह्मचारी ।
मारकंडेय मुनिबर्ज हित कौतुकी, बिनाह कल्पान्त प्रभु प्रलय-कारी ॥४॥

इन्द्र का भेजा हुआ कामदेव, उसके भयंकर गर्व को नाश करनेवाले, क्रोध रहित, ज्ञान में तत्पर और ब्रह्मचारी हैं। मार्कण्डेय मुनिवर के

लिये प्रभु खेल ही खेल में बिना कल्पान्त के प्रलय लीला करनेवाले हैं ॥४॥

पुन्य बन सैल सरि बदरिकासम सदासीन पद्मासनं एकरूपं ।
सिद्ध जोगीन्द्र बन्दारकानन्द-प्रद, भद्र-दायक दरस अतिअनूपं॥५॥

पवित्र वन, पर्वत और नदियों से घिरे बदरिकाश्रम में एक रूप सदा पद्मासन से विराजमान सिद्ध, योगेश्वर और देवताओं को आनन्द देनेवाले जिनका दर्शन अत्यन्त अपूर्व कल्याणदायक है॥५॥

मान मन भङ्गचित भङ्ग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन-भर्ता ।
द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दयं क्रूर-कर्म कर्ता ॥६॥

लोकों के स्वामी के धाम का मार्ग दुर्गम है, मद, क्रोध और लोभ रूपी पर्वत पथिकों के मन का अभिमान चूर चूर करता है जिससे चित्त का हर्ष टूट जाता है। ईर्ष्या, डाह और मोह रूपी प्रबल बाधा से चोर ठग जो बड़े ही निर्दय भयंकर कर्म करनेवाले हैं उनसे बच कर धाम में पहुँचना बड़ा कठिन है ॥६॥

विकट तर बक्र छुरधार प्रमदा तीब्र, दर्प कन्दर्प बर खड़ धारा ।
धीर गम्भीर मन पीर कारक तत्र, को बराका बयं बिगत सारा ॥७॥

यहाँ अत्यन्त भयंकर टेढ़ी छूरे की तीन धार रूपिणी स्त्री है, घमण्ड और कामदेव रूपी तलवार की तेज धार हैं। वहाँ धीरवान सहनशीलों

के मन में भी यह पीड़ा पहुँचाते हैं तब हम सरीखे तत्व विहीन तुच्छ जीवों की तो गिनती ही क्या है ? ॥७॥

परम दुर्घट पन्थ खल असङ्गत साथ,
नाथ नहिं हाथ बर बिरतिं यष्टी ।
दर्सनारत दास त्रसित माया पास,
त्राहि हरि त्राहि हरि जानि कष्टी ॥८॥

हे नाथ ! मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, अयोग्य दुष्टों का संग है और हाथ में उत्तम वैराग्य रूपी लाठी भी नहीं है। यह दास दर्शन के लिये दुखी है, इसके माया-जाल में पड़ कर भयभीत दुखी जान कर, हे भगवन् ! मेरी रक्षा कीजिये; हे वैकुण्ठनाथ ! मुझे बचाइये ॥८॥

दासतुलसी दीन धर्म सम्बल हीन,
समित अति खेद मति मोह ग्रासी ।
देहि अवलम्ब न बिलम्ब अम्भोज कर,
चक्रधर तेज बलं सर्म, रासी॥९॥

दीन तुलसीदास धर्म रूप राहखर्च से रहित, थका हुआ अत्यन्त मोह ने अज्ञान खेद से मेरी बुद्धि का नाश कर दिया है। हाथ में कमल और चक्र धारण किये, तेज, बल और कल्याण की राशि हे भगवान् मुझे बिना विलम्ब के तुरन्त सहारा दीजिये ॥९॥

(६१)

सकल सुखकन्द आनन्द बन पुन्य कृत,
बिन्दुमाधव इन्द बिपति हारी ।
यस्याङ्घ्रि पाथोज अज सम्भु सनकादि,
सेष मुनिबन्द अलि निलयकारी॥१॥

हे बिन्दुमाधव भगवान ! आप सम्पूर्ण सुखों के मूल, आनन्दवन काशी को पवित्र करनेवाले, राग द्वेष आदि द्वन्दजनित विपत्ति के हरनेवाले हैं। जिनके चरण-कमलों में ब्रह्मा, शिव, सनकादि, शेष और मुनि समूह रूपी भ्रमर सदा निवास करते हैं ॥१॥

अमल मरकत स्याम काम सतकोटि छबि,
पीतपट तड़ित इव जलद-नीलं ।
अरुन सतपत्र लोचन बिलोकनि,
चारु, प्रनतजन सुखद करुनाब्धि सीलं ॥२॥

आपका निर्मल नीलमणि के समान श्याम शरीर, करोडो कामदेव की शोभा से युक्त और धारण किया हुआ पीताम्बर श्याम मेघ में बिजली के समान शोभायमान है। लालकमल के सदृश्य नेत्र, सुन्दर चितवन, दीनजनों के सुखदाता, दया और शील के सागर हैं ॥२॥

काल गजराज मृगराज दनुजेस बन,
दहन पावक मोह: निसि दिनेसं ।

चारि भुज चक्र-कौमोदकी-जलज-दर,
सरसिजोपरि जथा राजहंसं ॥३॥

काल रूपी गजेन्द्र के लिये सिंह रूप, राक्षसराज रूपी धन को जलाने में अग्नि रूप और अज्ञान रूपी रात्रि का नाश करने में सूर्य रूप हैं। चारभुजायें हैं, उनमें चक्र, कौमोद की नाम की गदा, कमल और शंख ऐसा शोभित है जैसे कमल के ऊपर राजहंस विराजमान हो ॥३॥

मुकुट कुंडल तिलक अलक अलि-बात इव,
भुकुटि द्विज़ अधर बर चारु नासा।
रुचिर सुकपोल दर ग्रीव सुख सीव हरि,
इन्दुकरं कुन्दमिव मधुर हासा ॥४॥

सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल और माथे पर तिलक शोभित है, केश भँवरों के झुण्ड के समान, भौंह, दाँत, होंठ और नासिका श्रेष्ठ सुन्दर हैं। सुन्दर शोभा युक्त गाल, शंख के समान गला, चन्द्रमा की किरण और कुन्द के फूल की तरह मधुर हँसी है, हे हरे! आप अपार आनंद हैं ॥४॥

उरसि बनमाल सुबिसाल नव मञ्जरी, भ्राज श्रीवत्सलाञ्छ नमुदारं।
परम ब्रह्मन्य अतिधन्य गतमन्यु अज, अमित बल बिपुल महिमा अपारं ॥५॥

हृदय पर सुन्दर नवीन मजरियों की विशाल वनमाला और श्री वत्स का श्रेष्ठ चिह्न शोभायमान है। अतिशय ब्राह्मण सेवी, अत्यन्त धन्य, क्रोध रहित, अजन्मे, अनन्त बलशाली तथा महान और अपार महिमावाले हैं ॥५॥

हार केयूर कर कनक कङ्कन रतन,
जटित मनि-मेखला कटि प्रदेसं ।
जुगल पद नपुरा मुखर कल हंसवत,
सुभग सबर्बाङ्ग सौन्दर्य वेसं ॥६॥

गले में मोतियों की माला, बाजुओं पर सोने के बाजूबंद, हाथों में रत्न-जड़ित सुवर्ण के कड़े और कमर में मणियों की करधनी है। दोनों चरणों में सुन्दर हंस के समान धुंघुरुओं के शब्द हो रहे हैं, मनोहर सर्वांग सुन्दरता मय वेश है ॥६॥

सकल सौभाग्य सञ्जक्त त्रैलोक्य श्री,
दच्छ दिसि रुचिर वारीस कन्या ।
बसत बिबुधापगा निकट तट सदन बर,
नयन निरखन्ति नर तेति धन्या ॥७॥

समस्त मंगलों से युक्त, तीनों लोकों की शोभा समुद्रतनया लक्ष्मीजी सुन्दर दाहिनी ओर विराजमान हैं । गंगा जी के समीप किनारे पर उत्तम मन्दिर में आप निवास करते हैं, जो मनुष्य नेत्रों से आपका दर्शन करते हैं वह धन्य हैं ॥७॥

अखिल मङ्गल भवन निबिड़ संसय समन,
दमन जिना टवी कष्ट हर्ता ।
बिस्वधृत बिस्वहित अजित गोतीत सिव,
विस्व पालन-हरन बिस्व-कर्ता ॥८॥

सम्पूर्ण मंगलों के स्थान, घने सन्देहों के नाशक, पाप रूपी वनों का विनाश करने वाले और कष्टों को हरने वाले हैं। जगत को धारण करनेवाले, संसार के उपकारी, अजेय, इन्द्रियों से परे, कल्याण रूप, पृथ्वी के पालन, संहार तथा विश्व का सृजन करने वाले हैं ॥८॥

ज्ञान विज्ञान वैराग्य ऐस्वर्ज निधि, सिद्धि अनिमादि दे भूरि दानं ।
ग्रसत भव-ब्याल अति त्रास तुलसीदास, त्राहि श्रीराम उरगारिजानं ॥९॥

आप ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्या के भण्डार, अणिमा आदि बहुत सी सिद्धियो का दान देने वाले हैं । हे गरुड़ पर सवार होनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! तुलसीदास को संसार रूपी सर्प निगल रहा है, उसके भय से मैं अत्यन्त विकल हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥९॥

(६२)

राग-आसावरी

इहइ परम फल परम बड़ाई ।

नखसिख रुचिर विन्दुमाधव छबि, निरखहि नयन अधाई ॥१॥

इस शरीर का यही परम फल और अत्युत्तम महिमा है कि आँखें नख से शिखा पर्यन्त श्री बिन्दुमाधव भगवान की शोभा देख कर तृप्त हुईं ॥१॥

बिसद किसोर पीन सुन्दर वपु, स्याम सुरुचि अधिकाई ।
नीलकम बारिद तमाल मनि, इन्ह. तनु त दुति पाई ॥२॥

जिनकी मनोहर किशोर अवस्था, सुन्दर पुष्ट शरीर की श्यामता की सुहावनी छवि असीम शोभायमान हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है ली नीलकमल, मेघ, तमालवृक्ष और नीलम -मणि ने इन्हीं के शरीर से कान्ति पाई है ॥२॥

मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख, अति अदभुत उपमाई।
अरुन नील पाथोज प्रसव जनु, मनिजुत दुल समुदाई ॥३॥

कोमल चरणों में सुन्दर चिह्न वज्र, अंकुश, कमल, ध्वजा और उँगलियों में नखों की अत्यन्त विलक्षण उपमा अनुभव हो रही है। ऐसा मालूम होता है मानों लाल और श्याम कमल से मणियां से युक्त पत्तों के समूह उत्पन्न किये हो ॥३॥

जातरूप मनि जटित मनोहर, नपुर जन सुखदाई ।
जनु हर उर हरि बिबिध रूप धरि, रहे बर भवन बनाई ॥४॥

सवर्ण के नुपुर सुन्दर मणियों से जड़े हुए सेवकों को सुख देनेवाले हैं। वह ऐसे प्रतीत होते हैं मानों शिवजी के हृदय में उत्तम गृह बना कर भगवान विविध रूप धारण करके निवास कर रहे हों ॥४॥

कटितट रटति चारु किङ्किन रव, अनुपम बरनि न जाई ।
हेम जलज कल कलिन मध्य जनु, मधुकर मुखर सुहाई ॥५॥

कमर में सुन्दर करधनी के बोलने का शब्द उपमा रहित है, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है मानों स्वर्ण कमल की सुन्दर कंलियों में भंवरों का सुहावना गुंजार हो ॥५॥

उर बिसाल भृगु चरन चारु अति, सूचत कोमलताई।
कङ्कन चार विविध भूषन बिधि, रचि निज कर मन लाई.॥६॥

विशाल हृदय में भृगुमुनि के चरण का चिह्न अत्यन्त सुन्दर कोमलता को सूचित करता है। मनोहर कंगन और तरह तरह के आभूषण ऐसे सुहावने मालूम होते हैं माने ब्रह्मा ने मन लगाकर उन्हें अपने हाथ से बनाया हो ॥६॥

गजमनि माल बीच भ्राजत कहि, जाति न पदिक निकाई।
जन उडगन-मंडल बारिद पर, नवग्रह रची अथाई ॥७॥

गजमुक्ता की माला के बीच में चौकी शोभित है, उसकी सुन्दरता कही नहीं जाती है। ऐसा मालूम होता है मानों श्याममेघ के ऊपर नवग्रहों ने तारागणों का सभा-मण्डल बनाया हो ॥७॥

भुजगभोग भुजदंड का दर, चक्र गदा बनिआई।
सोभा सीव ग्रीव चिबुकाधर, बदन आमत छवि छाई ॥८॥

साँप के शरीर के समान भुजदण्ड हैं, हाथ में कमल, शंख, चक्र और गदा है। ग्रीवा सुन्दरता की सीमा हैं और ठोड़ी तथा होंठों सहित मुख-मण्डल की असीम छवि हो रही है ॥८॥

कुलिस कुन्द-कुड़मल दामिनि दुति, दसनन्हि देखि लजाई ।
नासा नयन कपोल ललित स्रुति, कुंडल भ्रू मोहि भाई ॥९॥

दाँतों को देख कर हीरा, कुन्द की कली और बिजली की कान्ति लज्जित हो जाती है। नासिका, नेत्र और गाल मनोहर हैं, कानों के कुण्डल तथा भौहें मुझे सुहाती है ॥९॥

कुञ्चित कच सिर मुकुट भाल पर, तिलक कहउँ समुझाई।
अल्प तड़ित जुग रेख इन्दु महँ, रहि तजि चालताई ॥१०॥

सिर पर घुंघराले बाल और मुकुट शोभित हैं, माथे पर तिलक की अनुपम छवि को समझा कर कहता हूँ कि वह ऐसे प्रतीत होते हैं

मानों चन्द्रमा में बिजली को दो पतली रेखाएँ चञ्चलता चंचलता छोड़ कर विराज रही हों ॥१०॥

निर्मल पीत-दुकूल अनूपम, उपमा हियन समाई ।
बहु मनि जुत गिरि. नील सिखर पर, कनक बसन रुचिराई ॥११॥

निर्मल पीताम्बर अनुपमेय है, उसके लिये कोई उपमा हृदय में नहीं पाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों नीलपर्वत के श्रृंग पर बहुत सी मणि जड़ी हुई सुवर्ण के वस्त्र की सुन्दरता दिखाई देती हो ॥११॥

दच्छभाग अनुराग सहित इन्दिरा अधिक ललिताई।
हेमलता जन तक तमाल दिग. नील निचोल प्रोढाई ॥१२॥

दाहिनी ओर प्रीति सहित लक्ष्मीजी विशेष सुन्दरता फैला रही हैं । वह ऐसी शोभायमान होती है मानों तमालवृक्ष के समीप सुवर्ण की लता नीले वस्त्र से ढकी हो ॥१२॥

संत सारदा सेष स्रति मिलि के, सोभा कहि न सिराई।
तुलसिदासं मतिमन्द द्वन्द रत, कहइ कवनि बिधि गाई ॥१३॥

सैकड़ों सरस्वती, शेष,और वेद मिल कर भी इस अतुलित शोभा का वर्णन करें तो पार नहीं पा सकते, फिर इस शोभा को राग द्वेष दंद्वों में फंसा हुआ तुलसीदास किस तरह गा कर कह सकता है ? ॥१३॥

(६३)

<u>राग-जयतिश्री</u>

मन इतनोई है या तनु को परम फल ।
नखसिख सुभंग बिन्दुमाधव छवि, तजि सुभाउ अवलोकु एक पल ॥१॥

हे मन ! इस शरीर का परमोत्तम फल इतना ही है कि नख से शिखा पर्यन्त सुन्दर अंगों वाले बिन्दुमाधव भगवान की सुन्दर छवि एक क्षण के लिए अपना चंचल स्वभाव त्याग कर दर्शन कर ॥१॥

तरुन अरुन अम्भोज चरन. मृदु, नख दुति हृदय तिमिर हारी ।
कुलिस केतु जव जलज़ रेख बर, अंकुस मन गज बस कारी ॥२॥

नवीन लालकमल के समान कोमल चरण हैं, नखों की कान्ति हृदय के अन्धकार को हरनेवाली है । वज्र, पताका, यव और कमल के उत्तम चिह्न तथा अंकुश मन रूपी हाथी को वश में करनेवाला है ॥३॥

कनक जटित मनि नूपुर मेखल, कटितट रटति मधुर बानी ।
त्रिवली उदर गभीर नाभिसर, जहँ उपजे बिराश्चि ज्ञानी ॥३॥

सवर्ण की करधनी उसमें मणियों के जड़े हुए नूपुर कमर में प्रिय शब्द बोल रहे हैं। उदर में तीन रेखाएँ हैं और नाभि रूपी गम्भीर सरोवर है जहाँ ज्ञानी ब्रह्माजी उत्पन्न हुऐ थे ॥३॥

उर बनमाल पदिक अति सोभित, विप्र-चरन चित कह करबैं ।
स्याम तामरस दाम बरन बपु, पीत बसन सोमा बरं ॥४॥

हृदय में वनमाला और मणियों की चौकी अत्यन्त शोभित है तथा ब्राह्मण के चरण का चिन्ह पर पीताम्बर छवि की वर्षा कर रहा है ॥४॥

कर कङ्कन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा कम दर चारु चक्र धर, नाग-सुंड सम भुज चारी ॥५॥

हाथ में सुन्दर कंगन, भुजदण्ड पर बाजूबंद और उँगली में अँगूठी विलक्षण आनन्द दे रही है। गदा, कमल, शंख और सुदर्शन चक्रधारण किये चारों भुजाएँ हाथी के सूंड सदृश्य उतार चढाव वाली हैं ॥५॥

कम्बु ग्रीव छवि साँव चिबुक द्विज, अधर अरुन उन्नत नासा ।
नव राजीव नयन ससि-भानन, सेवक सुखद बिसद हासा ॥६॥

शंख के समान रेखा युक्त कंठ शोभा का सीमा है, ठोढ़ी, दाँत, लाल होंठ सुन्दर ऊँची नासिका है। नवीन कमल के तुल्य नेत्र, चन्द्रमा के सदृश मुख और मृदु मुस्कान भक्तों को सुख देनेवाली है ॥६॥

रुचिर कपोल' स्रवन-कुंडल सिर-मुकुट सुतिलक भाल भ्राजै ।

ललित भृकुटि सुन्दर चितवनि कच, निरखि मधुप प्रवली लाजै॥७॥

सुन्दर गाल,कानों में कुण्डल, सिर पर मुकुट, माथे में मनोहर तिलक शोभायमान है। सुहावनी भौंह, सुन्दर चितवन और बालों को देख कर भ्रमरों की पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं ॥७॥

रूप सील गुन-खानि दच्छ दिसि, सिन्धु-सुता रत पद सेवा ।
जाकी कृपा कटाच्छ चहत सिव, विधि मुनि मनुज दनुज देवा ॥८॥

दाहिनी ओर रूप, शील और गुणों की खान सागर की कन्या लक्ष्मीजी चरणों की सेवा में तत्पर है। जिनकी कृपा-कटाक्ष को शिवजी, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता चाहते हैं ॥८॥

तुलसिंदास भव त्रास मिटइ तब, जब मति एहि सरूप अटकै ।
नाहित दीन मलीन हीन-सुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटके ॥९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि संसार का भय तभी मिट सकता है जब बुद्धि, इस सुन्दर रूप में लगी रहे, अन्यथा दुखी, उदास और सुख से खाली होकर करोड़ों जन्म तक संसार की योनियों में घूम घूम कर भटकता रहेगा ॥९॥

(६४)

राग-वसन्त

बन्द रघुपति करुनानिधान । जा तँ छूटइ भव-भेद-ज्ञानं ॥१॥

मैं करुणानिधान रघुनाथजी को प्रणाम करता हूँ जिससे संसार-सम्बन्धी भेदज्ञान अर्थात अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझने की बुद्धि छूट जाती है ॥१॥

रघुबंस-कुमुद सुखप्रद निसेस । सेबित पद-पङ्कज अज महेस ।
निजभक्त हृदय पाथोज मुङ्ग । लावन्य बपुष अगनित अनङ्ग ॥२॥

श्री राम रघुकुल रूपी कुमुद को चन्द्रमा के समान शोभित करने वाले हैं, जिनके चरण कमल ब्रह्मा और शिवजी द्वारा सेवित है। अपने भक्तों के हृदय रूपी कमल में बसनेवाले भ्रमर रूप हैं, जिनके शरीर का लावण्य असंख्यों कामदेव के समान है ॥२॥

अति प्रबल मोह-तम मारतंड । अज्ञान गहन पावक प्रचंड ॥
अभिमान-सिन्धु कुम्भज उदार । सुर-रञ्जन भञ्जन भूमि भार ॥३॥

अत्यन्त प्रबल अज्ञान रूपी अन्धकार के लिये सूर्य रूप और मोह रुपी वन के हेतु भीषण दावानल रूप हैं । अभिमान रूपी समुद्र को

सोखने के लिए श्रेष्ठ अगस्त्य हैं, देवताओं के प्रसन्न करनेवाले और धरती का बोझ नष्ट करने वाले हैं ॥३॥

रागादि-सर्पगन पन्नगारि। कन्दर्प-नाग मृगपति मुरारी ॥
भव-जलधि पोत चरनारबिन्द। जानकीरमन आनन्द कन्द ॥४॥

रागद्वेष प्रादि रूपी सर्प-समूहों के लिये गरुड़ रूप और मुरारि भगवान कामदेव रूपी हाथी के लिए सिंह हैं। संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए जिनके चरण कमल जहाज रूप हैं, जानकीजी को रमानेवाले और आनन्द की वर्षा करने वाले हैं ॥४॥

हनुमन्त प्रेम बापी मराल । निष्काम कामधुकगो दयाल ।
त्रैलोक्य-तिलक गुन-गहन राम । कह तुलसिदास बिस्राम धाम॥५॥

हनुमानजी के प्रेम रूपी बावली के राजहंस, कामना रहित जनों के लिये कामधेनु रूप दया के स्थान हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी तीनों लोकों के शिरोभूषण, गुणों में अथाह और विश्राम के मन्दिर हैं ॥५॥

(६५)

<u>राग-भैरव</u>

राम राम रमु राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
राम नाम नव नेह मेह को, मन हठि होइ पपीहा ॥१॥

अरी जिह्वा ! तू राम राम में रमा कर, राम राम रटा कर और राम राम जपा कर । राम नाम के नवीन स्नेह रूपी मेघ का, हे मन! तू भी हठ करके चातक बन जा ॥१॥

सब साधन फल कप सरित सर सागर सलिल निरासा।
राम नाम रति स्वाति सुधा सुभ, सीकर प्रेम पियासा ॥२॥

अन्य सब साधनों के फल कुआँ, नदी, तालाब और समुद्र के जल हैं, उनकी आशा त्याग कर राम-नाम की प्रीति रुपी स्वाती का श्रेष्ठ जल है, उसके लघु बिन्दुओं का प्रेमी होकर प्यासा बन जा ॥२॥

गरजि तरजि पाषान बरषि पबि, प्रीति परखि जिय जाने।
अधिक अधिक अनुराग उमग उर, पन परमिति पहिचान ॥३॥

गर्जन करके डाँट डपट कर और ओले रुपी वज्र की वर्षा करके मेघ चातक के प्रेम की परीक्षा करता है, परन्तु जब यह जान लेता है परीक्षा लेने पर इसका प्रेम और उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है,

तब प्रेम-पण पहचान कर प्रसन्न होता है और जल से तृप्त कर देता है ॥३॥

राम नाम गति राम नाम मति, राम नाम अनुरागी ।
होइगे हैं 'होइहैं जे आगे, ते त्रिभुवन बड़ भागी ॥४॥

रामनाम की शरण, रामनाम में बुद्धि और रामनाम के प्रेमी जो हो गये हैं, वर्तमान में हैं और आगे होंगे वह तीनों लोकों में बड़े भाग्यवान समझे जाते हैं ॥४॥

एकअङ्ग-मग अगम गवन करि, बिलम न छिन छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि, निरुपधि नेम निबाह ॥५॥

एकांगी प्रीति के दुर्गम मार्ग में चल कर देरी न कर और न क्षण क्षण छाँह अर्थात संसारी मुख की राह देख । तुलसीदासजी कहते हैं कि अपना कल्याण तो अपनी ओर से निःस्वार्थ भाव से इसी रीति का निर्वहन करने में है ॥५॥

(६६)

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे ।
घोर भव नीरनिधि नाम निज नाव रे ॥१॥

अरे पागल ! तू राम जप, राम जप, राम जप । संसार रूपी भयङ्कर समुद्र से पार करनेवाला नाम ही सनातन नौका रूप है ॥१॥

एकहि साधन सब रिधि सिधि साधि रे ।
ग्रसे कलि-रोग जोग-सञ्जम-समाधि रे ॥२॥

एक ही राम नाम के साधन से सब ऋद्धि सिद्धियों को साथ ले, अन्यथा योग, संयम और समाधि, इन समस्त शुभ साधनों को तो कलि रूपी रोग ने ग्रस लिया है ॥२॥

जग नभ-बाटिका रही है फलि फुलि रे ।
धुआँ कैसो धव रहर देखि तू न भूलि रे ॥३॥

संसार रूपी आकाश की फुलवारी फूल फल रही है। तू इस धुएँ की मीनार को देख कर भूल न जाना था
कि नभ-वाटिका और धुएँ के महल दोनों मिथ्या सार हीन हैं, उसी तरह संसारी सुख - झूठा सुख है । ॥३॥

भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो बाम रे ।
राम नामही सौं अन्त सबही को काम रे ॥४॥

जो भले हैं और जो बुरे हैं; जितने सीधे टेढ़े जीव हैं, अन्त में सभी का काम रामचन्द्रजी के नाम से ही होता है ॥४॥

राम नाम छाड़ि जो भरोसो करें और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगइ कूर कौर रे॥५॥

राम नाम का भरोसा छोड़ कर जो दूसरे का भरोसा करता है, तुलसी के विचार में वह कुमार्गी ऐसा मूर्ख है जो परोसा हुआ भोजन त्याग कर एक एक टुकड़ा लिए कुत्ते की तरह माँगता फिरता है ॥५॥

(६७)

राम नाम जपु जीव सदा सानुराग रे ।
कलि न विराग जोग जाग तप त्याग रे ॥१॥

अरे जीव ! तू सदा प्रीति-पूर्वक राम नाम जप। कलियुग में वैराग्य, योग, यज्ञ, तपस्या और त्याग नहीं है ॥१॥

राम सुमिरन सब बिधिही को राज रे ।
राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे ॥
राम नाम महामनि फनि-जग-जाल रे।
मनि लिये फनि जिअइ ब्याकुल बिहाल रे ॥२॥

राम नाम का स्मरण ही सभी तरह की विधियों में राज विद्या है और रामचन्द्रजी को भूलना सबसे बड़ा निषिद्ध कर्म है। राम नाम महामणि रूप है और जगत का प्रपञ्च सर्प रूप है, जैसे मणि ले लेने पर साँप व्याकुल होकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार राम नाम रुपी मणि से दुःख रूप जगत जाल का अपने आप ही नाश हो जाता है ॥२॥

राम नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान बेद पंडित पुरारि रे ॥
राम नाम प्रेम परमारथ को सार रे ।
राम नाम तुलसी को जीवन अधार रे ॥३॥

राम-नाम रूपी कल्पवृक्ष चारों फलों, काम, अर्थ, धर्म, मोक्ष का प्रदाता है, वेद, पुराण, विद्वान और शिवजी ऐसा कहते हैं। राम नाम प्रेमं तथा परमार्थ का सार (तत्व) है और राम नाम तुलसी के जीवन का आधार है ॥३॥

(६८)

राम राम राम जीव जौ लौं तू न जपिहै।
तौलौं जह जइहै तहँ तिहूँ ताप तापि है ॥१॥

अरे जीव ! तू जव तक राम, राम, राम, नहीं जपेगा तब तक जहाँ जायगा वहाँ तीनों तापों से जलता रहेगा ॥१॥

सुरसरि तीर विनु नीर दुख पाइहै ।
सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै ॥
जागत बागत सपने न सुख सोइहै ।
जनमि जनमि जुग जुग जग रोइहै ॥२॥

गंगाजी के किनारे भी बिना जल के दुःख पाएगा,और कल्पवृक्ष के नीचे अभी दरिद्रता तुझे सतावेगी। जागते सोते हुए सपने में भी सुख नहीं मिलेगा, संसार में बार बार जन्म लेकर युग युग रोएगा ॥२॥

छूटबे के जतन बिसेषि बाँधो जायगो।
होइहै विष भोजन जाँ सुंधा सानि खायगो ॥
तुलसी तिलोक तिहुँ काल तो से दीन को ।
राम-नामही की गति जैसे जल मीन को ॥३॥

जितना छूटने का यत्न करेगा, राम नाम के बिना उतना ही अधिक बाँधा जायगा और अमृत मिला भोजन भी तेरे लिए विष के समान हो जायगा । हे तुलसी! तीनों लोक और तीनों काल में तेरे समान दीन कौन है ? तुझे रामचन्द्रजी के नाम ही का सहारा है, जैसे मछली को जीवन धारण करने के लिये एक मात्र आधार केवल जल है ॥३॥

(६९)

सुमिरु सनेह साँ तू नाम राम-राय को ।
सम्बल निसम्बली को सखा असहाय को ॥१॥

हे जीव ! तू राजा रामचन्द्रजी के नाम को स्नेह से स्मरण कर जो पाथेयहीन पथिकों के लिए मार्ग व्यय रूप और असहायों का सहायक मित्र है ॥१॥

भाग है अभागेहू को गुन गुनहीन को ।

गाहक गरीब को दयाल दानि दीन को ॥
कुल अकुलीन को सुनेउ है बेद साखि है।
पाँगर को हाथ पाँय आँधरे को आँखि है ॥२॥

भाग्यहीन का भाग्य है और निर्गुणी के लिये गुण रूप है, गरीबों को चाहनेवाला और दीनों के लिये दयालु दानी है । वेद शाक्षी है सुना है कि राम नाम कुल हीनों के हेतु सुन्दरकुल है; पंगु का हाथ पाँव है और अन्धे की आँख है ॥२॥

माय बाप भूखे को अधार निराधार को ।
सेतु भव सागर को हेतु सुख-सार को ॥
पतित पावन राम नाम सौं न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयऊ तुलसी सो ऊसरो ॥३॥

भूखे को माता-पिता है और निराधार के लिये आधार है, संसार-समुद्र के हेतु पुल है और सुख का सार तत्व है। राम नाम के समान पतितों को पवित्र करनेवाला दूसरा कोई नहीं है जिसको स्मरण करके तुलसी के समान निरुपजाऊ भूमि भी सुन्दर धरती उपजांऊ भूमि हो गया ! ॥३॥

(७०)

भलो भली भाँति है जाँ मेरे कहे लागि है ।
मन राम-नाम सौं सुभाय अनुरागिहै ॥१॥

हे मन ! यदि मेरे कहने में लग कर राम नाम से प्रीति करेगा तो तेरी भली माति भलाई है ॥१॥

राम नाम को प्रभाउ जान जूड़ी-भागि है ।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है ॥
राग राम नाम ताँ बिराग जोग जागि है ।
बाम विधि भालहूँ न कर्म-दाग दागिहै ॥२॥

राम-नाम के प्रभाव कलिकाल रूपी शीत ज्वर के लिये अग्नि रूप है, मनुष्यों की बुद्धि को विचलित कर देने वाला कलिकाल अपने सहायकों काम क्रोध इत्यादि सहित डर कर भाग जायगा । राम-नाम के प्रेम से वैराग्य और योग जागृत होगा, विपरीत हुए विधाता कर्म के अंक से कपाल को न दागेगा अर्थात् नाम की महिमा से विपरीत हुए ब्रह्मा भी ललाट में प्रतिकूल फल नहीं लिख सकते ॥२॥

राम नाम मोदक सनेह-सुधा पागिहै।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥
राम नाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै।
तुलसी स्वारथ परमारथउ न खाँगिहै ॥३॥

राम-नाम रूपी लड्डू को स्नेह रूपी अमृत से पाग कर खायेगा तो तू सन्तोष को प्राप्त होकर दरवाजे दरवाजे पर नहीं भटकता फिरेगा। राम नाम कल्पवृक्ष रूप है, इससे तू स्वार्थ-परमार्थ जो कुछ भी

मांगेंगा तुलसी ! सभी प्राप्त हो जाएगा, किसी बात की कोई कमी नहीं रहेगी ॥३॥

(७१)

ऐसेहू साहेब की सेवा साँ होत चोर रे।
आपनी न बूझि न कहे को राँडोर रे ॥१॥

ऐसे स्वामी की सेवा से तू जी चुराता है ? न तो तुझे अपनी कुछ समझ है और न ही व्यर्थ के हल्ले में पड़ कर दूसरों के कहे को सुनता है ॥१॥

मुनि मन अगम सुगम माय-बाप सौँ।
कृपासिन्धु सहज सखा-सनेही आप सौँ ॥
लोक वेद बिदित बड़ो न रघुनाथ सौँ।
सब दिन सब देस सबही के साथ सौँ॥२॥

मुनियों के मन में दुर्गम माता-पिता के समान सुगम कृपा के समुद्र है और स्वभाव ही आप से भाप स्नेही मित्र हैं। लोक और वेद में विख्यात रघुनाथजी से बड़ा कोई नहीं है, सभी दिन, सभी देशों में सभी के साथ रहते हैं ॥२॥

स्वामी-सर्वज्ञ सौँ चलइ न चोरी चार की।
प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की ॥
काय न कलेस लेस लेत मानि मन की।

सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ॥३॥

सर्वश स्वामी से सेवक की चोरी नहीं चलती, प्रीति पहचानना इस दरबार की रीति है। शारीरिक कष्ट कुछ भी नहीं: मन की प्रीति प्रोति पहचान कर उसको मान लेते हैं और स्मरण करने से सकुच कर दास की रुचि पूरी करते रहते हैं ॥३॥

रीझे बस होत खीझे देत निज धाम रे।
फलत सकल फल कामतरु नाम रे ॥
बँचे खोटे दाम न मिलइ न राखे काम रे।
सोऊ तुलसी निवाजेउ ऐसे राजा राम रे ॥४॥

प्रसन्न होने से वश में होते और अप्रसन्न होने पर अपना धाम देते हैं, नाम रूपी कल्पवृक्ष सम्पूर्ण फलों का फलनेवाला है। तुलसी सरीखा खोटा सेवक जिसे बेचने पर न दाम मिलेगा और न पास रखने से काम चलता है, राजा रामचन्द्रजी ऐसे कृपालु है कि उस पर भी दया की ॥४॥

(७२)

मेरो भलो कियो राम प्रापनी भलाई।
हौं तो साँइ-द्रोही पै सेवक-हित साँई ॥
राम सौँ बड़ो है कवन मो सौँ कवन 'छोटो।
राम सौँ खरो है कवन मो सौँ कवन खोटो ॥१॥ .

अपनी भलाई से रामचन्द्रजी ने मेरा भला किया, मेरे जैसे स्वामिद्रोही सेवक पर स्वामी सेवक-हितकारी हैं। रामचन्द्रजी के समान कौन बड़ा है और मेरे बराबर छोटा कौन है ? रामचन्द्रजी के सदृश्य खरा कौन है और मेरे तुल्य खोटा कौन? ॥१॥

लोग कहें राम को गुलाम हौं कहाऔं ।
ऐतो बड़ोअपराध भौ न मन वाऔं ।
पाथ माथे चढ़इ तन तुलसी ज्यौं नीचो।
बोरत न वारि ताहि जानि आप सींचो॥२॥

लोग मुझको रामचन्द्रजी का दास कहते हैं और मैं भी कहलाता हूँ किन्तु वास्तव में गुलाम बना हुआ हूँ काम, क्रोध, लोभादिका और मेरे इतने बड़े अपराध पर भी स्वामी का मन टेढ़ा नहीं हुआ। तुलसी वैसा ही नीच है जैसे तृण पानी के सिर पर चढ़ता है, किन्तु पानी उसको अपना द्वारा सींचा हुआ समझ कर डुबाता नहीं अपितु सिर पर धारण करता है उसी तरह रघुनाथजी ने मुझ नीच सेवक को उच्च च पद दिया है ॥२॥

(७३)

जागु जागु जागु जीव जो है जग-जामिनी ।
देह-गेह नेह जानि जैसे धन दामिनी ।
सोये सपने को सहइ संसृति सन्ताप रे ।
वूड़ो मृग-वारि खायो अँवरी को साँप रे ॥१॥

अरे जीव ! जो संसार रूपी रात्रि है उससे तू जाग, जाग कर सचेत हो । देह और घर के स्नेह को ऐसा समझ जैसे बादल और बिजली अर्थात जैसे बादल में बिजली चमकती है परन्तु ठहरती नहीं वैसे ही देह और घर का स्नेह है। तू सोते हुए संसार-संम्बन्धी दुःख स्वप्न के समान सहता है। मृग के जल अर्थात झूठमूठ के पानी में डूबता है और रस्सी का साँप तुझे खाये जाता है ॥१॥

कह वेद बुध तू तो बूझ मन माह रे ।
दोष दुख सपने को जागेही पै जाहिँ रे ॥
तुलसी जागे तँ जाइ तिहूँ ताप ताय रे ।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥२॥

तू मन में समझे तो सही, वेद और विद्वान कहते हैं कि सपने के दोष और दुःख जागने ही पर जाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जागने से तीनों तापों का संताप चला जाता है ॥२॥

(७४)

राग-बिभास

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव,
जागि त्यागि मूढ़तानुरागु श्रीहरे ।
करि विचार तजि विकार भजि उदार रामचन्द्र,

भद्र-सिन्धु दीन-बन्धु बेद वदत रे ॥१॥

जानकीनाथ की कृपा समझदार जीवों को जगाती है कि मूर्खता छोड़ कर सचेत होकर श्री - हरि भगवान से प्रेम कर । विचार करके दोषों का त्याग कर कल्याण के समुद्र दीनों के सहायक जिन्हें वेद कहते हैं, उन उदार श्री रामचन्द्रजी का भजन कर ॥६॥

मोह-मय कुहू-निसा बिसाल काल विपुल सोय,
खोय सो अनूप रूप स्वप्न जो परे ।
अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास त्रास,
नास रोग मोह द्वेष निबिड़-तम टरे ॥२॥

अज्ञान रूपी अमावास्या की रात्रि में बहुत अधिक समय तक सोकर बड़ा वक्त खो दिया, जिस स्वप्न में पड़ा है उससे अपना रूप अर्थात आत्मज्ञान भूल गया है। अब ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकट होने से सवेरा हुआ और भय जाता रहा, रोग, मोह तथा द्वेष रूपी घना अन्धकार हट गया ॥२॥

मोह मद मान चोर भोर जानि जातुधान,
काम क्रोध लोभ, छोभ निकर अपडरे।
देखत रघुबर प्रताप बीते सन्ताप पाप,
ताप त्रिविध प्रेम आप दूरही करे ॥३॥

सवेरा हुआ जान कर मोह, मद और अभिमान रूपी चोर तथा काम, क्रोध, लोभ और बेचैनी रूपी राक्षसों के वृन्द डर गये। रघुनाथजी के प्रताप (सूर्य) को देखते ही सब भाग गये और दुःख, पाप एवम् तीनों तापों को प्रेम रूपी जल दूर कर देता है ॥३॥

स्त्रवन सुनि गिरा गंभीर जागे अतिधीर बीर,
बर बिराग तोष सर्कल सन्त आदरे ।
तुलसिदास प्रभु कृपाल निरखि जीवं जन बिहाल,
भञ्जेउ भवजाल परम मङ्गलाचरे ॥४॥

कानों से गम्भीर वाणी सुन कर अत्यन्त साहसी शुरवीर श्रेष्ठ वैराग्य और सन्तोष जगे, सब सन्तो ने उनका श्रादर किया। तुलसीदासजी कहते हैं कृपालु प्रभु रामचन्द्रजी ने जीव सेवक को बेचैन देख कर संसार के प्रपञ्च का नाश करके प्रत्युत्तम मांगलिक व्यवहार किया ॥४॥

(७५)

राग-ललित

खोटो खरो रावरो हाँ रावरी साँ रावरे साँ,
झूठ क्यों कहाँगो जानो सबही के मन की।
करम बचन हिये कहउँ न कपट किये,
ऐसो हठ जैसे गाँठि पानी परे सन की ॥१॥

बुरा या भला हूँ मैं आप का हूँ, आप से आप की सौगंध करके कहता हूँ, आप सभी के मन की बात जानते हैं फिर झूट कैसे कहूँगा। कर्म, वचन और मन से कपट करके नहीं कहता हूँ, मेरा हठ ऐसा है जैसे पानी पड़ने पर सन की गाँठ छूटती नही है ॥१॥

दूसरो भरोसो नाहिँ वासना उपसना की,
बासव बिरञ्चि सुर नर मुनि गन की ।
स्वारथ के साथी सबै हाथी स्वान लेवा देई
काहू तौ न पीर रघुवीर दीन जन की ॥२॥

मुझे दूसरे का भरोसा नहीं है और न इन्द्र, ब्रह्मा, देवता, मनुष्य तथा मुनियों की उपासना की इच्छा है। सब मतलव के साथी हैं हाथी लेकर कुत्ता देते हैं, हे रघुनाथजी ! दीन जनो की पीड़ा की सुध तो किसी को नहीं है ॥२॥

साँप-सभा साबर लबार भये देव दिव्य,
दुसह सासति कीजे आगे दै या तन की ।
साँचो परे पाऊँ पान पञ्च मैं परइ प्रमान,
तुलसी चातक आस राम स्याम धन की ॥३॥

हे स्वर्गीय देव ! साँपों की सभा में सांप को वश में करने का मन्त्र नहीं जानने पर जैसा फल झूठे सपेरे को मिलता है, यदि मेरा कथन झूठ हो तो इस शरीर को संसार रूपी सर्प के आगे डाल कर असह्य कष्ट दीजिये। और यदि यह सच हो तो मुझे ऐसे पान का बीड़ा मिले जिससे

पञ्चों में प्रमाणित हो कि तुलसी चातक को एक रामचन्द्रजी रूपी श्याममेष की ही आशा है ॥३॥

(७६)

राम को गुलाम नाम रामबोला राखेउः राम,
काम इहइ नाम दुइ हौं कबहूँ कहत हौं ।
रोटी-लूगा नीके राखइ आगेहू की बेद भाखड़,
भलो होइहै तेरो ता तँ आनद लहत हौं ॥१॥

मैं रामचन्द्रजी का गुलाम हूँ, रामचन्द्रजी ने मेरा नाम रामबोला रखा है। मेरा यही काम है कि कभी दो एक बार उनका नाम मुख से कहता हूँ। इससे भोजन-वस्त्र अच्छी तरह मिलता है और आगे (परलोक) के लिये वेद कहता है कि तेरा भला होगा इसलिये आनन्द प्राप्त हो रहा है अर्थात राम-नाम के प्रताप से लोक-परलोक दोनों बनता है ॥१॥

बाँध्यो हौं करम जड़ गरव-निगड़-गूढ़,
सुनत दुसह हौं तो सासति सहत हौं।
आरत अनाथ, नाथ कोसलपाल कृपाल,
लीन्हेउ छीनि दीन देखेउ दुरित दहत हौं ॥२॥

मुझे जड़कर्म ने गर्व की जटिल बेड़ी से बाँध रखा था, मैं तो वह दुर्दशा सहता था जो सुनने में असहनीय है। दुखी और अनाथों के नाथ

अयोध्या के रक्षक कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने मुझे पाप की आँच में जलते हुए सन्तप्त देख कर उससे बचा लिया ॥२॥

बूझेउ ज्याँही कहे मैं हूँ चेरो होइहाँ रावरोजू,
मेरो कोऊ कहूँ नाहिँ चरन गहत हौँ ।
माँजो गुरु पीठि अपनाइ गहि बाह बोलि,
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥३॥

जैसे ही मुझसे पूछा गया वैसे ही मैंने कहा-मैं आप का दास होना चाहता हूँ, मेरा कहीं कोई अन्य नहीं है। इससे आप के पाँव पकड़ता हूँ। प्रभु ने पीठ पर हाथ फेरा और अपना लिया, बाँह पकड़ कर बोले मैं भक्तों को सदा सुख प्रदान करता हूँ। तभी से मैं यह वैष्णवी चिन्ह धारण करता हूँ ॥३॥

पोच सोन सोच न सकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौँ।
तुलसी अकाज काज रामही के रीझे खाझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥४॥

लोग नीच कहें इसका सोच और लज्जा मुझे नहीं है, क्योंकि न तो मुझे विवाह सगाई करनी है और न ही मैं जाति पाँति में मिलना चाहता हूँ। तुलसी की बुराई भलाई रामचन्द्रजी ही की प्रसन्नता और नाराजगी से है, उन्हीं की प्रीति में विश्वास रख कर मन में प्रसन्न रहता हूँ ॥४॥

(७७)

जानकीजीवन जग-जीवन जगत-हित,
जगदीस रघुनाथ राजिव-लोचन राम।
बदन सरद-विधु सुख सील श्री सदन,
सहज सुन्दर तनु सोभा अगनित काम ॥१॥

जानकीजी के प्राणाधार, जगत के जीवन, संसार के उपकारी, विश्व के स्वामी, रघुकुल के नाथ, कमल नेत्र रामचन्द्रजी हैं। मुख शरदकाल के चन्द्रमा के समान सुख की चरम सीमा और सुन्दरता का स्थान है, शरीर स्वाभाविक सुन्दर असंख्या कामदेव की शोभा से युक्त है ॥१॥

जगत सुपिता-मातु सुगुरु सुहित-मीत,
सब को दाहिने दीनबन्धु काहू के न बाम ।
आरति हरन सरनद अतुलित दानि,
प्रनतपाल कृपाल पतित पावन नाम ॥२॥

जगत के सुन्दर पिता-माता, श्रेष्ठ गुरु, हितकारी मित्र, सबके अनुकूल, गरीबों के सहायक बन्धु और किसी का बुरा नहीं करते । दुःखों को हरनेवाले, शरणदाता, अप्रमेय दानी, शरणागत रक्षक, कृपा के स्थान और आपका नाम पतितों को पवित्र करनेवाला है ॥२॥

बन्दित सकल विस्व सेबित सकल सुर,
आगम निगम कहें रावरोई गुन-ग्राम ।

इहइ जानि तुलसी तिहारो जन भयउ चहइ,
न्यारे कै गनीबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥३॥

समस्त संसार से वन्दनीय और सम्पूर्ण देवताओं से सेवित आप के गुण-समूह वेद शास्त्र कहते हैं । यही समझ कर तुलसी आप का दास होना चाहता है, इसको अलग ही कर के रखिये जहाँ गरीब गुलामों की गिनती है अर्थात यदि मैं उत्तम भक्तों की श्रेणी में बैठने लायक नहीं हूँ तो जहाँ गरीब सेवक केवट, कोल भील, गणिका, गिद्ध, अजामिल आदि की गणना है उसी पंक्ति में बैठाइये। ॥३॥

(७८)

राग-टोड़ी

दीन को दयाल दानि दूसरो न कोई ।
जाहि दीनता कहउँ मैं देखउँ दीन सोई ॥
सुर मुनि नर नाग असुर साहब तौ घनेरे ।
तो लौं जो लौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥१॥

दीनों पर दया करनेवाला दानी दूसरा कोई अन्य नहीं है। जिससे दीनता कहता हूँ मैं उसी को दीन देखता हूँ। देवना, मुनि, मनुष्य, नाग और दैत्यों में स्वामी तो बहुत से हैं, पर जब तक आप थोडी दया की दृष्टि नहीं फेरते तब तक कोई बड़प्पन नहीं पाते ॥१॥

त्रिभुवन तिल्काल बिदित बदत बेद चारी।

आदि मध्य अन्त राम साहिबी तिहारी ॥
तुम्हहिँ माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।
सुनि सुभाव सील सुजस जाचन जन आयो॥२॥

हे रामचन्द्रजी ! तीनों लोक और तीनों काल में प्रसिद्ध है और चारों वेद कहते हैं कि आदि मध्य तथा अन्त में आप की ही मलिकई है। आप से माँग कर माँगनेवाले याचक नहीं कहलाये, ऐसा स्वभाव, शील और सुयश सुन कर यह दास आप से माँगने आया है ॥२॥

पाहन पसु ब्याध बिहँग अपनो करि लीन्हे ।
महाराज दसरथ के रङ्क राय कीन्हे ॥
तू गरीब को निवाज हाँ गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल तुलसिदास मेरो ॥३॥

पत्थर- अहिल्या, पशु- गजेन्द्र, व्याधा- वाल्मीकि, पक्षी-जटायु को अपना बना लिया। हे महाराज दशरथ नन्दन ! आपने दरिदों को राजा बना दिया । आप गरीब-निवाज है और मैं आप का गरीब सेवक हूँ। हे कृपालु ! एक बार कहिये कि तुलसीदास मेरा है ॥३॥

(७६)

तू दयाल, दीन-हों, तू-दानि हों-भिखारी ।
हों प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो साँ।

मो समान भारत नहिँ आरति-हर तो साँ॥१॥ .

आप दयालु हैं मैं दीन हूँ, आप दानी हैं मैं भिक्षुक हूँ, मैं प्रसिद्ध पापी हूँ और आप पाप की राशि का विनाश करने वाले हैं। आप अनाथों के नाथ हैं और मेरे समान अनाथ कौन है ? मेरे समान दुखी नहीं और आप के समान दुःख का हरनेवाला कोई नहीं है ॥१॥

ब्रह्म तू हाँ जीव तू हौ ठाकुर हाँ चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो ॥
तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै ।
ज्या त्याँ तुलसी कृपाल चरन सरन पावै ॥२॥

आप ब्रह्म हैं मैं जीव हूँ, आप ठाकुर हैं मैं चाकर हूँ, आप सब तरह से मेरे हितकारी पिता, माता, गुरु और मित्र हैं। आप से और मुझसे बहुत नाते हैं जो अच्छा लगे वही मानिए। हे कृपालु ! जिस किसी प्रकार से तुलसी चरणों का सहारा पावे ॥२॥

(८०)

और काहि माँगिये को माँगिबो निवारै।
अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै ॥१॥

और किस से माँगने जाऊँ, ऐसा कौन है जो सदा के लिए मेरी याचकता छुड़ा दे, इच्छित फल का देनेवाला, दुःख और दरिद्र का विनाश करने वाला आपके अलावा और कौन है ॥१॥

धरम-धाम राम काम कोटि रूप रूरो।
साहेव सब बिधि सुजान दान खड्ग सूरो ॥
सुसमय दिन दुइ निसान सब के द्वार बाजै ।
कुसमय दसरथ के दानि तैं गरीब निवाजै ॥२॥

हे रामचन्द्रजी ! आप धर्म के मन्दिर और करोड़ों कामदेव के रूप से सुन्दर हैं, सब तरह से सुजान स्वामी और दान रूपी तलवार चलाने में शूरवीर है। अच्छे दिन में दो दिन के लिये सब के दरवाजे पर डंका बजता है, हे दशरथनन्दन दानवीर ! बुरे दिन में केवल आप ही गरीवों पर दया करनेवाले हैं ॥२॥

सेवा विनु गुन बिहीन दीनता सुनाये ।
जे जे तें निहाल किये फूले फिरत पाये ॥
तुलसिदास जाचक रुचि जानि दान दीजे ।
रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजे ॥३॥

बिना सेवा किये भी जिस जिस गुण-हीन जन ने अपनी दीनता सुनाई, उन सब को आपने निहाल कर दिया, वह प्रसन्नता से फूले फिरते पाये जाते हैं। तुलसीदास भिक्षुक की रुचि जान कर दान दीजिये, हे रामचन्द्रजी ! आप चन्द्रमा रूप है और मुझे चकोर बनाइये ॥३॥

(८१)

दीनबन्धु सुखसिन्धु कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ मन जरत त्रिविध जर, करत फिरत बौराई ॥१॥

हे दीनवन्धु सुखसागर कृपा के खान दयालु रघुनाथजी, हे नाथ ! सुनिये, मेरा मन संसार के त्रिविध तापों से जलता है इसलिये पागलपन करता फिरता है ॥१॥

कबहुँ जोग रत भोग निरत सठ, हठि बियोग बस होई।
कबहुँ मोह-बस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई॥२॥

कभी योग में तत्पर, कभी विपय-भोग में लिप्त और कभी हट से यह मूर्ख वियोग के अधीन होता है। कभी अज्ञानता के वश अनेक प्रकार के द्रोह करता है और कभी वह अत्यन्त दयालु बन जाता है ॥२॥

कबहुँ दीन मति-हीन रङ्क-तर, कबहुँ भूप-अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडम्बरत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी ॥३॥

कभी दुखी, बुद्धि हीन, अत्यन्त दरिद्र और कभी अभिमानियों का राजा बन जाता है। कमी मूर्ख, कभी पण्डित, कमी पाखण्ड में तत्पर और कभी धर्म में अनुरक्त ज्ञानी बनता है। ॥३॥

कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासे।

संसृति-सन्निपात दारुन दुख, बिनु हरि-कृपा न नासै ॥४॥

कभी जगत को धनमय, कभी शत्रु मय देखता है और कभी स्त्रीमय भासित होता है। संसार रूपी भीषण सन्निपात का दुःख बिना भगवान की कृपा रूपी औषधि के नष्ट नहीं होता ॥४॥

सञ्जम जप तप नेम धरम व्रत, बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भव-रोग राम-पद,प्रेमहीन नहिँ जाई ॥५॥

संयम, जप, तपस्या, नियम, धर्म और उपवास आदि बहुत सी ओषधियों का समुदाय है, परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं यह संसार-सम्बन्धी रोग बिना रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम के नहीं दूर होता ॥५॥

(८२)

मोह जनित मल लाग विविध विधि, कोटिह जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥३॥

अज्ञान से उत्पन्न अनेक प्रकार का पाप लगा है वह करोड़ों उपायों से भी नहीं जाता। जन्म जन्मान्तर से मन उसके साधन में तत्पर है इससे अधिक उसी में लिपटता जाता है ॥२॥

नयन मलिन पर नारि निरखि मन, मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज-सुख त्यागे ॥२॥

पराई स्त्री को देख कर आँखें मलिन हुई हैं और विषयों के साथ लग कर मन मैला हो गया है। हृदय कामना अभिमान और मद से मलिन हो कर जीव ने अपने स्वाभाविक सुख आत्मानन्द को ही त्याग दिया है ॥२॥

पर-निन्दा सुनि स्रवन मलिन भये, बचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मल भार लाग निज, नाथ चरन विसराये ॥३॥

पराई निन्दा सुन कर कान मलिन हुए हैं और पराये के दोष कहने से वाणी मैली हुई है। सब प्रकार से पापों का बोझ अपने स्वामी के चरणों को भुलाने से लगा है ॥३॥

तुलसिदास ब्रत ज्ञान दान तप, सुद्धि हेतु सुति गावै ।
राम-चरन अनुराग नीर विनु, मल अति नास न पावै ॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि व्रत, ज्ञान, दान और तप आदि शुद्धि के लिये वेद गाते हैं; परन्तु रामचन्द्रजी के चरणानुराग रूपी जल के विना अत्यन्त बड़ा पाप नाश को नहीं प्राप्त होता था रामचन्द्रमी के चरणों में प्रेम और जल की पूर्णरूप से एकरूपता है क्योंकि बिना जल के मैला साफ नहीं होता।

(८३)

<u>राग-जयतिश्री</u>

कछु होइ न आय गयउ जनम जाय ।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि, भजे न राम मन बचन काय ॥१॥

कुछ हो नहीं सका और जन्म व्यर्थ ही चला गया ! अत्यन्त दुर्लभ शरीर पा कर तू ने मन, वचन और कर्म से छल छोड़ कर रामचन्द्रजी का भजन नहीं किया ॥२॥

लरिकाई बीती अचेत चित, चञ्चलता चौगुनी चाय ।
जोबन ज्वर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदनबाय ॥२॥

बचपन अज्ञानता में बीता, चित्त में चपलता और चौगुना खेलने खाने का उमंग था । जवानी रूपी ज्वर में तरुणी रूपी कुपथ्य पर चली गई, जिससे सारे शरीर में कामदेव रूपी वायु से भर कर सन्निपात हो गया ॥२॥

मध्य बयस धन हेतु गँवाई, कृषी बनिज नाना उपाय।
राम-विमुख सुख लहेउ न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहूँ ताय ॥३॥

मध्यावस्था धनोपार्जन के लिये खेती और व्यापार इत्यादि अनेकों उपायों में खो दी। परन्तु रामचन्द्रजी से प्रतिकूल रह कर सपने में भी चैन नहीं मिला, दिन रात तीनों तापों से जलता रहा ॥३॥

सेये नाहिँ सीतापति सेवक, साधु सुमति भलि भगति भाय।
सुनेन पुलकि तन कहे न मुदित मन, किये जो चरित रघुवंस-राय॥४॥

सीतानाथ के सेवक सुन्दर बुद्धिवाले साधुजनों की अच्छी भक्ति भाव से सेवा नहीं की। रघुकुल के राजा श्री रामचन्द्रजी ने जो चरित किये उसको पुलकित शरीर से न तो सुने और न प्रसन्न मन से कहे॥४॥

अब सोचत मनि बिनु भुजङ्ग ज्याँ, विकल अङ्ग दले जरा धाय ।
सिर धुनि धुनि पछितात माँजि कर, कोड नमीत हित दुसह दाय॥५॥

अब जब बुढ़ापे ने धावा करके समस्त अंगों को कुचल डाला है और इन्द्रियाँ बिह्वल हो गई तब मैं बिना मणि के साँप की तरह व्याकुल रहता हूँ। सिर पीट पीट कर और हाथ मल कर पछताता हूँ किन्तु इस कठिन सन्ताप को हटानेवाला कोई मित्र नहीं है ॥५॥

जिन लगि निज परलोक बिगारेउ, ते लजात होत ठाढ़े ठाय।
तुलसी अजहुँ सुमिरु रघुनाथहि, तरेउ गयन्द जा के एक नाय ॥६॥

जिनके लिये तूने अनेकों पाप तूने अपना परलोक बिगाड़ा वह तेरे पास खड़े होते हुए लज्जते हैं। हे तुलसी ! अब भी रघुनाथजी का स्मरण कर ले, जिनका एक बार नाम लेने ले ही गजेन्द्र संसार सागर से तर गया अर्थात् भीषण सङ्कट से छुटकारा पा गया ॥६॥

(८४)

तू पछितइहै मन माँजि हाथ ।
भयउ सुगम तोहि अमर अगम. तनु, समुझ न क्याँ खोवत अकाथ ॥१॥

अरे मन ! तू हाथ मल कर पछतायगा, देवताओं को भी दुर्लभ शरीर तुझे सुलभ हुआ है। तू तनिक विचार तो कर; क्यों व्यर्थ ही खोता है ? ॥१॥

सुख साधन हारे बिमुख स्था जस,स्त्रम फल घृत हित मथे पाथ ।
अस बिचारि तजि कुपथ कुसङ्गति, चलु सुपन्ध मिल भले साथ ॥२॥

भगवान से विमुख रह कर सुख के लिये यत्न करना वैसा ही है जैसे घी के लिये पानी को मथने से परिश्रम का फल होता है। ऐसा विचार कर कुमार्ग और कुसंगति को छोड़ कर सुमार्ग में चले तथा सज्जनों की संगति मिल कर ॥२॥

देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ ।

हृदय आनु धनु बान पानि प्रभु, लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ॥३॥

रामभक्तों को देख, रामचन्द्रजी की कीर्ति सुन, उनके नाम को रट और उनकी गुण गाथाओं का गान कर और प्रभु रामचन्द्रजी हाथ में धनुप-बाण लिये, मुनियों के वस्त्र धारण किए हुए, कमर में तरकश लटकाए हुए रूप को हृदय में स्थापित करें ॥३॥

तुलसिदास परिहरि प्रपञ्च सब, नाउ राम-पद-कमल माथ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल, अपनायउ जानकीनाथ ॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सारा प्रपञ्च त्याग कर रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में मस्तक नवा। डर मत तेरे समान असंख्यों दुष्टों को जानकीनाथ ने अपनाया है अर्थात् अपनी शरण में रख लिया है ॥४॥

(८५)

राग-धनाश्री

मन माधव को नेकु निहारहि ।
सुनु सठ सदा रङ्क के धन ज्याँ, छिन छिन प्रभुहि सँभारहि ॥१॥

हे मन ! तनिक माधव भगवान को देख! अरे मूर्ख ! सुन, सदा दरिद्र के धन की तरह क्षण क्षण प्रभु का स्मरण किया कर ॥१॥

सोभा सील ज्ञान गुन मन्दिर, सुन्दर परम उदारहि ।

रजन सन्त अखिल अघ गञ्जन, भञ्जन विषय-विकारहि ॥२॥

जो शोभा, शुद्धाचरण, ज्ञान और गुणों के मन्दिर, अतिशय श्रेष्ठ, सुन्दर, सन्तों को प्रसन्न करनेवाले, समस्त पापों का नाश करने वाले और विषयों के दोषों को तोड़नेवाले हैं ॥२॥

जौं बिनु जोग जज्ञ ब्रत सञ्जम, गयउ चहहि भव पारहि।
तो जनि तुलसिदास निसि बासर, हरि-पद-कमल बिसारहि ॥३॥

यदि बिना योग, यज्ञ, उपवास और संयम के संसार रूपी समुद्र के पार जाना चाहता है तो हे तुलसीदास ! दिन रात कभी भी भगवान के चरण कमलों को मत भूल ॥३॥

(८६)

इहइ कहेउ सुत वेद चहूँ।
श्रीरघुबीर-चरन चिन्तन तजि, नाहि न ठौर कहूँ॥१॥

हे पुत्र ! चारों वेदों ने यही कहा है-श्रीरधुनाथजी के चरणों का चिन्तन छोड़ कर जीव को विश्राम के लिये कहीं कोई जगह नहीं है। ॥१॥

जा के चरन विरञ्चि सेइ सिधि,-पाई सङ्करहूँ।
सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ, भजन करत अजहूँ ॥२॥

जिनके चरणों की सेवा करके ब्रह्मा और शिव ने भी सिद्धि पाई है। शुकदेव और सनकादिक मुनीश्वर जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं, वह भी अब तक भजन करते हैं ॥२॥

जद्यपि परम चपल श्री सन्तत, थिर न रहति कतहूँ ।
हरि-पद-पङ्कज पाइ अचल भइ, करम वचन मनहूँ॥३॥

यद्यपि लक्ष्मी बड़ी चञ्चला है वह निरन्तर कहीं स्थिर नहीं रहती; परन्तु भगवान के चरणकमलों को पाकर कर्म, वचन और मन से निश्चल हुई है ॥३॥

करुनासिन्धु भगत-चिन्तामनि, सोभा सेवतहूँ ।
अपर सकल सुर असुर ईस सब, खायउ उरग छहूँ ॥४॥

दयासागर भक्तों के चिन्तामणि, वाञ्छित फल देनेवाले की सेवा करने ही में शोभा है। अन्य समस्त देवता दैत्यों के स्वामी कहलानेवालों को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरता रूपी छह सपों ने डसा है, वह अपने आप में नहीं हैं ॥४॥

सुरुचि कहेउ सो सत्य तात अति, परुख बचन जबहूँ।
तुलसिदास रघुनाथ बिमुख नाह, मिटइ बिपति कबहूँ ॥५॥

हे पुत्र ! सुरुचि ने यद्यपि अत्यन्त कठोर वचन कहा, पर वह सत्य है । तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुनाथजी से विपरीत रहने से कभी विपत्ति नहीं मिटती ॥५॥

(८७)

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरि-पद बिमुख लहेउ न काहु सुख, सठ यह समुझ सबेरो ॥१॥

हे मूर्ख मन ! मेरा सीख सुन, भगवान के चरणों से विमुख रह कर किसी ने सुख नहीं पाया, अरे दुष्ट ! इस बात को शीघ्र अर्थात आयु रहते ही समझ ले ॥१॥

बिछुरे ससि रबि मन नयनन्ह तें, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्त्रमित निसि दिवस गगन महँ, तह रिपु राहु बड़ेरो॥२॥

जबसे यह सूर्य और चंद्रमा रुपी नेत्र मन से अलग हुए हैं तभी से अत्यंत दुःख पाते हैं। दिन रात आकाश में चक्कर कर खाते हुए थकते हैं, वहाँ भी बलवान शत्रु राहु पीछा किए रहता है। ॥२॥

जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताह केरो ॥३॥

यद्यपि गंगा जी अत्यन्त पवित्र हैं उनका तीनों लोकों में बहुत बड़ा सुयश है। भगवान के चरणों को त्यागने पर भी उनका नित्य बहना कभी नहीं बंद होता ॥३॥

मिटइन बिपत्ति भजे बिनु रघुपति, सुति सन्देह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाड़ि के, होहु राम कर चेरो ॥४॥

बिना रघुनाथजी के भजन किये विपत्ति नहीं मिटती इसका सन्देह वेदों ने छुड़ा दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि समस्त आशा छोड़ कर रामचन्द्रजी का दास बन जा ॥४॥

(८८)

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो ।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज-सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन्ह तान्यो ॥१॥

अरे मन ! तूने कभी चैन नहीं पाया, अपना स्वाभाविक सुख भुला कर इन्द्रियों के विषय में पड़ा हुआ जहाँ तहाँ दिन रात चक्कर खाता फिरता है ॥१॥

जदपि बिषय सँग सहे दुसह दुख, विषम-जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममता बस, जानतहूँ नहिँ जान्यो ॥२॥

यद्यपि विषयों के संग के भीषण फन्दे में फंस कर कठिन दुःख सहन किया है तब भी मूर्खता के अधीन होकर ममत्व नहीं त्यागता है और सब कुछ समझ कर भी बेसमझ बन रहा है ॥२॥

जनम अनेक कियेउ नाना विधि, करम-कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल विवेक-नीर बिन, वेद-पुरान बखान्यो ॥३॥

अनेक जन्मों के किये हुए अनेक प्रकार की कर्म रूपी कीचड़ में लिपटा हुआ है हे मन ! ज्ञान रूपी जल के बिना यह कीचड कभी निर्मल नहीं होता, वेद और पुराणों ऐसा कहते हैं ॥३॥

निज हित नाथ पिता गुरु हरि साँ, हरषि हृदय नहिँ आन्यो ।
तुलसिदास कब तृषा जाइ सर,खनतहि जनम सिरान्यो ॥ ४॥

अपने हितकारी स्वामी, पिता और गुरु रामचन्द्रजी हैं पर तूने कभी उन्हें प्रसन्नता से हृदय में धारण नहीं किया। तुलसीदासजी कहते हैं कि तालाब खोदते ही जन्म बीत गया; ऐसे तालाब से प्यास कब मिट सहती है॥४॥

(८९)

मेरो मन हरिजू हठ न तजै ।
निसि दिन नाथ दे सिख बहु विधि, करत सुभाव निजै ॥१॥

हे स्वामिन् रामचन्द्रजी ! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता है। दिन रात अनेक प्रकार से शिक्षा देता हूँ, परन्तु वह अपने ही स्वभाव के अनुसार करता है ॥१॥

ज्याँ जुबती अनुभवति प्रसव अति, दारुन दुख उपजे ।
होइ अनुकूल बिसारि सूल सठ, पुनि खलु पतिहि भजे ॥२॥

जैसे स्त्री को बच्चा जनने का अत्यन्त भयानक दुःख उत्पन्न होता है, उसको जानते हुए भी यह मूर्खा पीड़ा भुला कर पुनः प्रसन्न हो पति की फिर उसी भाव से सेवा करती है ॥२॥

लोलुप भ्रमत गृहप ज्याँ जहँ तह, सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग, कबहुँ न मूढ़ लजै ॥३॥

जैसे अत्यन्त लालची गृहस्थ जहाँ तहाँ धनिकों के दरवाजे पर धूमते फिरते हैं और उनके सिर पर जूतियाँ पड़ती हैं, तो भी वह नीच मूर्ख उसी रास्ते में चलते हैं कभी लज्जित नहीं होते ॥३॥

हाँ हारेउँ करि जतन विविध विधि, अतिसय प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहि जब, प्रेरक-प्रभु बरजै॥४॥

मैं अनेक प्रकार का उपाय करके हार गया, यह मन अत्यन्त बलवान जीतने के योग्य नहीं है । तुलसीदासजी कहते हैं कि वह वशीभूत तो

तभी होगा जब आज्ञा करनेवाले प्रभु रामचन्द्रजी उसको मना करेंगे ॥४॥

(९०)

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता, पास करत श्रोस-कन की ॥ १॥ .

इस मन की ऐसी मूर्खता है कि रामभक्ति रुपी गंगा जी को छोड़ कर ओस के कणों की आशा करता है ॥१॥

धूम समह निरखि चातक ज्यौं, तृषित जानि मति धन की।
नहिं तहँ सीतलता न पानि पुनि, हानि होत लोचन की ॥२॥

जैसे बहुत सा धुआं देख कर प्यासा पपीहा उसको अपनी दुर्बुद्धि से बादल समझे परन्तु वहाँ न तो ठण्डक होती है न जल, केवल नेत्रों की हानि होती है ॥२॥

ज्याँ गच काँच बिलोकि स्येन जड़, छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस,छत बिसारि आनन की ॥३॥

जैसे शीशे के चबूतरे में मूर्ख बाज पक्षी अपने शरीर की परछाही देख कर भूख से अत्यन्त अधीर हुआ चोंच की चोट भूल कर उस पर प्रहार करता है ॥३॥

कह लौं कहउँ कुचाल कृपानिधि, जानत हो गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥४॥

हे कृपानिधान प्रभु रामचन्द्रजी ! कहाँ तक इसकी कुचाल कहूँ, आप सेवक की दशा को जानते हैं । अपनी शरणागत पालन की प्रतिज्ञा पूरी कीजिये, तुलसीदास के कठिन दुःख को हर लीजिये ॥४॥

(९१)

नाचतही निसि दिवस मरेउ ।
तबही तँ न भयउँ हरि थिर जब तँ जिव नाम धरेउ ॥१॥

हे भगवन् ! जब से आपने मेरी जीव संज्ञा रख दी तब से मैं स्थिर नहीं हुआ, दिन रात इधर उधर घुमते हुए ही मर रहा हूँ ॥२॥

बहु बासना विविध कञ्चुक, भूषन लोभादि भरेउ ।
चर अरु अचर गगन जल थल महँ, कवन न स्वाँग करेउ ॥२॥

बहुत सी कामना रूपी अनेक प्रकार के वस्त्र और लोभ आदि षडवर्ग रुपी गहनों से भरपूर हूँ। स्थावर और जंगम जीवों में आकाश, जल तथा स्थल कौन सी नकल नहीं किया अर्थात् तरह तरह के रूप बनाकर खेल किया ॥२॥

देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिँ, जाचत कोउ उबरेउ ।

मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख, काहू तो न हरेउ ॥३॥

देवता, दैत्य, मुनि, नाग और मनुष्यों में माँगने से कोई बाकी नहीं बचा; पर मेरी भीषण दरिद्रता के दोष और दुःख को तो किसी ने दूर नहीं किया ॥३॥

थके नयन पद पानि सुमति बल, सङ्ग सकल बिछुरेउ ।
अब रघुनाथ सरन आयउ जन, भव भय बिकल डरेउ ॥४॥

आँख, पाँव, हाथ, सुबुद्धि का बल थक गया और सम्पूर्ण साथी बिछुड़ गये। अब यह जन संसार के डर से डर कर व्याकुल हुआ रघुनाथजो की शरण में आया है ॥४॥

जेहि गुन त बस होहु रीझि करि, मोहि सोसब बिसरेउ ।
तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु, दीजे रहन परेउ ॥५॥

जिस गुण से प्रसन्न होकर आप वश में होते हैं, मुझे वह सब भूल गया है। हे प्रभो ! तुलसीदास को अपने मन्दिर के दरवाजे पर पड़ा रहने दीजिये ॥५॥

(९२)

माधव मो सम मन्द न कोऊ ।
जद्यपि मीन-पतङ्ग हीन मति, मोहि न पूजइ ओंऊ ॥१॥

हे माधव ! मेरे समान कोई मूर्ख नहीं है । यद्यपि मछली और पतंगा दोनों बुद्धिहीन हैं; परन्तु वह भी मेरी बरावरी नहीं कर सकते ॥१॥

रुचिर रूप आहार बस्य उन्ह, पावक लोह न जानेउ।
देखत बिपति बिषय न तजत हाँ, ता तँ अधिक प्रयानेउ ॥२॥

वह क्षुधा के अधीन होकर तथा सुन्दर रूप देख कर अग्नि और लोहे के कांटें को मृत्यु का कारण नहीं जानते; पर मैं विषय की विपत्तियों को देखते हुए भी उसे नहीं त्यागता है, इसलिये मैं उनसे अधिक मूर्ख हूँ ॥२॥

महा मोह सरिता अपार महँ, सन्तत फिरत बहेउ ।
श्रीहरि-चरन-कमल नौका तजि, फिरि फिरि फेन गहेउ ॥३॥.

महामोह रूपी अपार नदी में निरन्तर बहता फिरता हूँ ! रामचन्द्रजी के चरण कमल रूपी नौका को छोड़ कर बार बार फेनो को पकड़ता हूँ ॥३॥

अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति, ज्याँ भरि मुख पकरें।
निज ताल-गत रुधिर पान करि, मन सन्तोष धरै ॥४॥

जैसे अत्यन्त भूखा कुत्ता पुरानी हड्डी को मुँह में भर कर पकड़ता है और अपने ही तालू से निकले रक्त का पान करके अत्याब्त संतुष्ट होता है, मेरी यही दशा है।

परम कठिन भव-ब्याल ग्रसित हौं, त्रसित भयउँ अति भारी ।
चाहत अभय भेक-सरनागत, खगपति नाथ बिसारी ॥५॥

मैं अत्यन्त भयंकर संसार रूपी सर्प से ग्रसा हुआ अत्यंत ही भयभीत हो रहा हूँ। हे नाथ ! गरुड़ को भूल कर मेढक की शरण में निर्भय होना चाहता हूँ ! ॥५॥

जलचर-बन्द जाल अन्तर्गत, होत समिटि एक पासा ।
एकहि एक खात लालच बस, नहि देखत निज नासा ॥६॥

जैसे जलजीवों के झुण्ड जाल के भीतर सिमट कर एक साथ इकट्ठे होते जाते हैं और लालच वश एक दूसरे को खाते हैं और अपना विनाश नहीं देखते वैसी ही दशा मेरी भी है ॥६॥

मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत पार नहिं पावै।
तलसीदास पतित-पावन.प्रभ यह भरोस जिय प्रावै॥७॥

मेरे पापों को अनन्त युगों तक गिन कर सरस्वती जी भी पार नहीं पा सकती । तुलसीदास के मन में एक यही भरोसा है कि प्रभु रामचन्द्रजी पापियों को पवित्र करनेवाले हैं॥७॥

(९३)

कृपा सो कहा विसारी राम ।
जेहि करना सुनि स्रवन दीन दुख, धावत हो तजि धाम॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! आपने उस कृपा को कैसे भूल गये कि जिसके कारण दीनों के दुःख कान से सुन कर वैकुण्ठ-धाम छोड़ कर दौडा करते हो ॥१॥

नागराज निज बल बिचारि हिय, हारि चरन चित दीन्ह ।
भारत-गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलम्ब न कीन्ह ॥२॥

गजेन्द्र ने अपना बल विचार कर, हदय में हार मान कर चरणों में मन लगाया। उसकी दुःख भरी वाणी सुनते ही गरुड़ को छोड़ कर आपने वहां पहुँचने में देरी नहीं की ॥२॥

दिति-सुत त्रास त्रसित निसि दिन, प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी ।
अतुलित वल मृगराज-मनुज तनु, दनुज हतेउ सुर साखी ॥३॥

दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के भय से रात दिन भयभीत रहने वाले प्रहलाद-भक्त की आपने प्रतिज्ञा की रक्षा कर ली। अत्यन्त बलवान सिंह और मनुष्य अर्थात नृसिंह रूप धारण करके दैत्य को मारा, इसके साक्षी देवता हैं ॥३॥

भूप सदसि नृप बल विलोकि प्रभु-राखु कहेउ नर-नारी ।
बसन पूरि अरि दर्प दूर करि-भूरि कृपा दनुजारी ॥४॥

राजसभा में राजा दुर्योधन का अत्याचार देख कर अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ने कहा- 'हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये' तब हे दैत्य शत्रु ! आपने वहां वस्त्रों के ढेर कर शत्रु के घमंड को दूर कर दिया,आप बड़े ही दयालु हैं ॥४॥

एक एक रिपु तँ त्रासित जन, तुम्ह राखेउ रघुबीर ।
अब मोहि देत दुसह दुख बहु रिपु, कस न हरहु भव-भीर ॥५॥

हे रघुवीर ! एक एक शत्रु से भयभीत दासों की आपने रक्षा की। अब मुझे बहुत से भीषण शत्रु दुःख देते हैं, मेरी इस भव पीड़ा को आप क्यों नहीं दूर करते हो ? ॥५॥

लोभ ग्राह दनुजेस-क्रोध कुरुराज, बन्धु खल मार।
तुलसिदाल प्रभु यह दारून दुख,भञ्जहु राम उदार ॥६॥

लोभ रूपी मगर, क्रोध रूपी हिरण्यकशिपु और कामदेव रूपी दुर्योधन का भाई दुःशासन है, यह सभी मुझे दारुण दुःख दे रहे हैं। हे उदार स्वामी रामचन्द्रजी ! इस भयानक दुःख का नाश कीजिये ॥६॥

(९४)

.

काहे तँ हरि मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो॥१॥

हे भगवन् ! किस कारण आपने मुझे भुला दिया है ? हे नाथ ! अपनी महिमा और मेरे पापों को आप जानते हैं तब भी मेरी रक्षा नहीं करते ॥१॥

पतित पुनीत दीन-हित असरन, सरन कहत सुति चारो।
हाँ नहिं अधम समीत दीन विधाँ, वेदन्ह मृषा पुकारो ॥२॥

चारों वेद आप को पतित-पावन, दीन-हितकारी और अशरणों की शरणागति शरण कहते हैं, तो क्या मैं पतित, भयभीत और दीन नहीं हूँ या फिर वेदों ने मिथ्या कहा है।? ॥२॥

खग गनिका गज व्याध पाँति जह, तहँ हाँ हूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपालिधाल परसत पनवारो फारो ॥३॥

गिद्ध, वेश्या, हाथी और व्याधा की पंक्ति में मुझे बैठा कर, हे कृपानिधान ! अब आप व किसकी शर्म से परोसते हुए पत्तल फाड़ रहे हो ॥३॥

जौ कलिकाल प्रबल होतो अति, तुव निदेस त न्यारो।
तो तजि रोस भरोस दोष गुन, तेहि भजते तजि गारो॥४॥

यदि कलिकाल आप की आज्ञा को न मानने वाला, अत्यन्त प्रबल होता तो सभी आप के गुणों एयर गर्व का भरोसा छोड़ उसपर क्रोध करने तथा उसे दोषी ठहराने की अपेक्षा उसी का भजन करते ॥४॥
मसक विराचि बिरश्चि लसक सल, करहु प्रभाउ तिहारो।

अस सामर्थ्य अछत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥५॥

आप तो मच्छर को ब्रह्मा और ब्रहा का मच्छर बना सकते हैं, इतनी विशाल आप की महिमा है। ऐसी शक्ति रहते हुए मुझे त्यागते हो, हे नाथ ! तब वहाँ मेरा वश ही क्या है ? ॥५॥

नाहिं न नरक परत लो कह डर, जद्यपि हाँ अति हारो।
यह वड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु, नाम पाप न जारो ॥६॥

यपि मैं नरक भोगते भोगते बहुत थक गया हूँ और मुझे उसमें गिरने का डर भी नहीं है। हे प्रभो ! मुझे सबसे यह बड़ा डर यही है कि तुलसादास के पाप को प्रभु का नाम भी भस्म नहीं कर पाया ॥६॥

(९५)

तौ न मोर अघ अवगुन गनिहैं ।
जौँ जमराज काज सब परिहरि, इहाइ ख्याल उर अनि ॥१॥

यदि यमराज अपना सब काम छोड़ कर केवल यही विचार मन में ले आयें कि तुलसी के पापों का लेखा जोखा किया जाए तब भी मेरे पाप और दोषों की गणना वह नहीं कर सकेंगे ॥१॥

चलि है छूटि पुञ्ज पापिन्ह के, असमञ्जस जिथ जनिहैं।
देखि खलल अधिकार सुप्रभु सौँ, भूरि भलाई भनिहैं ॥२॥

यदि वह मेरे पापों का हिसाब लगा लेंगे तो पापियों के झुण्ड छूट कर चल देंगे और उनके मन में असमञ्जस होगा। अपने अधिकार में बाधा देख कर वह सुन्दर स्वामी आप से मेरी बहुत बड़ाई कहेंगे अर्थात मेरे पाप और दुर्गुण इतने अधिक है कि यमराज उनका झटपट लेखा कर न सकेंगे, इस कार्य में उन्हें युगों लग जायगा । न्याय के लिये जो अन्यान्य पापी यमपुरी में आयेंगे तो यमराज को फुरसत ही नहीं होगी इससे उनका समय पर न्याय नहीं होगा अत: वह पापी छुटकारा पा कर चले जायेंगे । तब यमराज को चिन्ता होगी कि तुलसी के पापों का न तो लेखा समाप्त होगा और न ही मैं धर्मानुसार कर्म कर पाऊंगा । यह सोच कर अपने कल्याण के लिये वह कौशल-पूर्वक आप से मेरी बहुत बड़ाई करेंगे कि यह पापी नहीं, आप का सच्चा प्रेमी भक्त शिरोमणि है इसको अपने धाम में ले जाइये । ॥२॥

हँसि करिहैं परतीति भगति की, भगत-सिरोमनि मनिहैं ।
ज्यौं त्यों तुलसिदास कोसलपति, अपनायेहि पर बनिहूँ ॥३॥

तब हँस कर आप अपनर भक्त यमराज का विश्वास करेंगे और मुझे भक्त भक्तशिरोमणि मानेंगे। हे कौशलेन्द्र भगवान ! जैसे तैसे आपको तुलसीदास को अपनाने ही पड़ेगा ॥३॥

(९६)

जौं जिय धरिहउ अवगुन जन के ।
तौ क्यौं कटत सुकृत नख तें मो पै, बिपुल बन्द अघ बन के ॥ १ ॥

यदि आप दास के अवगुणों पर विचार करेंगे तो पुण्य रूपी नखों से आप मेरे जैसे पाप रूपी विशाल झुण्ड वनों को कैसे काटेंगे?॥१॥

कहिहै कवन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मन के।
हार्हिं कोटि सेष सारद सुति, गिनत एक एक छन के ॥२॥

मेरे कर्म, वचन और मन से किये पापों को कौन कहेगा ? करोड़ो शेष, सरस्वती और वेद एक एक क्षण के पापों की गिनती करने में हार जाँयगे ॥२॥

जौं चित चढ़इ नाम महिमा निज,-गुन-गन पावन पन के।

तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्याँ, दसन तोरि जमगन के ॥३॥

यदि नाम की महिमा, अपने पवित्र गुण-समूह और प्रतिज्ञा की याद चित्त पर चढ़ेगी तो आप अजामिल की तरह यमदूतों के दाँत तोड़ कर तुलसी को भी संसार सागर से तार देंगे ॥३॥

(९७)

जौं हरि जन के अवगुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि साँ, कत हठि वैर बेसहते ॥ १ ॥

यदि भगवान अपने दासों के दोषों पर ध्यान देते तो इन्द्र, दुर्योधन और बालि से हट करके क्यों शत्रुता मोल लेते ॥१॥

जौं जप जोग जाग व्रत बरजित, केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिवर बिहाइ ब्रज, गोप-गेह बसि रहते ॥२॥

यदि जप, योग, यश और व्रत के सिवा केवल प्रेम न चाहते होते तो देवता तथा मुनिवरों को छोड़ कर ब्रज में अहीरों के घर निवास करते ? ॥२॥

जौं जहँ तहँ पन राखि भगत को, भजन प्रभाउ न कहते ।
तौ कलि कठिन करम मारग जड़,हम केहि भाँति निबहते ॥३॥

यदि जहाँ तहाँ भक्तों की प्रतिज्ञा पूरी करके भजन की महिमा न कहते तो इस कठिन कलि के कर्म-मार्ग में हम सरीखे मूर्खों का निर्वाह किस प्रकार होता ? ॥३॥

जाँ सुत हित लिय नाम अजामिल के अघ अमित न दहते।
तो जमभट साससति-हर हम से, उषभ खोजि खोजि नहते ॥४॥

यदि पुत्र के हेतु नाम लेने से अजामिल के अपार पापों को भी भस्म नहीं किया होता तो यमराज के शूरवीर दूत हमारे समान बैलों को खोज कर दुर्दशा रूपी हल में जोतते ॥४॥

जौं जग बिदित पतित-पावन अति, बाँकुर बिरद न बहते।
तो बहु कलपं कुटिल तुलसी से, सपनेहुँ सुगति न लहते ॥५॥

पापियों को पवित्र करनेवाली अत्यन्त पतित पावन रूप का बाना नहीं धारण किया होता तो तुलसी के समान दुष्ट बहुत कल्प बीतने पर भी सपने में भी अच्छी गति प्राप[टी नहीं करते ॥५॥

(९८)

असि हरि करत दास पर प्रीति ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस, होत सदा यह रीति ॥१॥

श्री हरी अपने दास पर इतना प्रेम करते करते हैं कि अपनी प्रभुता भुला कर भक्तों के वश में हो जाते हैं, यह सदा से उनकी रीति है ॥१॥

जिन्ह बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल करम की डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि, बाँधेउ सकत न छोरी ॥२॥

जिन्होंने देवता, दैत्य, नाग और मनुष्यों को कर्म की बड़ी प्रबल डोरी से बाँध रखा है। उन्हीं अखण्ड ब्रह्म आदि पुरुष को यशोदा जी ने हठ करके बाँध दिया और वह उस कृत्रिम बन्धन को खोल भी नहीं सके ॥२॥

जाकी माया बस बिरचि सिव, लाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाइ ग्वाल, जुबतिन्ह सोइ नाथ नचायो ॥३॥

जिनकी माया के अधीन होकर ब्रह्मा और शिवजी ने नाचते हुए पार नहीं पाया। उन्हीं स्वामी को अहीरों की स्त्रियों ने हाथ की ताली बजा कर नाच नचाया ॥३॥

बिस्वम्भर श्रीपति त्रिभुवन-पति, बेद विदित यह लीख ।
बलि साँ कछु न चली प्रभुता बरु, होइ द्विज माँगी भीख ॥४॥

यह निशान वेद में प्रसिद्ध है कि भगवान् विश्व का पोषण करने वाले, लक्ष्मी के स्वामी और तीनों लोकों के स्वामी होने पर भी भक्त राजा

बलि के सामने कुछ भी महिमा नहीं वह सके वरन् ब्राह्मण बन कर भीख माँगी ॥४॥

जाको नाम लिये छूटत भव जनम मरन दुख भार।
अम्बरीष हित लागि कृपानिधि, सोइ जनमे दस बार ॥ ५॥

जिनका नाम लेने से संसार के जन्म मृत्यु रुपी दुःख के भार से छूट जाता है वही कृपानिधान (परमात्मा) राजा अम्बरीश की भलाई के लिये इस पृथ्वी पर दस बार जन्मे ! ॥५॥

जोग बिराग ध्यान जप तप करि, जहि खोजत मनि-ज्ञानी ।
बानर भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी ॥६॥

योग, वैराग्य, ध्यान, जप और तप करके जिन्हें ज्ञानी मुनि खोजते हैं उन्हीं स्वामी ने चञ्चल नीच पशु वानर और भालुओं से प्रेम किया ! ॥६॥

लोकपाल जम काल पवन रवि, ससि सब आज्ञाकारी ।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के, द्वार बेत कर धारी ॥ ७॥

लोकपाल, यम, काल, पवन, सूर्य, चन्द्रमा सब जिनके आज्ञाकारी हैं। तुलसीदासजी कहते हैं वह ही प्रभु रामचन्द्रजी उग्रसेन भक्त के दरवाजे पर हाथ में लकड़ी ले कर द्वारपाल बने थे ॥७॥

(९९)

विरद गरीव-निवाज राम को ।
गावत बेद पुरान सम्भु सक, प्रगट प्रभाव नाम को ॥१॥

गरीबों पर दया करने के लिए श्री रामचन्द्रजी विख्यात हैं। जिनके नाम की महिमा प्रसिद्ध है, वेद, पुराण, शिवजी,शुकदेव मुनि गाते हैं ॥३॥

ध्रुव प्रहलाद विभीषन कपि जदुपति पांडव सुदाम को।
लोक सुजस परलोक सुगति इनमैं है को राम काम को ॥२॥

ध्रुव, प्रसाद, विभीषण, सुग्रीव ययाति, युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई और सुदामा को लोक में सुन्दर यशस्वी बनाकर परलोक में अच्छी गति दी, इनमे रामचन्द्रजी के काम का उपकारी कौन है ? ॥२॥

गनिका कोल किरात आदिकबि, इन्ह तँ अधिक बाम को
बाजिमेध कब कियउ अजामिल, गज गायक कब साम को॥३॥

वेश्या, कोल किरात तथा आदिकवि इनसे बढ़ कर कुटिल कौन था ? अजामिल ने कब अश्वमेध यज्ञ किया और हाथी ने कब सामवेद का गान किया था ॥३॥

छली मलीन हीन सबही अँग,तुलसी साँ छीन छाम को।

नाम नरेस प्रताप प्रबल जग, जुग जुग चालत चाम को ॥४॥

तुलसी के समान कपटी, पापी, सभी अंगों से रहित दुबला पतला कौन है ? राम-नाम रूपी राजा के प्रबल प्रताप से संसार में युग युग से चमड़े का सिक्का भी चलता आ रहा है अर्थात श्री राम नाम के प्रताप से युग युग पर्यन्त पापी पवित्र होते आये हैं ॥४॥

(१००)

सुनत सीतापति सील सुभाउ ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल , सो नर खेहर खाउ ॥१॥

सीतानाथ के शील स्वभाव को सुनते ही जिसका मन आनन्दित न हो, शरीर पुलकाय मान और नेत्रों में प्रेमाश्रु नहीं उमडे तो वह मनुष्य धूल खाने वाले कीड़े मकोड़े के समान निषिद्ध जीव है ॥१॥

सिसुपन तँ पितु मातु वन्धु गुरु, सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम बिधु-बदन रिसौहैं, सपनेहुँ लखेउ न काउ ॥ २॥

बचपन से ही पिता, माता, भाई, गुरु, सेवक, मन्त्री और मित्र ने भी रामचन्द्रजी के मुख चन्द्र को क्रोधयुक्त कभी सपने में भी नहीं देखा, सब ऐसा कहते हैं ॥२॥

खेलत सङ्ग अनुज बालक नित, जोगवत अनट अपाउ ।

जीति हारि चुचकारि दुलारत- देत दियावत दाउ ॥३॥

छोटे भाइयों और वालक-मित्रों के साथ नित्य खेलते हुए अत्याचार और अन्याय बचाते थे। अपनी जीती हुई वाजी हार मान कर प्यार के साथ दांव देते और दूसरों को दिलवाते थे ॥३॥

सिला साप सन्ताप बिगत भइ, परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुये को पछिताड़ ॥४॥

शिला रुपी अहिल्या पवित्र चरणों के स्पर्श से शाप के दुःख से छूट गई । उसको अच्छी गति दी यह देख कर उनके हृदय में हर्ष नहीं हुआ अपितु ऋषि पत्नी को पाँव से छूने का पछतावा हुआ ॥४॥

भव-धनु भजि निदरि भूपति, भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।
छमि अपराध छमाय पाँय परि, इतो न अनत समाउ ॥५॥

शिवजी के धनुष को तोड़ कर घमण्डी राजाओं का तिरस्कार किया जिससे परशुरामजी क्रोध से उबल पड़े। उनके अपराध को क्षमा करके उलटे पाँव पड़ कर आप क्षमा प्रार्थी हुए, इतनी सहनशीलता दूसरे में नहीं है ॥५॥

कहेड राज वन दियेउ नारि-बस, गरि गलानि गये राउं ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्याँ, निज तन मरम-कुघाउ ॥६॥

रजा दशरथ ने राज्य देने की बात कह कर स्त्री के अधीन होने के कारण वनवास दे दिया और उसके संताप से उनकी मृत्यु भी हो गई। ऐसी नीच माता के मन को भी आप ऐसे बचाते रहे जैसे अपने शरीर के मर्म स्थल के बुरे घाव को लोग बचाते हैं ॥६॥

कपि सेवा बस भये कनौड़े, कहेउ पवन-सुत श्राउ ।
देवे को न कळू रिनियाँ हाँ, धनिक तू पत्र लिखाउ ॥७॥ ..

हनुमानजी की सेवा से उपकार के बोझ से दव कर उनके वश में हुए और कहा हे पवनकुमार ! आओ, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और तुम मेरे साहूकार हो, मेरे पास देने को कुछ नहीं है तुम मुझ से दस्तावेज लिखा लो जब तुम्हारे उपकार के योग्य सामग्री मेरे पास प्रस्तुत होगी तव प्रत्युपकार करके ऋण से मुक्त हुँगा ॥७॥

अपनायउ सुग्रीव बिभीषन,तिन्ह न तजेउ छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥८॥

सुग्रीव और विभीषण को आपने अपनाया परन्तु उन्होंने छलवाजी नहीं छोड़ी थी। सभा में उनका सन्मान करके भरतजी से बड़ाई करते हुए हदय की तृप्ति ही नहीं होती थी ॥८॥

निज करुना करतूति भगत पर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिर गाउ ॥९॥

अपनी दया की करनी जो भक्तों पर करते हैं उसकी चर्चा चलने से लज्जित होते हैं। एक बार प्रणाम करने से विनीत जनों के यश वर्णन करते, सुनते और बार बार गान करके कहते हैं ॥९॥

समुझि, समुलि गुन ग्राम राम के, उर अनुराग बढाउ।
तुलसिदास अनयास राम-पद, पइहै प्रेम पसाउ ॥१०॥

ऐसे कोनाल ह्रदय रामचन्द्रजी के गुण-समूह समझ कर ह्रदय में उनके लिए प्रेम बढ़ाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना परिश्रम ही रामचन्द्रजी के चरणों के प्रेम से स्वामी की प्रसन्नता पाओगे अर्थात् प्रेम से प्रभु अवश्य प्रसन्न होते हैं ॥१०॥

(१०१)

जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥

आप के चरणों को छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? संसार में किसका नाम पापियों को पवित्र करनेवाला है और किस को दीन दुखियारे अत्यन्त प्रिय हैं ॥३॥

कवन देव बरिआइ विरद हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग मग ब्याध पखान बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥२॥

आज तक किस देवता ने अपने नाम की रक्षा के लिए बार बार हठ करके अधमों का उद्धार किया है ? पक्षी- (जटायु), मृग-मारीच, व्याध-वाल्मीकि, पत्थर-अहल्या, वृक्ष – यम-अर्जुन दण्डकवन और म्लेच्छ को किस देवता ने संसार रुपी समुद्र से पार किया है ? ॥२॥

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया बिबस बिचारे।
तिन्ह के हाथ दासतुलसी प्रभु, कहा अपनपी हारे ॥ ३ ॥

देवता, दैत्य, मुनि, नाग और मनुष्य बेचारे सब माया के अधीन हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे नाथ ! उनके हाथ अपने को हारने से क्या लाभ है ? ॥३॥

(१०२)

हरि तुम्ह बहुत अनुग्रह कीन्हाँ ।
साधन-धाम विबुध दुर्लभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हाँ ॥१॥

हे भगवन् ! आप ने बड़ी कृपा की जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ, साधनों का स्थान, यह मनुष्य देह मुझ को दया करके दिया ॥२॥

कोटिहु मुख कहि जाइ न प्रभु के, एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहउँ, दीजे परम उदार ॥२॥

यद्यपि स्वामी के एक एक उपकार करोड़ो मुख से भी नहीं कहे जा सकते । हे नाथ! तो भी मैं कुछ और माँगता हूँ, आप अत्युत्तम दानी है, मुझे कृपा करने दीजिये ॥२॥

विषय वारि मन मीन भिन्न नहिँ, होत कबहुँ पल एक ।
ता तँ सहिय विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥ ३॥

विषय रूपी जल से मन रूपी मछली कभी एक पल भर अलग नहीं होता, इसलिये अनेक योनियों में जन्म लेकर अत्यन्त भीपण विपत्ति सहता हूँ ॥३॥

कृपा डोरि बंसी पद-अङ्कुस, परम प्रेम स्मृदु चारो।
एहि विधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥४॥

कृपा रूपी डोरी और चरणों के प्रकाश रूपी अंकुश में प्रत्युत्तम प्रेम रूपी मुलायम चारा मिलाइये। हे रामचन्द्रजी! इस तरह मेरे मन को भेद कर मेरा दुःख हरिये, आपके लिए तो यह खेल है।

है सुति बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यह जीव मोह रजु, जो बाँधइ सोइ बोरै ॥५॥

वेदों में उपाय प्रसिद्ध है; पर यह दीन तुलसीदास समस्त देवताओं से किससे किससे निहोरा (विनती) करे, जीव को अज्ञान की रस्सी से जो चाँधता है वही छोड़ भी सकता है ॥ ५॥

(१०३)

यह बिनती रघुबीर गोसाँई ।
और आस बिस्वास भरोसो, हरो जिय की जड़ताई ॥१॥

हे रघुवीर गुसाई ! मेरी यह विनती है कि दूसरे की आशा, विश्वास और भरोसा की मूर्खता जो मन में समाई है उसको हर लीजिये ॥१॥

चहउँ न सुगति सुमति सम्पति किछु, रिधि सिधि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग नाथ-पद, बढ़उ अनुदिनअधिकाई ॥२॥

मैं अच्छी गति, सुवुद्धि, सम्पत्ति, समृद्धि, सिद्धि और विशाल महिमा कुछ नहीं चाहता हूँ । हे नाथ ! दास केवल यही चाहता है कि आप के चरणों में दिनोदिन प्रेम बढ़ता जाय ॥२॥

कुटिल करम लेइ जाइ मोहि जहँ, जहँ अपनी बरिआई।
तहाँ तहाँ जनि छोह छाड़िये, कमठ-अंड की नाई ॥३॥

मेरा कुटिल कर्म अपनी प्रबलता से मुझे जिस जिस योनि में ले जाएं वहाँ वहाँ जिस प्रकार कछुआ अपने अण्डों को एक पल के लिए भी नहीं छोड़ता उसी प्रकार आप भी मुझे मत त्यागिये॥३॥

है जग मैं जहँ लगि या तनु की, प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभुही सौं, होहिँ समिटि एकठाई ॥४॥

इस शरीर के संसार में जहाँ तक प्रीति और विश्वास के नाते हैं, तुलसीदास के वह सभी सिमट कर आपसे ही हो जाएँ ॥४॥

(१०४)

जानकी जीवन की बलि जइहौं।
मन कहइ सीयाराम-पद परिहरि, अब न कहूँ चलि जइहौं ॥१॥

जानकीजी के प्राणाधार श्री रामचन्द्रजी की वलि जाता हूँ । मन कहता है कि सीताजी और रामचन्द्रजी के चरणों को छोड़ कर अब कहीं चल कर न जाऊँगा ॥१॥

उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख,प्रभु-पद-बिमुख न पइहौं ।
मन समेत या तनु के बासिन्ह, इहइ सिखावन दइहौं ॥२॥

स्वामी के चरणों में हृदय में विश्वास उत्पन्न हुआ है वह सुख विमुख होने पर सपने में भी नही पाऊँगा । मन के सहित इस शरीर के निवासियों को यही शिक्षा दूंगा ॥२॥

स्रवनन्हि और कथा नहिँ सुनिहउँ, रसना और न गइहौं।
रोकिहउँ नयन बिलोकत औरहि, सीस ईसही नइहौं ॥३॥

कानों से दूसरों की कथा नहीं सुनूंगा और जीभ से दूसरे का गुण नहीं गाऊँगा । आँखों को दूसरों के देखने में रोकूँगा और मस्तक ईश्वर ही को नवाऊँगा ॥३॥

नातो नेह नाथ सौँ करि सब, नातो नेह बहइहौँ ।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जा को दास कहइहौँ ॥४॥

स्नेह का नाता स्वामी से करके अन्य सब प्रेम के सम्बन्ध को दूर बहा दूंगा। तुलसीदासजो कहते हैं कि यह कुबोझ उन्हीं पर है जिनका मैं जगत में दास कहलाऊंगा ॥४॥

(१०५)

अबलौ नसानी अब न नसइहौँ ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसइहौँ ॥१॥

अब तक जो बिगड़ी सो बिगड़ी; परन्तु अब नहीं बिगड़ने दूंगा। रामचन्द्रजी की कृपा से संसार रूपी रात्रि बीत गई और उससे मैं जाग गया। अब मैं पुन: माया रुपी बिस्तर नहीं बिछाऊँगा ॥ १ ॥

पायेउँ नाम चारु चिन्तामनि, उर कर तें न खसइहौँ ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कञ्चनहिँ कसइहौँ ॥२॥

मुझे राम नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणि प्राप्त हो गयी उसको हृदय रूपी हाथ से न गिराऊँगा। सुन्दर साँवली मूर्ति रूपी पवित्र कसौटी पर चित्त रूपी सुवर्ण को कसवाऊँगा। श्यामली मूर्ति पर कसौटी पत्थर का आरोप करके अपने चित्त पर सुवर्ण का आरोपण इसलिये किया गया कि कसौटी पर कसने से सोने के खरे खोटे होने की परीक्षा की जाती है। कहने का तात्पर्य यह कि श्याम रूप में मन लग गया तो खरा और नहीं लगा तो खोटा ॥२॥

परबस जानि हँसेउ निज इन्द्रिन्ह, इन्ह बस होइ न हँसइहौं ।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-पदुम बसइहौं ॥३॥

मेरी इन्द्रियाँ मुझे पराधीन जान कर हँसती है, किन्तु इनके अधीन हो कर मैं अपनी हँसी नहीं करवाऊँगा । तुलसीदासजी कहते हैं कि मन रूपी भ्रमर को प्रतिज्ञा करके रघुनाथजी के चरण कमल में टिकाऊँगा अर्थात श्री राम नाम का जप छोड़ कर मन को कहीं ओर नहीं जाने दूंगा ॥ ३॥

(१०६)

राग-रासकली

महाराज रामादरेउ धन्य सोई।
गरुथ गुन-रासि सर्वज्ञ सुकृती सुघर, सीलनिधि साधु तेहि सम न कोई ॥१॥

महाराज रामचन्द्रजी ने जिसका आदर किया वह धन्य है। उसके बराबर महिमान्वित, ,गुणों का भण्डार, सर्व ज्ञाता, पुण्यात्मा, शोभायमान, शुद्धाचरण का भण्डार और सज्जन है ॥३॥

उपल केवट कीस भालु निसिचर सवरि,
गीध सम दम दया दानहीने।
नामलियरामकिय परम पावनसकल, तरतनरजासुगुनगानकीने॥२॥

पत्थर- अहिल्या, केवट – मल्लाह, वानर, भालू, राक्षस- विभीषण, शबरी और गिद्ध सौम्यता, इन्द्रिय दमन, दया तथा दान से रहित थे। केवल नाम लेने से रामचन्द्रजी ने सब को अत्यन्त पवित्र कर दिया। इनका गुणगान करने से मनुष्य संसार-समुद्र से पार होतेहैं ॥२॥

व्याध अपराध की साध राखी कवन,
पिङ्गला कौन मति भगति मैंई।
कवनधी सोमजाजीअजामिल अधम, कवनगजराजधावाजपेई॥३॥

व्याध – वाल्मीकि ने कौन से पाप की इच्छा बाकी रखी थी और पिंगल वेश्या की बुद्धि कौन सी भक्ति में लगी थी ? पापी अजामिल न जाने कौन सा सोम यज्ञ करनेवाला था और गजेन्द्र ने न जाने कौन सा अश्वमेध किया था ? ॥ ३॥

पंडु-सुत गोपिका विदुर कुवरी सबहि,

सोध किय सुद्धता लेस कैसो ।
प्रेम लखि कृष्न किय आपने तिन्हहु को,
सुजस संसार हरि-हर को जैसों ॥४॥

पांडुपुत्र - युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, गोपियों, विदुर और कुब्जा में पवित्रता का लीश भी कहाँ था? श्रीकृष्णचन्द्रजी ने इनका प्रेम देख कर उनको भी अपना लिया और उनका सुयश संसार में विष्णु तथा शिवजी के समान प्रसिद्ध है ॥ ४॥

कोल खल भिल्ल जमनादि खस राम कहि,
नीच होइ ऊँच पद को न पायो ।
दीन दुख दवन श्रीरवन करुना भवन,
पतित पावन. बिरद वेद गायो॥५॥

कोल, भील, खस और म्लेच्छ आदि नीच होने पर भी ऐसा कौन है जिसने 'राम' कह कर ऊँचा पद प्राप्त नहीं किया? दीन दुःख-नाशक, लक्ष्मीकान्त, दया के स्थान भगवान की पतितों को पवित्र करनेवाला यश वेद गाते हैं ॥ ५ ॥

मन्द-मति कुटिल खल-तिलक तुलसी सरिस,
भा न तिहुँलोक तिहुँकाल कोऊ।
नाम की कानि पहिचानि जन आपनो
ग्रसत कलि ब्याल रखि सरन सोऊ ॥६॥

नीचबुद्धि, कपटी और दुष्टों का तिलक तुलसी के समान तीनों लोक और तीनों काल में कोई नहीं हुआ। नाम मर्यादा का ध्यान करके आपने अपना दास जान कर उसे भी कलिका रूपी साँप के पकड़ने से बचा कर अपनी शरण में रख लिया ॥६॥

(१०७)

राग-बिलावल

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह लोचन सुठि सुन्दर स्याम ॥१॥

अयोध्या के स्वामी रामचन्द्रजी मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता है, उनका सुन्दर कमल के समान नेत्र और अत्यन्त शोभायमान श्याम शरीर है ॥१॥

सिय समेत सोभित सदा, छबि अमित अनङ्ग ।
भुज बिसाल सर-धन धरे. कटि चारु निखङ्ग ॥२॥

सीताजी के सहित सदा शोभायमान रहते हैं। असंख्य कामदेव के समान उनका सौन्दर्य हैं। विशाल भुजाओं में बाण-धनुष धारण किये हुए और कमर में सुन्दर तरकस धारण किए हुए हैं ॥२॥

बलि पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति ।
सुमिरतही मानत भलों, पावन सव रीति ॥३॥

वह भेट और शुश्रूषा नहीं चाहते, केवल प्रेम चाहते हैं। स्मरण करते ही प्रसन्न हो जाते हैं और सब प्रकार से पवित्र कर देते है ॥३॥

देइ सकल सुख दुख दहइ, आरतजन-बन्धु।
गुन गहि अघ अवगुन हरइ, अस करुना-सिन्धु ॥४॥

वह समस्त सुख प्रदान करने वाले और दुःखों का नाश करते हैं, दुखीजनों के सहायक-वन्धु हैं। गुणों को ग्रहण करते हैं और पाप और दोषों को हरने वाले दयासागर है ॥४॥

देस काल पूरल सदा, वद वेद पुरान।
सब को प्रभु सब मैं बसइ, सत्र की गति जान ॥५॥

जिनको सदा देश और काल में परिपूर्ण वेद-पुराण कहते हैं। सब के स्वामी, सबमें रमण करने वाले और सब की गति जानने वाले हैं ॥५॥

को करि कोटिक कामना, पूजइ बह देव।
तलसिदास तेहि सेइये, सङ्कर जेहि सेव ॥६॥

ऐसे स्वामी को छोड़ कर करोड़ो कामना करके बहुत से देवताओं की आराधना कौन करे ? तुलसीदासजी कहते है कि जिनकी सेवा शंकर जी करते हैं तू उन्ही श्री रामचन्द्रजी की सेवा कर ॥६॥

(१०८)

वीर महा अवराधिये, साधे सिधि होइ ।
सकल काम पूरन करइ, जानइ सब कोई ॥.॥

महा बलवान श्री रामचन्द्र जी की उपासना करनी चाहिये जिनके प्रयत्न से सिद्धि होती है। वह समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं इसको सभी जानते हैं ॥१॥

बेगि विलम्ब न कीजिये, लीजे उपदेस ।
बीजमन्त्र जपिये सोई, जो जपत महेस ॥२॥

इस काम को तुरन्त करना चाहिए, देर करना उचित नहीं है, बीजमन्त्र श्रीराम नाम की शिक्षा लीजिये और उसी का जाप कीजिये जिसका जाप शिवजी करते हैं ॥ २॥

प्रेस-बारि तरपन भलो, घृत सहज सनेह ।
संसय समिध अगिनि-छमा ममता-बलि-देह ॥ ३॥

प्रेम रूपी जल का उत्तम तर्पण है, सहज स्वाभाविक स्नेह घृत है । संदेह रुपी समिधा यज्ञ में जलाने वाली लकड़ी है और ममता बलिदान का घर है ॥३॥

अघ उचाटिसन बस करइ, मारइ मद मार।

आकरषद सुख सम्पदा, सन्तोष विचार ॥४॥

यह अनुष्ठान पाप को दूर करके मन को वश में करता है, अहंकार और कामदेव को नष्ट करता है। ज्ञान रुपी, सम्पत्ति, सन्तोष और विचार को अपनी ओर आकर्षित करता है॥४॥

जे एहि भाँति भजन किये, मिले रघुपति ताहि ।
तुलसिदास प्रभु पथ चढ़ेउ, जौँ लेहु निवाहि ॥५॥

जिसने इस तरह भजन किये उसको रघुनाथजी मिले हैं। तुलसीदास जी कहते हैं हे प्रभो ! मैं उसो रास्ते पर चढ़ा हूँ यदि अपनी ओर से निर्वाह कीजियेगा तो मनकामना पूर्ण होगी ॥ ५॥

(१०९)

कस न करहु करुना हरे, दुख हरन मुरारि ।
त्रिविध ताप सन्देह सोक, संसय भय हारि ॥१॥

हे दुःख हरण मुरारि भगवन् ! मुझ पर दया क्यों नहीं करते हो ? आप तीनों ताप, सन्देह, शोक, संशय और भय के हरनेवाले हैं ॥१॥

यह कलिकाल जनित मल, मति-मन्द मलिन-मन ।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जिअइ जन ॥२॥

इस कलियुग से उत्पन्न पापों द्वारा मेरी बुद्धि मंद पड़ गई है और मन मन मैला हो गया है । हे प्रभो ! उस पर आप भी मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो यह दास किस प्रकार जीवित रहेगा ? ॥२॥

सब प्रकार समरथ प्रभो, मैं सब विधि हीन ।
यह जिय जानि द्रवउ नहीं, मैं करम-विहीन ॥ ३॥

प्रभो! आप सब प्रकार से समर्थ हैं और मैं सब तरह से हीन है। यह जान कर भी आप दया नहीं करते हैं, इससे पता चलता है कि मैं अभागा हूँ ॥३॥

भ्रमत अनेक जोनि रघुपति, पति श्रान न मोर ।
दुख सुख सहउँ रहउँ सदा, सरनागत तोर ॥४॥

रघुनाथ जी! मैं अनेक योनियों में भटकता फिरता हूँ किन्तु मेरा आप के समान कोई दूसरा मालिक नहीं है । दुःख सुख सहता हुआ भी मैं सदा आप की शरण में ही रहता हूँ ॥४॥

तुम्ह सम देव न कोउ कृपाल, समुझाँ मन माहि।
तुलसिदास हरि तोषिये, सो साधन नाहि ॥५॥

आप के समान कृपालु देवता कोई नहीं है यह मैं अपने मन में समझता हूँ। तुलसीदासजी कहते हैं-हे भगवन् ! जिससे आप प्रसन्न होते हैं वह उपाय मेरे पास नहीं है ॥५॥

(११०)

कह केहि कहिय कृपानिधे, भव-जनित बिपति अति ।
इन्द्रिय सकल बिकल सदा, निज निज सुभाउ रति ॥१॥

हे दयानिधे ! संसार से उत्पन्न बड़ी विपत्ति कहिये आप के सिवा किससे कहूँ ? समस्त इन्द्रियाँ तो अपने अपने विषयों में प्रीति रख के सदा विकल रहती है ॥१॥

जो सुख सम्पति सरग नरक, सन्तत सँग लागी।
हरि परिहरि सोइ जतन करत, मन मोर अभागी ॥२॥

जो सुख और सम्पत्ति निरन्तर स्वर्ग तथा नरक में साथ लगी रहती है। हे भगवन् ! आप को छोड़ कर मेरा अभागा मन उसी विषय सुख को प्राप्त करने के लिए यत्न करता है ॥२॥

मैं अति दीन दयाल-देव, सुनि मन अनुरागै।
जौँ न द्रवहु रघुबीर धीर, काहे न दुख लागै ॥३॥

हे धीर रघुवीर देव ! मैं अत्यन्त दीन हूँ और आप दया के स्थान हैं, यह सुन कर मन अनुरक्त हो रहा है । यदि आप अनुग्रह नहीं करेंगे तो मुझे कैसे दुःख नहीं होगा ? ॥३॥

जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुख हरन मुरारे ।
तुलसिदास कहँ श्रास इहइ, बहु पतित उधारे ॥४॥

हे दुःख-हरण मुरारि ! यद्यपि मैं पापों का स्थान हूँ, पर तुलसीदास को यही भरोसा है कि आप ने बहुत से पतितों का उद्धार किया है ॥४॥

(१११)

केसब कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिँ मन रहिये ॥१॥

हे केशव ! समझ नहीं आता,क्या कहूँ, आप की विलक्षण रचना देखते हुए उसको समझ कर मन ही मन आश्चर्य से परिपूर्ण होकर रह जाता हूँ ॥२॥

सून भीति पर चित्र रङ्ग नहि, कर बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥

शून्य आकाश रूपी चित्र को निराकार चित्रकार अर्थात सृष्टिकर्ता परमात्मा दीवार पर तसवीर बिना रंग के ही बना दिया। वह चित्र धोने से मिटता नहीं और न भीति का ही नाश होता है, देखने से उसका दुःख इस शरीर में पाया जाता है ॥२॥

रबि-कर-नीर बसइ अति दारुन, मकर रूप तेहि माही।

बदन हील सो असइ चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥

सूर्य के किरण रूपी मिथ्या जल उसमें अत्यन्त भीपण रूप का मगर निवास करता है और वह मुख रहित है। जड़ चेतन जीव जो जलपान करने जाते हैं वह उन्हें पकड़ लेता है ॥३॥

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसिदास परिहरइ तीनि भ्रम, सो आपन पहिचाने ॥४॥

कोई संसारऔर माया को सत्य कहता और कोई झूठ कहता है, कोई अन्य इस दोनो सत्य और झूठ से मिला हुआ बताता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो इन तीनों भ्रमों को त्यागेगा वही अपने आत्मस्वरूप को पहचान पाएगा ॥४॥

(११२)

केसव कारन कवन गोसाँई ।
जेहि अपराध असाध जानि मोहि तजहु अज्ञ की नाँई ॥१॥

हे केशव ! हे स्वामी ! न जाने ऐसा क्या कारण है, ऐसा क्या अपराध है कि आप मुझे असाध्य समझ कर अनजान की तरह त्याग रहे हो ? ॥१॥

परम पुनीत सन्त कोमल चित, तिन्हहिँ तुम्हहिँ बनिआई ।
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई ॥२॥

यदि यह कहा जाय कि आप काल अत्यन्त पवित्र कोमल चित्तवाले सन्तजन को ही अपनाते हैं तो ब्राह्मण- अजामिल, व्याध-वाल्मीकि और वेश्या- गणिका का उद्धार क्यों किया, क्या आपकी उनसे कुछ नातेदारी थी? ॥२॥

काल करम गति अगति जीव की, सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मम, फिरउँ न तुम्हहिं बिसारे ॥३॥

हे भगवन् ! जीव की सुगति, दुर्गति, कर्म और काल सभी आप के हाथ में है। वहीं कुछ कीजिये और मेरी अज्ञानता हर लोजिये जिससे आप को भुला कर मैं संसार में भटकता नहीं फिरूं ॥३॥

जौँ तुम्ह तजहु भजउँ न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे ।
मन बच करम नरक सुरपुर जह, तहँ रघुबीर निहोरे ॥४॥

यदि आप मुझे त्याग देंगे तो भी मैं दूसरे स्वामी की सेवा न करूँगा, मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा है । हे रघुनाथजी ! मन, वचन और कर्म से नरक या स्वर्ग जहाँ रहूँगा वहाँ आप का ही विनय करता रहूँगा ॥४॥

जद्यपि नाथ उचित न होत अस, प्रभु साँ करउँ ढिठाई।
तुलसिदास सीदत निसि-दिन, देखत तुम्हारि निठुराई ॥५॥.

हे नाथ ! यद्यपि यह उचित नहीं होता है कि मैं स्वामी से ऐसी ढिठाई करूँ। परन्तु यह तुलसीदास रात दिन आप को निष्ठुरता देख कर दुखो हो रहा है ॥५॥

(१९३)

माधव अब न द्रवहु केहि लेखे ।
प्रनतपाल पन तोर मोर पन, जिउँ कमल-पद देखे ॥१॥

हे माधव ! अब किस कारण आप दया नहीं करते हैं ? आप की प्रतिज्ञा दीनजनों की रक्षा करना है और मेरा संकल्प आप के चरण-कमलों को देख कर जीने का है ॥१॥

जब लगि मैं न दीन दयाल तें, मैं न दास तें स्वामी।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहि,जद्यपि अन्तरजामी ॥२॥

जब तक मैं दीन नहीं था आप दयालु नहीं हुए और जब तक मैं दास नहीं हुआ था आप स्वामी नहीं हुए । तब तक जो दुःख मैंने सहा वह आप से कहा नहीं यद्यपि आप अन्तर्यामा सर्वस्त्र जाननेवाले हैं ॥२॥

तें उदार मैं कृपिन पतित मैं, तैं पुनीत स्तुति गावै।
बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि, अब न तजे बनिश्रावै ॥३॥

आप दानी हैं मैं कंगाल हूँ, मैं पापी हूँ और आप पतित पावन हैं, यह पवित्र वेद कहते हैं । हे रघुनाथजी ! इस प्रकार मेरे तुम्हारे मुझ से बहुत नाते जुड़ गये हैं अत: आप मुझे कैसे त्याग सकते हैं ॥३॥

जनक जननि गुरु बन्धु सुहृद पति, सब प्रकार हितकारी।
द्वैत रूप तम कूप परउँ नहि, अस कछु जतन विचारी ॥४॥

पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र और मालिक सब तरह से आप मेरे हितकारी हैं। ऐसा कुछ उपाय कीजिए जिससे में अज्ञान रूपी अंधे कुँए में न पड़ूँ ॥४॥

सुनु अदभ्र करुना बारिज लोचन मोचन भय भारी।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु, संसय टरइ न टारी ॥५॥

हे अनन्त दया के रूप, कमल नयन और भारी भय के छुड़ानेवाले प्रभो! सुनिये, आप के तेज के बिना तुलसीदास का सन्देह नहीं हट सकता ॥५॥

(११४)

माधव मो समान जग माहीं ।
सब विधि हीन मलीन दीन अति, लीन बिषय कोउ नाहीं ॥१॥

हे माधव ! संसार में सब तरह से निन्दित, अपवित्र, दुखी और अत्यन्त विषयासक्त मेरे समान कोई नहीं है ॥१॥

तुम्ह सम हेतु रहित कृपाल भारत हित ईस न त्यागी।
मैं दुख सोक बिकल कृपाल केहि कारन दया न लागी ॥२॥

आप के समान अकारण कृपालु और दुखीजनों का हितकारी, त्यागी अर्थात सर्वस्व दान देने वाला स्वामी नहीं है । हे दयानिधान ! मैं दुःख और शोक से विकल हूँ, किस कारण आप मुझ पर दया नहीं करते ॥२॥

नाहि न कछु अवगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना।
ज्ञान भवन तनु दियेउ मोहि सो, पाइ न मैं प्रभु जाना ॥३॥

आप का कोई दोष नहीं है, मैं मानता हूँ कि अपराध मेरा ही है। आपने मुझे ज्ञान का स्थान शरीर दिया; किन्तु उसको पाकर भी मैंने स्वामी को नहीं पहचाना ॥३॥

बेनु करील श्रिखंड बसन्तहि, दूषन मृषा लगावै ।
सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहहु किमि पावै ॥४॥

बांस चन्दन को और करील वसन्त को वृथा ही दोष देता है। बांस सार हीन और करील अभागा है, फिर कहिये वह सुगन्ध और पत्ते कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? ॥४॥

सब प्रकार में कठिन मृदुल हरि, दिढ़ बिचार जिय मोरे ।

तुलसिदास यह मोह सृङ्खला छूटइ तुम्हरेहि छोरे ॥५॥

मैं सब प्रकार कठोर हूँ और आप कोमल हैं, हे भगवान् ! मेरे मन में ध्रुव निश्चय है कि तुलसीदास का यह अज्ञान बन्धन आपके द्वारा ही खोलने से ही खुलेगा ॥५॥

(११५)

माधव मोह फाँस क्यौं टूटै ।
बाहर कोटि उपाय करिय, अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटै ॥ १॥

हे माधव ! अज्ञान की बेड़ी कैसे टूटेगी ? बाहर से चाहे करोड़ों उपाय किया जाए किन्तु अन्त: करण की गाँठ नहीं छूटती ॥१॥

घृत पूरन कराह अन्तर्गत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
इंधन अनल लगाइ कलप सत, अवटत नासल पावै ॥२॥

घी से भरे हुए कड़ाह के भीतर चन्द्रमा की परछाहीं दिखाती हो, उसको करोड़ो कल्प तक लकड़ी की आग से गाढ़ा करते रहो तब भी उस प्रतिविम्ब का नाश नहीं होता ॥२॥

तरु कोटर मह बस बिहा तरु,काटे मरइ न जैसे।
साधन करिय बिचार हीन मन,-सुद्ध होइ नहि तेसै ॥३॥

वृक्ष के कोटरे में निवास करने वाला पक्षी, जैसे पेड़ के काटने से मर नहीं सकता । उसी तरह बिना विचार के उपाय करने से मन पवित्र नहीं होता ॥३॥

अन्तर मलिन विषय मन अति तन,-पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन, बलमीक विविध बिधि मारे ॥४॥

मन के अत्यन्त विषयी होने से अन्तःकरण मैला हो गया है और शरीर को नहा धो कर पवित्र करता हूँ तब भी यह शरीर पवित्र नहीं होता। उसू प्रकार जैसे असंख्यों उपाय से अनेक प्रकार बिल के पीटने से उसमे रहने वाला साँप नहीं मरता ॥४॥

तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु, विमल बिवेक न होई।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि, पार न पावइ कोई ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना भगवान और गुरु की दया के संशय शून्य निर्मल ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञान के कोई भीषण संसार रूपी समुद्र से पार नहीं पा सकता ॥५॥

(११६)

माधव असि तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहि, जब लगि करहु न दाया ॥१॥

हे माधव ! यह आप की माया ऐसी है कि पूर्णरूप से लग कर उपाय करने पर भी, जब तक आप दया नहीं करते तब तक, इससे छुटकारा नहीं होता ॥१॥

सुनिय गुनिय समुझिय, समझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव,-दारुन विपति सतावै ॥२॥

सुनता हूँ, विचारता हूँ, समझता हूँ और दूसरों को समझाता हूँ, परन्तु आपकी यह माया समझ में नहीं आती और इस वास्तविक अनुभूत ज्ञान के बिना अज्ञान से उत्पन्न संसार की भीपण आपदाएं दुःख देती रहती है ॥२॥

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौपै मन सो रस पावै ।
तो कत मृगजल रूप विषय कारन निसि बासर धावै ॥३॥

वेदोपदेश मीठा शीतल जल है, यदि मन उसका स्वाद पा जाय तो मृगजल रूपी विषयों के लिये क्यों दिन रात दौड़ेगा? ॥२॥

जेहि के भवन विमल चिन्तामनि, सो कत काँच बटोरे।
सपने परबस परइ जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥४॥

जिसके घर में स्वच्छ चिन्तामणि है वह काँच क्यों इक्कट्ठा करेगा? सपने में यदि कोई पराधीनता में पड़ा है और जाग कर देखता है तो कुछ नहीं पाता, तो वह उसका निवेदन जाकर किससे करेगा? ॥४॥

ज्ञान भगति साधन अनेक सब, सत्य झूठ कछु नाही।
तुलसिदास हरि कृपा मिटइ भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥५॥

ज्ञान, भक्ति आदि असंख्या साधन हैं वह सब सत्य कुछ झूठ नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मन में भरोसा है यह भ्रम भगवान की कृपा से मिटेगा ॥५॥

(११७)

हे हरि कवन दोष तोहि दीजे ।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति, सोइ निसि बासर कीजे ॥१॥

हे भगवन् ! आप को क्या दोष दिया जाए जब कि मैं रातोदिन वही उपाय करता हूँ जिससे मोक्ष सपने में भी दुर्लभ है ॥६॥

जानत अर्थ अनर्थ रूप तमकूप परव एहि लागे।
तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यौं, फिरत विषय अनुरागे ॥२॥

मैं अर्थ मित्र, पशु, भूमि, धन धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि के अनिष्ट का रूप जानता हूँ कि इसके सम्बन्ध से अन्धकूप में पड़ूंगा तब भी उसका त्याग नहीं करता और कुत्ते, बकरे और गदहे के समान विषयों में अनुरक्त होकर विषयों के पीछे भटकता हूँ ॥२॥

भूत द्रोह कृत मोह वस्य हित आपन मैं न बिचारा ।
मद मत्सर अभिमान ज्ञानरिपु, इन्ह मह रहनि अपारा ॥३॥

अज्ञान वश जीवों से द्रोह किया; किन्तु अपनी भलाई मैं नहीं सोचता, मद, मत्सरता और अभिमान जो ज्ञान के शत्रु हैं मैं सदा उन्ही में रहता हूँ ॥३॥

वेद पुरान सुनत समुभत रघुनाथ सकल जग
व्यापा वेधत नहिं श्रीखंड बेनु इव, सार हीन मन पापी ॥४॥

वेद पुराणों को सुनता हूँ और समझता हूँ कि रघुनाथजी सम्पूर्ण जगत में व्यापक हैं । पर पापी मन में यह बात वैसे ही नहीं घुसती जैसे पोपले बांस में चन्दन की बास नहीं घुलती ॥४॥

मैं अपराध-सिन्धु करुनाकर, जानत अन्तरजामी।
तुलसिदास भव ब्याल ग्रसित तव, सरन उरगरिपु-गामी ॥ ५ ॥

हे दयानिधान ! मैं पाप का समुद्र हूँ आप अन्तर्यामी सब जानते हैं। संसार रूपी सर्प से डसा हुआ तुलसीदास आप की शरण पाया है, हे सर्प के शत्रु गरुड़जी पर सवार होकर चलनेवाले प्रभु मेरी इस संसार रूपी सर्प से रक्षा कीजिए ॥५॥

(११८)

हे हरि कवन जतन सुख मानहु ।
ज्याँ गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम्ह जानहु ॥ १॥

हे भगवन् ! आप किस उपाय से आनंद मानेगे ? जैसे हाथी के दाँत वैसी मेरा करनी है, आप सब प्रकार जानते हैं अर्थात जैसे हाथी के दाँत खाने के और और दिखाने के कुछ औअर होते हैं वैसे ही मैं कहता कुछ हूँ और करता कुछ और हूँ ॥१॥

जो कछु कहिय करिय भव-सागर, तरिय बच्छ-पद जैसे।
रहनि प्रान विधि कहनि आन हरि,पद सुख पाइय कैसे ॥२॥

जो कुछ दूसरों से कहता हूँ यदि वैसा करूँ तो संसार रूपी समुद्र से बछड़े के खुर को लांघने की तरह तुरंत पार हो जाऊँ! परन्तु मेरा आचरण अन्य प्रकार का है और कहना अन्य प्रकार का, फिर हरिपद का आनंद मैं कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? ॥२॥

देखत चारु मयूर बरन सुभ, बोल सुधा इव सानी।
सबिष उरग आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥३॥

मोर देखने में सुन्दर अच्छे रङ्ग का लगता है और उसकी बोली अमृत के समान मधुरता से भरी है। किन्तु उसमे ऐसी निर्दयता भरी है की

वह विषधर साँपों का भोजन करना, कहाँ वह मीठी वाणी और कहाँ यह क्रूरता भरी करनी ! ॥ ३ ॥

अखिल जीव बत्सर निर्मत्सर, चरन-कमल अनुरागी।
"ते तव प्रिय रघुबीर धीरमति, अतिसय निज पर त्यागी ॥४॥

जिन्हें सम्पूर्ण जीव प्यारे हैं और मत्सरता रहित चरण-कमलों के प्रेमी है । हे रघुबीर! वह धीरबुद्धि आप को अत्यन्त प्रिय हैं जो अपने पराये के भेदभाव का त्याग करने वाले हैं ॥४॥

जद्यपि मम अवगुन अपार संसार जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निज गुन बिचारि, करुनानिधान करु दाया ॥५॥

हे रघुनाथजी । यद्यपि मेरे विशाल अपराध संसार में रहने के ही योग्य हैं तब भी आप तो दयानिधान है तनिक अपने गुणों को विचार करके तुलसीदास पर दया कीजिये ॥५॥

(११९)

हे हरि कवन जतन भ्रम भागै।
देखत सुनत विचारत यह मन, निज सुभाउ नहि त्यागै ॥ १॥

हे भगवन् ! मेरा यह भ्रम किस उपाय से दूर होगा जब कि देखते, सुनते और विचारते हुए भी यह मन अपना चंचल स्वभाव का त्याग नहीं करता है ॥१॥

भक्ति ज्ञान वैराग सकल साधन एहि लागि उपाई।
कोउ भल कहउ देउ कछु कोऊ, असि वासना न जाई ॥२॥

इस मन को शांत करने के लिये भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि सब साधनों के उपाय हैं। परन्तु इन सभी उपयों को करते हुए भी ऐसी कामना नहीं दूर होती कि कोई अच्छा कहे और कोई कुछ दे अर्थात मैं भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी का साधन करता हूँ परन्तु इच्छा यही रखता हूँ कि कोई मेरी बड़ाई कर दे अथवा कोई भक्त, ज्ञानी, वैराग्यवान समझ कर कुछ दान दे ॥२॥

जेहि निसि सकल जीव सूतहि तव-कृपापात्र जन जागै।
निज करनी बिपरीत देखि मोहि, समुझि महा भय लागै ॥३॥ .

जिस अज्ञान रात्रि में सब जीव सोते हैं और आप के कृपाभाजन भक्तजन जागते हैं। अपनी उलटी करनी देख कर और संसार के कष्टों को समझ कर मुझे बड़ा डर लगता है ॥३॥

जद्यपि भग्न मनोरथ विधिवस, सुख इच्छित दुख पावै ।
चित्रकार कर-हीन जथा स्वास्थ बिनु चित्र बनावै ॥४॥

यद्यपि मनोरथ पराजित होता है सुख की चाहना करने पर दैवयोग से वैसे ही दुःख प्राप्त होता है जैसे बिना हाथ का चित्रकार बिना प्रयोजन के तस्वीर बनाता है अर्थात जैसे बिना हाथ का चित्रकार लालच वश तस्वीर बनाने का प्रयास करे किन्तु चित्र विना हाथ के बना नहीं पाता केवल श्रमफल ही हाथ लगता है। उसी तरह बिना हरि रूपा जीव की कामना पूरी नहीं हो सकती ॥४॥

हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।
तुलसिदास इन्द्रिय-सम्भव दुख, हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥५॥

आप हृषिकेश हैं, यह नाम सुन कर मैं बलि जाता हूँ मेरे मन में बड़ा भरोसा है । हे प्रभो! इन्द्रियों से उत्पन्न तुलसीदास का दुःख आप ही के दूर करने से दूर होगा क्योंकि इन्द्रियों से पैदा हुए दुःख को इन्द्रियों का स्वामी ही दूर कर सकता है ॥ ५॥

(१२०)

हे हरि कस न हरह भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासइ जब लगि नहिँ कृपा तुम्हारी ॥ १ ॥

हे हरे ! मेरे भारी भ्रम को क्यों नहीं हरते हो? यद्यपि यह संसार मिथ्या है पर जब तक आप की कृपा नहीं होती तब तक यह सत्य ही भासित होता है ॥१॥

अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाँई।
बिनु बन्धन निज हठ सठ पर-बस, परेउ कीर की नाई ॥२॥

मैं यह जानते हुए भी कि यह धन-धान्य पुत्र, शरीर आदि यथार्थ में नहीं है, हे स्वामिन्! तब भी मैं इस नश्वर संसार से छुटकारा नहीं पा सकता। मैं तोते की तरह बिना किसी बन्धन के केवल अपनी मुर्खता से हठ करके पराधीनता में पड़ा हूँ ॥२॥

सपने व्याधि बिबिध वाधा जनु, मृत्यु उपस्थिति आई।
बैद अनेक उपाय करइ, जागे बिन पीर न जाई ॥३॥

जैसे सोते हुए सपने में रोग द्वारा नाना प्रकार की पीड़ा से मानों मृत्यु समीप आ गई हो और वैद्य चाहे बाहर से अनेक यत्न करे परन्तु बिना जागे वह पीड़ा नहीं जाती ॥३॥

स्रुति गुरु साधु सुमृति सम्मत यह,स्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे भजे बिनु रघुपति, बिपति सकइ को टारी ॥४॥

वेद, गुरु, संत जन और स्मृतियों का मत है कि यह खेल संसार का मनोरंजक व्यापार सदा दुःख उत्पन्न करनेवाला तथा असत है। बिना उसे त्यागे और बिना रघुनाथजी का भजन किये इस विपत्ति को कौन हटा सकता है ? ॥४॥

बहु उपाय संसार तरन कह, बिमल गिरा स्रुति गावै।

तुलसिदास मैं मोर गये बिनु, जिय सुख कबहुँ न पावै॥ ५ ॥

संसार-समुद्र से पार होने के लिये निर्मल वाणी से बेद बहुत सा उपाय कहता है, परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना मैं और मेरे अर्थात अपने और पराये का भेदभाव दूर हुए बिना जीव कभी सुख नहीं पाता ॥५॥

(१२१)

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संसय सन्देह न जाई॥१॥

हे हरे ! यह भ्रम की अधिकता है कि देखते, सुनते, समझते और कहते हुए संशय – संसार मिथ्या है, सन्देह – सुखदायी विषयों में दुःख विद्यमान है, नहीं जाता ॥१॥

जौं जग मृषा ताप त्रय अनुभव, होत कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाइ मृग-बारि सत्य घम तँ दुख होइ बिसेखे ॥२॥

यदि संसार असत्य है तो कहिये तीनों तापों का परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान किस कारण होता है ? मृगतृष्णा का जल सच्चा नहीं कहा जा सकता; परन्तु जब तक भ्रम बना हुआ है वह सत्य प्रतीत होता है इसी भ्रम के टूटने पर विशेष दुःख होता है ॥२॥

सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागे ।

कोटिहु नाव न पार पाव सो, जबलगि आपु न जागै ॥ ३॥

जैसे सुन्दर पलँग पर सोते हुए सपने में समुद्र में डूबने का भय उत्पन्न होने पर, करोड़ों नावों द्वारा भी पार नहीं जा सकता जब तक वह स्वप्न से जाग नहीं जाता अर्थात यह जीव अज्ञान निद्रा में अचेत हुआ इस मिथ्या संसार सागर में डूब रहा है तथा परमात्मा के तत्व ज्ञान के बिना सहस्त्रो साधनों द्वारा भी दुःख से मुक्त नहीं हो सकता ॥३॥

अनबिचार रमनीय सदा संसार भयङ्कर भारी ।
सम सन्तोष दया विवेक तँ, व्यवहारी सुखकारी ॥४॥

अज्ञानता के कारण ही यह भयानक संसार सदा रमणीय लगता है। इसमें केवल सौम्यता, सन्तोष, दया और ज्ञान से व्यवहार करनेवाले प्रसन्न रहते हैं ॥४॥

तुलसिदास सब विधि प्रपञ्च जग, जदपि झूठ सुति गावै।
रघुपति भगति सन्त सङ्गति बिनु, को भव त्रास नसावै ॥५॥

तुलसीदासजी कहते है यद्यपि वेद गाते हैं कि संसार के प्रपञ्च सब तरह से मिथ्या हैं तो भी रघुनाथजी की भक्ति और सन्तों की संगति के बिना संसार के भय का नाश कौन कर सकता है ? ॥५॥

(१२२)

मैं हरि साधन करइ न जानी ।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कवन दरमानी ॥ १ ॥

हे भगवन् । मैं अज्ञानता के कारण उचित उपाय करना नहीं जानता। जैसा रोग है वैसी दवा नहीं की, फिर इलाज करने वाले हकीम या वैद्य का क्या दोष? ॥१॥

सपने नृप कहँ घटइ बिप्र-बध, बिकल फिरइ अघ लागे।
बाजिमेध सतकोटि करइ नहि,-सुद्ध होइ बिनु जागे ॥२॥

यदि सपने में किसी राजा को ब्रह्महत्या लगे और वह इस महापाप के भय से व्याकुल होकर घूमता फिरे। तो वह करोड़ों अश्वमेध यज्ञ करने पर भी, बिना स्वप्न अवस्था से जागे पवित्र नहीं होता ॥२॥

सग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अबिचारे।
बहु प्रायध धरि बल अनेक करि, हारिय भरइ न मारे ॥३॥

यदि अज्ञानता से माला में बड़ा भयदायक साँप प्रत्यक्ष मालूम हो, उसको बहुत से हथियार लेकर और अनेक प्रकार के बल से मारने पर भी वह नहीं मरता ॥३॥

निज धम त रबिकर-सम्भव-सागर अति भय उपजावै।

अवगाहत बोहित नौका चढ़ि, कबहूँ पार न पावै ॥४॥

जैसे अपने भ्रम से सूर्य की किरणों से उत्पन्न समुद्र अत्यन्त भय उत्पन्न होने पर भी, जहाज और नाव पर चढ़ कर उसे पार नहीं कर सकता ॥४॥

तुलसिदास जग आप सहित जब लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कोटि उपाय करिय पचि, मरिय तरिय नहि भाई ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं जब तक संसार मैं, मेरा-तेरा के सहित संसार का निर्मूल नाश नहीं हो जाता तब तक-हे भाई ! करोड़ों उपाय पूर्णरूप से प्रयत्न करने मर भी जाओगे, तब भी इस संसार सागर से पार नहीं पाओगे ॥५॥

(१२३)

अस कछु समुझि परत रघुराया ।
बिनु तव कृपा दयाल दास हित, मोह न छूटइ माया ॥१॥

हे दयालु रघुनाथजी ! मुझे कुछ ऐसा लगता है कि बिना आप की कृपा के दासों की भलाई नहीं होती और न ही माया-मोह छूटता है ॥२॥

बाक्यज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावइ कोई ।
निसि गृह-मध्य दीप की बातन्हि, तम निबत्त नहिं होई ॥ २॥

जैसे शब्दज्ञान में अत्यन्त प्रवीण होने पर भी कोई संसार सागर के पार नहीं जा पाता। वैसे ही रात को घर में दीपक की बातों से अन्धकार नहीं दूर होता, अन्धकार तो केवल वास्तविक दीपक के जलाने ही से जा सकता है ॥२॥

जैसे कोउ एक दीन दुखित अति, असन बिना दुख पावै ।
चित्र कल्पतरु कामधेनु ग्रह, लिखे न बिपति नसावै ॥ ३॥

जैसे कोई एक अत्यन्त दीन दुःखित मनुष्य बिना भोजन दुःख पा रहा हो तो उसका वह दुःख कल्पवृक्ष और कामधेनु की तस्वीर घर में रखने से नष्ट नहीं होता ॥३॥

षटरस बहु प्रकार व्यञ्जन कोउ, दिन अरु रैन बखान।
बिनु बोले सन्तोष जनित सुख, खाइ सोई पै जाने ॥४॥

छह प्रकार के रस से बने अनेकों प्रकार के भोजनों का कोई दिन और रात बखान करे तब भी भूख नहीं जायेगी। बिना व्याख्यान किए जो भोजन करेगा वहीं तृप्ति से उत्पन्न आनन्द को प्राप्त कर सकता है ॥४॥

जबलगि नहिँ निज हादि प्रकाश अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसिदास तबलगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥५॥

जब तक अपने हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं होता और विषयों की आशा मन में बनी रहती है; तुलसीदासजी कहते हैं तब तक जीव संसार की योनियों में चक्कर लगाता रहता है; सपने में भी सुख प्राप्त नहीं करता ॥५॥

(१२४)

जौं निज मन परिहरइ बिकारा।
तौकत द्वैत्त जनित संसृति दुख, संसय सोक अपारा ॥१॥

यदि अपना मन विकारों को छोड़ दे तो दुर्भाव से उत्पन्न संसारी दुःख अपार सन्देह और शोक क्यों उत्पन्न हो ॥१॥

सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये, मन कीन्हे बरिभाई ।
त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि, हाटक-तृन की नाई ॥२॥

शत्रु, मित्र और मध्यस्थ इन तीनों की मन ने ही हठ से कल्पना कर रखी है। सर्प को शत्रु मान कर त्यागना, सुवण को मित्र मान कर ग्रहण करना और तृण को न शत्रु न ही मित्र समझ कर उदासीन भाव रखना मन की कल्पना मात्र है। अर्थात शत्रु को सर्प की भांति त्यागना देना चाहिए , मित्र को स्वर्ण की तरह ग्रहण कर लेना चाहिए और मध्यस्थ की तृण की तरह उपेक्षा कर देनी चाहिए ॥२॥

असन बसन पसु बस्तु विविध विधि, सब मनि महँ रह जैसे ।

सरग नरक चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ॥३॥

भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक प्रकार की सब वस्तु जैसे मणि में रहती है, उसी तरह, स्वर्ग, नर्क, जंगम, स्थावर और बहुत से लोक मन में बसते हैं अर्थात जैसे मणि के मूल्य से सारी वस्तुएं खरीदी जा सकती हैं, वैसे ही स्वर्ग, नरक, चराचर और विविध लोकों में जीव को पहुँचाने का मन ही कारण है ॥३॥

विटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ, कञ्चुक विनहिँ बनायें ।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ॥४॥

वृक्ष में कठपुतली और सूत में कपड़ा बिना बनाये नहीं प्रत्यक्ष होता, उसी तरह मन में अनेक शरीर लीन रहते हैं जो अवसर पाकर प्रकट होते हैं ॥४॥

रघुपति भगति बारिछालित चित, विनु प्रयासही सूझे।
तुलसिदास कह चिदविलास जग, बूझत बूझत बूझै ॥ ५॥

रघुनाथजी की भक्ति रूपी जल से स्नान किये हुए चित्त को बिना परिश्रम ही सत्यरूप परमात्मा का दर्शन होगा। तुलसीदासजी कहते हैं -जगत में चैतन्य स्वरूप ईश्वर की माया का ज्ञान समझते समझते ही समझ में आता है ॥५॥

(१२५)

मैं केहि कहउँ बिपति अति भारी ।
श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥१॥

हे धीर हितकारी श्रीरघुवीर ! मैं अपनी यह बड़ी भारी विपत्ति किस से कहूं ॥१॥

मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा।
अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिँ नहिँ बिनय निहोरा ॥२॥

हे प्रभो ! मेरा हृदय जो आप ला निवास स्थान है वहाँ बहुत से चोर आ कर बस गये हैं । मैं उन्हें निकालना चाहता हूँ परन्तु वह कठोर हृदय बड़ी प्रबलता करते हैं तथा मेरी विनती तथा प्रार्थना नहीं मानते ॥२॥

तम मोह लोभ अहँकारा । मद क्रोध बोध रिपु मारा ॥
अति कहिँ उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥३॥

हे नाथ! ज्ञान के शत्रु अज्ञान, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और कामदेव बड़ा उत्पात करते हैं, मुझे अनाथ जान कर कुचलते हैं ॥३॥

मैं एक अमित बटपारा । कोउ सुनइ न मोर पुकारा
भागेहु नहिं नाथ उबारा । रघुनायक करहु सँभारा॥४॥

मैं अकेला हूँ और ठग बहुत हैं कोई मेरी विनती नहीं सुनता । हे नाथ ! भागने से भी छुटकारा नहीं है, आप रघकुल के स्वामी हैं मेरी रक्षा कीजिये ॥

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिँ तसकर तव धामा ॥
चिन्ता यह मोहि अपारा । अपजस नहिँ होइ तुम्हारा ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं-हे रामचन्द्रजी ! सुनिये, चोर बाप के घर को लूटते हैं । मुझे यह अपार चिन्ता है कि आप की अपकीर्ति न हो ॥५॥

(१२६)

मन मेरे मानहि सिख मेरी ।
जाँ निज भगति चहइ हरि केरी ॥१॥

मेरे मन ! यदि तू भगवान की वास्तविक भक्ति चाहता है तो मेरा सीख मान ॥१॥

उर आनहि प्रभु कृत हित जेते। सेवहि ते जे अपनपौ चेते ॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सब समलेखहि विपति बिहाई ॥२॥

प्रभु ने जितने उपकार किये हैं उन्हें हृदय में याद कर, जिन्होने आत्मभाव समझ लिया वह उनकी सेवा करते हैं। दुःख, सुख,

अपमान और सम्मान सभी को बराबर समझने समझे तो तेरी विपत्ति दूर हो जायगी ॥२॥

सुन सठ काल-ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥
तुलसिदास विनु असि मति आये। मिलहि न राम कपट लय लाये ॥
३॥

अरे मर्ख ! सुन, यह शरीर काल से ग्रसा हुआ है उसके लिये तू किसी को दोष मत दे। तुलसीदासजी कहते हैं बिना ऐसी बुद्धि के केवल कपट समाधि लगाने से श्री रामचन्द्रजी नहीं मिलते ॥३॥

(१२७)

मैं जानी हरि पद-रति-नाही ।
सपनेहुँ नहिं विराग मन माही॥१॥

मैंने भगवान के चरणों में प्रीति करना नहीं जाना और मन में सपने में भी वैराग्य नहीं है ॥१॥

जे रघुबीर चरन अनुरागे । ते सब भोग रोग सम त्यागे।
काम भुजङ्ग डसत जब जाही। विषय नौब कट लगत न ताही ॥२॥

जे रघुनाथजी के चरणों के प्रेमी हैं वह समस्त विषयों को रोग के समान जान कर त्याग देते हैं । जब कामदेव रूपी साँप जिसको डसता है तब उसको विषय रूपी नीम कड़वी नहीं लगती ॥२॥

असमञ्जस अस हृदय बिचारी । बढ़त सोच नित नतन भारी।
जब कब राम-कृपा दुख जाई । तुलसिदास नहि आन उपाई ॥३॥

ऐसा सोच कर हृदय में असमंजस है की क्या करूँ और नित्य नइ भारी सोच से भार बढ़ता जा रहा है। तुलसीदास जी कहते हैं कि कोई दूसरा उपाय नहीं है जब कभी यह दुःख जायगा, केवल श्री राम की कृपा से ही जाएगा ॥३॥

(१२८)

सुमिरु सनेह सहित सीतापति। राम-चरन तजि नहिँनान गति॥१॥

हे मन ! स्नेह के सहित सीतानाथ का स्मरण कर, रामचन्द्रजी के चरणों को छोड़ कर जीव के लिये कोई दूसरा सहारा नहीं है ॥१॥

जप तप तीरथ जोग समाधीकलि मति बिकल न किछ
निरूपाधी॥२॥

जप, तप, तीर्थ, योग और समाधि कुछ भी निरुपद्रव नहीं है क्योंकि कलियुग के कारण जीवों के बुद्धि घबराई हुई है अर्थात स्थिर नहीं है ॥२॥

करतहु सुकृत न पाप सिराही। रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीँ॥३॥

पुण्य करते हुए भी पापों का नाश नहीं होता अपोतु पाप रक्तबीज राक्षस जैसे बढ़ते ही जाते हैं ॥३॥

हरनि एक अघ-असुर-जालिका । तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि पाप रूपी दैत्यों के दल की नाशक प्रभु रामचन्द्र जी की कृपारुपी अद्वितीय कालिका ही करेंगी ॥४॥

(१२९)

रसना तू राम राम,राम क्यों न रटत ।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त अघ अमङ्गल घटत ॥ १॥

अरी जिह्वा ! तू राम राम राम क्यों नहीं रटती ? जिसके स्मरण से सुख और पुण्य बढ़ते हैं तथा पाप और अमङ्गल घटते हैं ॥२॥

बिनु स्रम कलि-कलुष-जाल, कटु कराल कटत ।

दिनकर के उदय जथा, तिमिर-तोम फटत ॥२॥

राम नाम के स्मरण से बिना परिश्रम कलि का भीषण कटु पापजाल वैसे ही कट जाता है, जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार की राशि फटती है ॥२॥

जोग जाग जप विराग, तप सुतीर्थ अटत ।
बाँधबे को भव गयन्द, रेनु की रजु बटत ॥३॥

राम नाम को छोड़ कर तू वैसे ही योग, यज्ञ, जप, वैराग्य और तपस्या करता है और सुन्दर तीर्थों में घूमता है। जैसे संसार रूपी हाथी को बाँधने के लिये उपर्युक्त सुकर्म रूपी धूल की रस्सी को बंट रहा हो, अर्थात जैसे धूल की रस्सी से हाथी नहीं बंध सकता उसी तरह योग यज्ञादि साधनों से संसार नहीं छूट सकता, उसे छुड़ाने का एक मात्र उपाय केवल रामनाम का स्मरण है।॥३॥

परिहरि सुरमनि सुनाम, गुञ्जा लखि लटत ।
लालच लघु तेरो लखि, तुलसी तोहि हटत ॥४॥

चिन्तामणि रूपी सुन्दर नाम छोड़ कर तू विषय रुपी जंगली बीजों को देख कर लालच कर रहा है। तेरा यह तुच्छ लालच देख कर ही तुलसी तुझे मना कर रहा है ॥४

(१३०)

राम राम राम राम, राम राम जपत ।
मङ्गल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत ॥१॥

राम राम राम राम राम राम जपने से मंगल और आनन्द का उदय होता है तथा कलियुग के ताप और छल-छिद्र छिप जाते हैं ॥१॥

कहु के लहे फल रसाल, बबुर वीज वपत।
हारहि जनि जनम जाय, गालगल गपत ॥२॥

भला बता तो सही ! बबुल का बीज बोने से आज तक किसने आम का फल पाया है ? अत: व्यर्थ बातों में समय व्यतीत कर इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को नष्ट मतकर ॥२॥

काल करम गुन सुभाव सब के सिर तपत ।
राम नाम महिमा की, चरचा चले चपत ॥३॥

काल, कर्म, गुण और स्वभाव सबके के सिर पर तपते हैं; किन्तु राम नाम के महिमा की चर्चा चलने से यह सभी छिप जाते हैं, अत: केवल राम नाम का जप कर ॥३॥

साधन विनु सिद्धि सकल, विकल लोग लपत।
कलिजुग वर वनिज विपुल, नाम नगर खपत ॥४॥

सभी लोग बिना सिद्धि के साधनों की ओर सिद्धि के लिए व्याकुलता से लपकते हैं परन्तु विफल होकर दुखी होते हैं । कलियुग में यह बहुत बड़ा श्रेष्ठ व्यापार नाम रूपी नगर में खपता है अर्थात कलियुग में राम नाम के प्रताप से पाप समूह नष्ट होता है और समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥४॥

नाम सौं प्रतीति प्रीति, हृदय सुथिर थपत।
पावन किय रावन-रिपु, तुलसिहु से अपत ॥५॥

नाम में विश्वास और उसको प्रेम सहित अच्छी तरह हृदय में स्थापित करने से रावण के शत्रु श्री राम चन्द्रजी ने तुलसी के समान अधम को भी पवित्र किया कर दिया है ॥५॥

(१३१)

प्रेम राम चरन-कमल, जनम लाहु परम।
राम नाम लेत होत, सुफल सकल धरम ॥१॥

रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में प्रेम होना जन्म लेने का अत्युचम लाभ है । राम नाम का स्मरण करने से समस्त धर्म सफल होते हैं ॥१॥

जोग मख बिबेक बिरति, वेद विदित करम ।
करिवे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥२॥

योग, यज्ञ, ज्ञान और वैराग्य आदि शुभ-कर्म जो वेदों में प्रसिद्ध हैं वह सुनने में अत्यंत सुलभ और मधुर हैं तथा करने में अत्यंत कटु और कठोर हैं ॥२॥

तुलसी सुनि जानि बूझि, भूलहि जनि भरम।
प्रभु को तू होहि जाहि, सबही की सरम ॥३॥

इसलिए हे तुलसी! तू सुन कर और जान बूझ कर इस भ्रम में मत पड़ और उन्ही प्रभु रामचन्द्रजी का दास है जो सबकी लाज रखते हैं ॥३॥

(१३२)

प्रीतम की प्रीति रहित, जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझ कियत ॥१॥

प्रियतम श्री रामचन्द्रजी की प्रीति के बिना जीव व्यर्थ जीवन जीता है, जिस विषय सुख को सुख मान लेता है वह सुख कितना सा है ? अर्थात क्षणिक है और नरक में पहुँचानेवाला है ॥१॥

जहँ जहँ जेहि जोनि जनम, महि पताल वियत ।
तहँ तहूँ तू विषय सुखहि, चहत लहत नियत ॥२॥

धरती, पाताल और आकाश जहाँ जहाँ जिस योनि में तू पैदा हुआ, वहाँ वहाँ तू निश्चित विषयानन्द चाहता और पाता था ॥२॥

कत विमोह लटो फटो, गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु सुजस गाइ, क्यों न सुधा पियत ॥३॥

क्यों भारी अज्ञान वश फटे आकाश को सोने में निमग्न होकर मोहित होता है? तुलसीदासजी कहते हैं-प्रभु रामचन्द्रजी का सुन्दर यश गान करके अमृत पान क्यों नहीं करता ? ॥३॥

(१३३)

फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत, सत्य वचन कहत। सुनि मन ।
गुनि समुझि क्यों न, सुगम सुमग गहत ॥ १ ॥

हे जीव ! मैं बार बार तुझसे हितकारी, प्रिय, पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ। तू इन्हें सुन कर और मन में समझ बूझ कर सुन्दर और सुगम रास्ता क्यों नहीं पकड़ता ? ॥१॥

छोट बड़ो, खोट खरो, जग जो जहँ रहत ।
अपने अपने क भलो, कहहु जो न चहत ॥२॥

छोटे, बड़े, खोटे और खरे संसार में जो जहाँ रहते हैं, उनमे कहो-ऐसा कौन है जो अपनी और अपने सम्बन्धियों की भलाई नहीं चाहता हो ? ॥२॥

बिधि लगि लघु कीट अवधि, सुख सुखि दुख दहत ।

पसु लौं पसुपाल ईस, बाँधि छोरि नहत ॥३॥

ब्रह्मा से लेकर छोटे कोड़े पर्यन्त जीव मात्र सुख से सुखी और दुःख से सन्तप्त होते है। ईश्वर समस्त जीवों को पशु और पशु-पालक की तरह अज्ञान से बाँधता है, ज्ञान से खोलता है और कर्मों से जोतता है॥३॥

बिषय मुद निहार भार, सिर ज्यौं काँध बहत।
याँ ही जिय जानि मानि, सठ तू सासति सहत ॥४॥

विषय को आनन्द रूप देखना ऐसा है जैसे सिर का बोझा काँधे पर ढोया जाए । अरे मूर्ख ! तू इसी तरह समझ बूझ और मान फर क्यों दुर्दशा सहता है अर्थात जिन विषयों में सुख नहीं है उसमें तू इसी तरह सुख मानता है जैसे बोझा ढोनेवाला मनुष्य सिर का बोझा कन्धे पर लाड कर चले और उससे अपने को आराम माने; किन्तु जब तक बोझा शरीर पर लदा है तब तक आराम नहीं हो सकता ॥४॥

पायेउ केहि घृत विचारु, हरिन-बारि महत ।
तुलसी तकु ताहि सरन, जा तँ सब लहत ॥५॥

जरा विचार तो कर -मृगतृष्णा के जल को मथने से किसने घी पाया है ? तुलसी दासजी कहते हैं-तू उन्हीं प्रभु की शरण ग्रहण कर जिससे सब आनंद प्राप्त करते हैं ॥५॥

(१३४)

बार बार देव द्वार, परि पुकार करत।
आरति नति दीन कहे, सङ्कट प्रभु हरत ॥ १॥

हे देव ! मैं बार बार आप के दरवाजे पर पड़ कर पुकारता हूँ। हे प्रभो ! आप दुःख, नम्रता और दीन जनों के कहने पर समस्त दुःख और कष्ट हर लेते हैं ॥१॥

लोकपाल सोक बिकल, रावन डर डरत ।
का सुनि सकुचे कृपाल नर सरीर धरत ॥२॥

इन्द्र, कुबेर लोकपाल रावण के भय से शोकित हुए विकल थे। हे कृपालु ! कौन सी उनकी सराहनीय उपासना को सुन कर आप मनुष्य-देह धारण करने के संकोच में पड़ गये थे?॥२॥

कौसिक मुनि-तीय जनक, सोच अनल जरत ।
साधन केहि सीतल भये, सो न समुझि परत ॥ ३ ॥

विश्वामित्र, मुनिपत्नी – अहिल्या और राजा जनक शोक की आग में जलते थे। उन पर किस साधन से आप प्रसन्न हुए यह नहीं समझ आता ॥ ३ ॥

केवट खग सबरि सहज, चरन-कमल न रत ।
सनमुख तव होत नाथ, कुतरु सुफल फरत ॥४॥

गुह, पक्षी- जटायु, शबरी आदि चरण कमलों में स्वाभाविक अनुरक्त नहीं थे। हे नाथ ! आप के सामने आते ही कुवृक्ष में भी सुन्दर फल फलते हैं ॥४॥

बन्धु बैर कपि बिभीषन, गुरु गलानि गरत ।
सेवा केहि रीमि राम, कियेउ सरिस भरत ॥५॥

भाई के विरोध से सुग्रीव और विभीषण भारी ग्लानि में गलते थे। हे रामचन्द्रजी! किस सेवा से प्रसन्न होकर आपने उन्हें भरत जी के समान किया ॥५॥

सेवक भये पवन-पूत, साहेब अनुहरत ।
जा को लिय नाम राम, सबहि सुटर ढरत ॥६॥

पवनकुमार हनुमान जी आपकी सेवा करते करते आपके ही समान हो गए जिनका नाम लेने से रामचन्द्रजी सभी प्रकार से अच्छी तरह प्रसन्न होते हैं ॥६॥

जाने बिनु राम रीति, पचि पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गये, तुलसिहु से तरत ॥७॥

रामचन्द्रजी की रीति जाने बिना बार बार संसार में पूर्णरूप से लग कर मरता है। छल छोड़ कर आपकी शरण में आने से तुलसी के समान अधम भी संसार समुद्र से पार हो जाते है ॥७॥

(१३५)

राग सूहो-बिलावल

राम-सनेही साँ रौं न सनेह कियो ।
अंगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोहि दियो ॥१॥

रामचन्द्रजी के समान स्नेह करनेवाले स्वामी से तूने स्नेह नहीं किया, जिन्होंने, जो शरीर देवताओं को दुर्लभ है वह मनुष्य देह तुझ को दिया है ॥१॥

हरिगीतिका-छन्द

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम-पद पावत पुरारि मुरारि को ॥
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो सङ्गति भली ।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहति विष फल-फली ॥ १ ॥

श्रेष्ठ कुल में जन्म और सुन्दर शरीर दिया जो चारों फल- अर्थ, फल, धर्म और मोक्ष का कारण है । जिस को पा कर ज्ञानी जन शिवजी और विष्णु भगवान के उत्तम पद को पाते हैं। उस पर यह भरतखण्ड उत्तम भूमि और गङ्गाजी के समीप कैसा सुन्दर स्थान है। रे कायर !

तेरी कुबुद्धि से इन सब साधनों की कल्पलता भी विष का फल फलना चाहती है ? ॥१॥

अजहुँ समुझ चित देइ सुन परमारथ ।
है हित सो जगह जाहि तँ स्वारथ ॥२॥

अब भी मन लगा कर सुन और परमार्थ की बात को समझ। संसार में वही अच्छा होता है जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता है ॥२॥

हरिगीतिका-छन्द

स्वारथहि प्रिय स्वारथ सु कातें, कवन बेद बखानई ।
मन देखु खल अहि खेल परिहरि, सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपौ, तिय तनय सेवक सखा ।
प्रिय लगत जाके प्रेम तें, बिनु हेतु हित नहिँ त लखा ॥२॥

सभी को स्वार्थ ही है, परन्तु तू यह विचार कर कि सुन्दर स्वार्थ किससे है और वेद कौन से स्वार्थ का बखान करते हैं ? अरे दुष्ट! देख, विषय विहार रुपी साँप के साथ खेलना त्याग कर उस स्वामी को पहचान जिसके प्रेम के कारण ही पिता, माता, गुरु, स्वामी, स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र आदि सभी आत्मीय जन प्रिय लगते हैं उन अकारण हितैषी सर्व समर्थ प्रभु को तूने नहीं पहचाना ॥२॥

दूरि न सो हितू हेरु हियेही है ।

छलहि छाडि सुमिरे छोह कियेही है ॥३॥

वह हितकारी प्रभु, दूर नहीं, तेरे हृदय में ही विद्यमान है। छल छोड़ कर स्मरण करने से वह सदा कृपा दृष्टि बनाए रखता है ॥३॥

हरिगीतिका-छन्द

किय छोह छाया कमल कर की, भगत पर भज तेहि भजै।
जगदीस जीवन जीव को जो, साज सव सव को सजै ॥
पुनि हरिहि हरिता विधिहि विधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सो जानकीपति मधुर-मरति, मोद-मय मङ्गल-मई ॥३॥

वह अपने भक्तों पर स्नेह के साथ कर-कमलों की छाया किये रहते हैं और जो उनका चिंतन करता है, वह उसका भजन करते हैं। जगत के ईश्वर, जीव के जीवन जो सबका सब तरह साज सजते हैं। फिर जिन्होंने विष्णु को पालन की, ब्रह्मा को रचना की और शिव को संहार की शक्ति दी है, वह ही आनन्द रूप मंगल से परिपूर्णमधुर मूर्ति जानकीनाथ रामचन्द्रजी हैं ॥३॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि ।
ध्यान अगम सिवह भैंटेड केवट उठि॥४॥

वह अत्यन्त शीलवान, सीधे और बड़े स्वामी हैं। जिनका ध्यान शिवजी को भी दुर्गम है, उन्होंने उठ कर केवट को भी गले लगा लिया ॥४॥

हरिगीतिका-छन्द

भरि अङ्क भैंटेड सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सौं।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न, प्रेम प्रिय रघुवीर सौं॥
खग सवरि निसिचर भालु कपि किय, आपु से बन्दित बड़े।
ता पर तिन्हकि सेवा सुमिरि जिय, जात जनु सकुचनि गड़े ॥४॥

हृदय से लगते ही उनके नेत्रों में जल भर आया तथा प्रेमवश शरीर शिथिल हो गया। देवता सिद्ध, मुनि और कवि कहते हैं कि रघुनाथजी के समान किसी को प्रेम प्यारा नहीं है। जटायु, शवरी, राक्षस, भालू और वानरों को अपने से बढ़ कर वन्दनीय किया, इतने पर भी उनकी सेवा का मन में स्मरण करके वह मानों सङ्कोच में गड़ जाते हैं कि सेवा के अनुसार मैंने इनका कोई उपकार नहीं किया ॥४॥

स्वामी को सुभाउ कहे जब उर आनिहै ।
सोच सकल मिटिहै राम भलो मानिहैं ॥५॥

मैंने स्वामी का स्वभाव कहा जब तू उसे हृदय में स्थापित कर लेगा तो तू समस्त चिंताओं से मुक्त हो जायगा और रामचन्द्र जी तुझ पर प्रसन्न होगे ॥५॥

हरिगीतिका-छन्द

भल मानिह. रघुनाथ हाथ जो, जोरि माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन, जनम को फल पाइहै।
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुन,-ग्राम रामहि धरि हिये।
बिचरहि अवनि अवनीस चरन सरोज मन मधुकर किये ॥५॥

अरे यदि तू हाथ जोड़ कर मस्तक नवा देगा तब भी रघुनाथजी तुरंत प्रसन्न हो जायेंगे और तुलसीदासजी कहते हैं की तू उसी क्षण जीवन और जन्म के फल को प्राप्त कर लेगा । रामचन्द्रजी का नाम जप, प्रणाम कर, उनके गुण-समूहों का कीर्तन कर और उनके रूप को हृदय में विराजित कर, पृथ्वी के स्वामी के चरण-कमलों में अपने मन को भ्रमर बनाये हुए धरती पर आनन्द पूर्वक विहार कर ॥५॥

(१३६)

जिय जब तेँ हरि तेँ बिलगानेउ । तब तेँ देह गेह निज जानेउ ।
माया बस स्वरूप बिसरायेउ। तेहि भ्रम तेँ नाना दुख पायेउ ॥१॥

हे जीव ! तू जब से भगवान से अलग हुआ तब से शरीर ही को अपना घर समझ लिया है। माया के अधीन होकर तूने अपना चैतन्य रूप भुला दिया और इसी भ्रम के कारण तुझे नाना प्रकार के दुख मिले हैं ॥१॥

हरिगीतिका-छन्द

पायउजो दारुन दुसह दुख सुख लेस नहि सपनेहुँ मिल्यो।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठिहठि चल्यो ।
वह जोनि जन्म जरा विपति मतिमन्द हरि जानेउ नहीं।
श्रीराम विन विनाम मूढ़ विचारि लखु पायेउ कहीं ॥१॥

तुझे अत्यंत कठिन भीषण दुःख प्राप्त हुए और लेशमात्र सपने में भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। तू बार बार हठ करके उसी रास्ते में चला जिसमें अनेक प्रकार का संसारी शूल और शोक हुआ। अनेकों योनियों में बार बार जन्म लेकर भटका, वृद्ध हुआ, आपदाओं को सहन किया और मर गया, परन्तु हे नीचबुद्धि ! इतने पर भी तूने श्री हरि को को नहीं जाना। अरे मूर्ख ! विचार करके देख, श्रीरामचन्द्रजी के बिना तुझे कहाँ कहीं विश्राम मिला ? ॥२॥

आनदसिन्धु मध्य तव वासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृग बम बारिसत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयउ सुख मानी ॥२॥

हे जीव ! आनन्द-सागर के बीच तेरा निवास है, तब उसे भुला कर जाने क्यों तू प्यास से मरता है। मृगतृष्णा के जल को भ्रम से जी में सत्य मान कर तू वहां सुख से डूबा हुआ है ॥२॥

हरिगीतिका-छन्द

तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव-रूप तव खल, भूलि अब प्रायउ तहाँ ॥
निर्मल निरञ्जन निर्विकार उदार सुख त परिहरयो।
निःकाज राज विहाइ नृप इव, स्वप्न कारागृह परयो ॥२॥

जहाँ तीनों काल में जल नहीं है वहाँ तू प्रसन्न होकर स्नान और पान करता है । अपना स्वाभाविक आत्म तत्व भूल कर अब दुष्ट ! यहाँ मिथ्याजल के समुद्र में आ पड़ा है। तूने अपना शुद्ध, अविनाशी और निर्दोष श्रेष्ठ सुख स्वरुप त्याग दिया और उसी प्रकार व्यर्थ ही दुःख भोग रहा है जैसे कोई राजा स्वप्न में बिना प्रयोजन राज्य छोड़ कर जेलखाने में कैद हो जाता है और व्यर्थ ही दुखी होता है ॥२॥

तै निज कर्म-डोरि दिढ़ कीन्ही । अपने करन्हि गाँठि गहि दीन्ही ॥
तात परबस परेउ अभागे । ता फल गरम-बास दुख आगे ॥३॥

तूने अपने ही अज्ञान से कर्मों की मजबूत रस्सी बनाई और उसमें अपने ही हाथों से अविद्या की पक्की गाँठ भी लगा दी। अरे अभागे! इसी से तू माया के वश में पराधीन पड़ा है और इसी का फल आगे गर्भ में रहने का दुःख होगा ॥३॥

हरिगीतिका-छन्द

आगे अनेक समूह संसृति, उदर-गत जानेउ सोऊ।
सिर हेठ ऊपर चरन सङ्कट, बात नहिँ पूछइ कोऊ ॥

सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि, कर्दमारत सोवई ।
कोमल सरीर गंभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवई ॥३॥

आगे अनेक प्रकार के संसारी दुःखों की चपेट में आकर भी तूने उसे नहीं जाना । गर्भ में नीचे सिर ऊपर पाँच किये सङ्कट सहा जहाँ कोई इस भयानक संकट के समय तुझे पूछने वाला नहीं था । रक्त, विष्ठा, मूत्र, मल, कीड़े और कीचड़ में घिरा हुआ आँख मूंदे अचेत रहता था। कोमल शरीर पर गहरी पीड़ा से सिर पीट पीट कर रोता था ॥३॥

निज कर्म-जाल जहँ घेरो। श्रीहरि सङ्ग तजेउ नहिँ तेरो ॥
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो । परम कृपाल ज्ञान तोहि दीन्हो ॥४॥

जहाँ तू अपने कर्म बन्धनों से घिरा था वहां भी श्रीहरि ने तेरा साथ नहीं छोड़ा। गर्भ में प्रभु ने अनेकों प्रकार से तेरा पालन पोषण किया और अत्यन्त दयालु होकर तुझे ज्ञान अर्थात पूर्व जन्म के किये कर्मों की समझ भी दिया ॥४॥

<u>हरिगीतिका-छन्द</u>

तोहि दियेउ ज्ञान विवेक जन्म अनेक की तब सुधि भई ।
तेहि ईस की हौं सरन जा की, विषम-माया गुन-मई ॥
जेहि किये जीव निकाय बस रस,हीन दिन दिन अति नई ।
सो करहु बेगि सँभार श्रीपति, बिपति महँ जेहि मति दई ॥४॥

जब उन्होंने ज्ञान दिया तब उस विवेक से अनेक जन्म की सुध हुई। तू विनती करने लगा कि मैं उस ईश्वर की शरण में हूँ जिनकी माया विषम और गुण-मयी है । जिसने असंख्या जीवों को अपने वश में करके दुःख का रूप बना दिया है और दिनोदिन अत्यन्त नवीन होती जाती है। वह लक्ष्मीकान्त मेरी शीघ्र रक्षा करें जिन्होंने इस विपत्ति में मुझे बुद्धि दी है ॥४॥

पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानी।
अब जग जाइ भजउँ चकपानी॥
एसेहि करि बिचार चुप साधी ।
प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी ॥५॥

फिर पूर्व जन्मो में भजन न करने के कारण तू अपने मन में अनेक प्रकार से ग्लानि मान कर प्रार्थना करने लगा कि इस बार जगत में जाकर चक्रपाणि भगवान विष्णु का ही भजन करूँगा। ऐसा ही विचार करके जैसे ही तू चुप हुआ, अरे अपराधी ! तब प्रभु ने गर्भ से बाहर निकलने के लिये वायु को आज्ञा दी ।

हरीगीतिका-छन्द

प्रेरेउ जो प्रसव प्रचंड मारुत, कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ज्ञान ध्यान विराग अनुभव, जातना-पावक दह्यो।
अति खेद ब्याकुल अल्प बल छन,-एक बोल न आवई।

तव तीब्र कष्ट न जान कोउ सब,-लोग हरषित गावई ॥५॥

जन्म के समय जब प्रचण्ड वायु ने तुझे बाहर ठेलना प्रारम्भ किया तब तूने अनेकों कष्ट सहे। वह ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अनुभव सब कुछ अग्नि में जल गया अर्थात कष्ट के कारण तू सब कुछ भूल गया। अन्यन्त खेद से व्याकुल हो गया निर्बलता के कारण एक क्षण भी बोल नहीं सका, तेरे तीक्ष्ण कष्ट को किसी ने नहीं समझा अपितु सभी लोग प्रसन्न होकर गाने लगे ॥५॥

बाल-दसा जेते दुख पाये । अति अनीस नहिँ जाहिँ गनाये ॥
छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी । बेदन नहिं जानइ महतारी ॥६॥

बाल्यावस्था में जितने दुःख पाये वह अत्यन्त अनिष्ट गिनाये नहीं जा सकते। भूख और रोगों की बहुत बड़ी बाधाओं ने तुझे घेर लिया परन्तु उस पीड़ा को माता नहीं जान सकी ॥६॥

<u>हरिगीतिका-छन्द</u>

जननी न जानइ पीर सो केहि भाँति सिसु रोदन करै।
सो करइ बिविध उपाय जा तँ, अधिक तव छाती जरै॥
कौमार सैसव अति किशोर अपार अघ को कहि सके ।
ब्यतिरेक तोहि निर्दय महा खल, श्रान कहु को सहि सकै ॥६॥

उस पीड़ा को माता नहीं समझती कि बालक किस कारण रोता है, वह अनेक उपाय करती है जिससे अधिकांश तेरी छाती जलती है। लड़कपन, कुमार और किशोरावस्था के अत्यन्त अपार पापों को कौन कह सकता है ? रे निर्दय महादुष्ट ! कह तो सही, तेरे सिवा इस दुःख को दूसरा कौन सह सकता है ? ॥६॥

जोबन जुबति सङ्ग रँग रात्यो। तब तू महा-मोह मद मात्यो ।
ता तँ तजी धरम मरजादा । बिसरे ते सब प्रथम बिषादा ॥७॥

युवावस्था में नवयौवना बाला के साथ प्रेम रस में रंग गया तब तू महामोह रूपी मदिरा के नशे में मतवाला हुआ, इससे धर्म की मर्यादा त्याग दी और पूर्व जन्म में किए हुए दुःख सब भूल गया ॥७॥

<u>हरिगीतिका-छन्द</u>

बिसरे बिषाद निकाय सङ्कट, समुझि नहिँ फाटत हियो ।
फिरि गर्भगत आवर्त संसृति, चक्र जेहि सोइ सोइ कियो॥
कृमि भस्म बिट परिनाम तनु तेहि, लागि जग बैरी भयो ।
पर दार परधन द्रोह पर संसार बाढ़इ नित नयो ॥७॥

पिछले कष्ट समूहों का वह विशाल संकट भूल गया, उसको समझ कर तेरा हृदय नहीं फट जाता। फिर जिससे गर्भ में जाकर संसार-समुद्र के चक्कर में घूमना पड़े वही कर्म तूने बराबर किए। जिस शरीर का परिणाम मरने पर कीड़ा, राख या विष्ठा होगा उसी के लिये

जगत का शत्रु बन बैठा! पराई स्त्री और पराए धन के लिये दूसरों से तेरी नित्य नया द्रोह तथा छलबाजी बढ़ती गई ॥७॥

देखतही आई बिरधाई। जो तें सपनेहुँ नाहिँ वुलाई ॥
ता के गुन कछु कहेल जाहीँ। सो अब प्रगट देखु तनु माहाँ ॥८॥

देखते ही देखते वृद्धावस्था आ पहुंची जिसको तूने सपने में भी नहीं बुलाया था। जिसके गुण कुछ कहे नहीं जा सकते, वह अब अपने शरीर में प्रत्यक्ष देख्र ले ॥८॥

<u>हरिगीतिका-छन्द</u>

सो प्रगट तनु जर्जर जरा बस, ब्याधि सूल सतावई।
सिर कम्प इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई ॥
गृहपालहू तँ अति निरादर, खान पान न पावई ।
ऐसिहु दसा न बिराग तह, तृष्ना-तरङ्ग बढ़ावई ॥८॥

शरीर जर्जर हो गया वृद्धावस्था के अधीन हुए शरीर को रोगों की पीड़ा सताने लगी। सिर काँपने लगा, इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो गई और वचन किसी को अच्छा नहीं लगता। घर के स्वामी से भी बड़ा अनादर सहता है और अन्न जल समय पर नहीं पाता । ऐसी दुर्दशा में भी तुझे वैराग्य नहीं होता अपितु तू तृष्णा की लहरे बढ़ाता है ॥८॥

कहि को सका महा भव तेरे । जनम एक के कछुक कहे रे ॥

खानि चारि सन्तत अवगाही। अजहुँ न करु बिचार मन माहीं ॥९॥

तेरे महा संसार बारम्बार जन्म मरण को कौन कह सकता है? मैंने तो थोड़ा सा वृत्तान्त एक जन्म का कहा है। तुझे चारों खानों अण्डज, पिण्डज, उद्भिद, जरायुज में निरन्तर घूमना पड़ता है परन्तु अब भी तू मन में विचार नहीं करता ? ॥९॥

<u>हरिगीतिका-छन्द</u>

अजहूँ बिचार बिकार तजि भजु, राम जन-सुख-दायकं ॥
भव-सिन्धु दुस्तर जलरथं भजु, चक्र-धर सुर-नायकं ॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार माया तारनं ।
कैवल्यपति जगपति रमापति, प्रानपति गति-कारनं ॥९॥

अब भी विचार कर अवगुणों को छोड़ दासों के सुख देनेवाले रामचन्द्रजी का भजन कर। जो संसार रूपी दुर्गम समुद्र के लिये जहाज रूप, देवताओं के स्वामी और हाथ में सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले हैं, उनकी सेवा कर । वह अकारण दया करनेवाले, उदार और अपार माया से उद्धार देनेवाले हैं । वह मोक्ष के स्वामी, जगत के मालिक, लक्ष्मीकान्त, प्राणेश्वर और मोक्ष के कारण है ॥९॥

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी । सो त्रय ताप सोक भय हारी ॥
बिनु सतसङ्ग भगति नहिं होई। ते तब मिलहिँ द्रवहिँ जब सोई॥१०॥

श्री रघुनाथजी की भक्ति करने में सुलभ और सुख उत्पन्न करनेवाली है, वह संसार के तीनों ताप, शोक और भय हरनेवाली है। किन्तु वह भक्ति सत्संग के बिना नहीं होती, वह सन्त तब मिलते हैं जब वह रघुनाथजी दया करते हैं ॥१०॥

हरिगीतिका-छन्द

जब द्रवहि दीनदयाल राघव साधु सङ्गति पाइये ।
जेहि दरस परस समागमादिक, पाप रासि नसाइये ॥
जिन्ह के मिले दुख सुख समान अमानतादिक गुन भये ।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध तँ सहजहिँ गये ॥१०॥

जब दीनदयाल रघुनाथजी दया करते हैं तब सज्जन, संतों की संगति मिलती है, जिसके दर्शन, स्पर्श और समागम आदि से पाप की राशि नष्ट होती है। जिनके मिलने से दुःख सुख बराबर और अमानिता आदि दोष गुण में परिवर्त्तित हो जाते हैं। मद, मोह, लोभ, खेद और क्रोध शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होने से सहज ही दूर हो जाते हैं ॥१०॥

सेवत साधु द्वैत भय भागै । श्रीरघुबीर-चरन लय लागै ॥
देह जनित विकार सब त्याग।तब फिरि निज सरूप अनुरागै॥११॥

साधुओं की सेवा करने से भेद बुद्धि का डर चला जाता है और श्रीरघुनाथजी के चरणों में ध्यान लग जाता है। शरीर से उत्पन्न समस्त

विकारों का त्याग हो जाता है तब जीव फिर अपने रूप आत्मज्ञान का प्रेमी बनता है॥११॥

हरिगीतिका-छन्द

अनुराग सो निज रूप जो जग तँ विलच्छन देखिये।
सन्तोष सम सीतल सदा दम, देहवन्त न लेखिये ॥
निर्मल निरामय एकरस तेहि, हरष सोक न ब्यापई।
त्रयलोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥११॥

वह आत्मज्ञान का प्रेम जो संसार से विलक्षण दिखाई देता है, जिसको प्राप्त करने पर उसे शरीरधारी नहीं समझना चाहिये वह सन्तोष, समता, शीतलता और सदा इन्द्रियों को वश में रखने वाला होता है। जिसकी ऐसी दशा हुई है, वह विशुद्ध संसार रोग रहित, जन्म मृत्यु से रहित हो जाता है और उसको हर्ष शोक नहीं व्यापता और वह सदा तीनों लोकों में पवित्र माना जाता है ॥११॥

जौँ तेहि पन्थ चलइ मन लाई। तो हरि काहे न होहिं सहाई॥
जो भारग खुति साधु दिखा। लेहि मग चलत सबइ सुख पावें ॥१२॥

यदि उस मार्ग पर मन लगा कर चले तो भगवान उसकी सहायता क्यों नहीं करेंगे। जो मार्ग वेद और संत जन दिखाते हैं, उस रास्ते में चलने से सभी सुख प्राप्त करते हैं ॥१२॥

हरिगीतिका-छन्द

पावइ सदा सुख हरि कृपा संसार आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीँ दुख द्वैत दरसन, बात कोटिक को कहै ॥
द्विज देव गुरु हरि सन्त बिनु, संसार पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रास हरन रमापति गाइये ॥ १२॥

जो संसार की आशा त्याग देगा वह भगवान की कृपा से सदा सुख पायेगा । उसे सपने में भी दुःख और दुर्भाव का दर्शन नहीं होगा । यों तो कहने को करोड़ों बातें हैं परन्तु कौन उन्हें कहता फिरे ? ब्राह्मण, देवता, गुरू, विष्णु भगवान और सन्तों के अनुग्रह बिना संसार से पार नहीं मिलता। यह समझ कर तुलसीदास त्रास हरनेवाले लक्ष्मीनाथ का गुण गान करता है ॥१२॥

(१३७)

राग-बिलावल

जो पै कृपा रघुपति कृपाल की, बैर और के कहा सरै।
होइन बाँको बार भगत को, जौं कोउ कोटि उपाउ करै ॥ १॥

यदि कृपालु रघुनाथजी की कृपा है तो दूसरे के बैर करने से क्या हो सकता है ? चाहे कोई करोड़ों उपाय करे तो भो भक्तों का बाल भी वाँका नहीं कर सकता ॥१॥

तकद नीच जो मीच साधु की, सो पाँवर तेहि मीच मरै।
वेद विदित प्रहलाद-कथा सुनि, को न भगति-पथ पाउ धरै ॥२॥

जो नीच साधु की मृत्यु विचरता है वह अधम स्वयं उसी मौत से मरेगा। वेद में प्रसिद्ध प्रहाद की कथा प्रसिद्ध को सुन कर भक्ति-मार्ग में कौन नहीं पाँव धरेगा? ॥२॥

गज उधारि हरि थपेउ बिभीषन, ध्रुव अविचल कबहूँ न टरै।
अम्बरीष को साप सुरति करि, अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥३॥

श्री हरि ने हाथी का उद्धार करके विभीषण को राज सिंहासन पर बैठाया और ध्रव को अचल कर दिया जो अपने स्थान से कभी नहीं हटते। राजा अम्बरीप को दुर्वासा ऋषि के शाप की याद करके बड़े बड़े मुनि अब भी ग्लानि से सकुचा जाते हैं ॥३॥

सो न कहा जो कियेउ सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय-जस, पांडवनै बरिभाइ बरै ॥४॥

जो कृष्णभगवान ने कहा उसे दुर्योधन न नहीं किया, वह बुद्धिहीन अपने अभिमान ही में जलता रहा। प्रभु की कृपा से विजय यश का सौभाग्य प्रबलता से पांडवों के ही गले लगा ॥४॥

जो जो कूप खनैगो पर को, सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न सन्त-द्रोही कहूँ, सुरतरु सो विष फरनि फरै ॥५॥

जो दूसरे के लिये कुआं खोदंगा वह दुष्ट फिर कर उसी कुएं में गिरेगा। सन्तद्रोही को सपने में भी सुख नहीं मिलता, उस के लिये तो कल्पवृक्ष भी विष के जहरीले फलों को फलता है ॥५॥

है काके दुइ सीस ईस के, जो हठि जन की सीम चरै।
तुलसिदास रघुबीर बाहुबल, सदा अभय काहू न डरै ॥६॥

दो सर किसके हैं जो हठ करके ईश्वर-भक्तो की मर्यादा को नष्ट करेगा ? रघुनाथजी के बाहुबल से तुलसीदास किसी से नहीं डरता सदा निर्भय रहता है ॥६॥

(१३८)

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक विवस नाम टेरे ॥ १॥

हे रघुनाथ जी ! हे स्वामी ! क्या आप कबी अपने उस करकमलों को मेरे माथे पर रखेंगे, जिससे आपने परतंत्रतावश एक बार नाम लेकर पुकारने से आर्त भक्तों को निर्भय कर दिया ॥३॥

जेहि कर-कमल कठोर सम्भु-धनु, भजि जनक संसय मँट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बन्धु ज्याँ, परम प्रीति केवट भँट्यो ॥ २॥

जिन कर-कमलों से कठिन शिव धनुप को तोड़ कर राजा जनक के सन्देह को मिटाया और जिन कर-कमलों से केवट को उठा कर अत्यन्त प्रीति से भाई की तरह मिले ॥२॥

जेहि कर-कमल कृपाल गीध कहँ, पिंड देइ निज धाम दियो ।
जेहि कर वालि बिदारिदास हित, कपि-कुल-पति सुग्रीव कियो ॥३॥

हे कृपानिधान ! जिन कर-कमलों से आपने जटायु गिद्ध को पिण्ड दान देकर अपना परम धाम वैकुंठ वास प्रदान दिया और जिस हाथ से सुग्रीव दास की भलाई के लिये बालि को मार कर उसको वानर कुल का राजा बना दिया ॥३॥

आयउ सरन सभीत विभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हाँ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभय-दान देवन्ह दीन्हाँ॥४॥

भयभीत विभीषण को शरणागत जान कर जिन कर कमलों से उसे राजतिलक किया और जिन हाथों से धनुष-बाण लेकर दैत्यों का नाश कर के देवताओं को अभयदान दिया था॥४॥

सीतल सुखद छाँह जेहि कर की, मेटति पाप ताप माया।
निसि वासर तेहि कर-सरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

जिन हाथों की छाया शीतल सुखदाई है और पाप, सन्ताप और माया को नष्ट करती है उन्हीं कर-कमलों की छाँह रातोदिन तुलसीदास चाहता है ॥५॥

(१६९)

दीनदयाल दुरित दारिद दुख, दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुबार पुकारत भारत, सब की सब सुख-हानि भई है. ॥१॥

हे दीनदयाल देव ! दुनिया दुःसह पाप, दरिद्रता, दुःख और त्रिविध तापों- दैविक, दैहिक और भौतिक से जली जा रही है। सब के सब सुखों की हानि हो गई है अर्थात् काई सुखी नहीं है, इसी कारण मैं दीनता वश आप के दरवाजे पर पुकार रहा हूँ ॥१॥

प्रभु के वचन बेद-बुध-सम्मत, मम-मूरति महिदेव-मई है।
तिन्ह की मति रिस राग मोहमद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥

वेद तथा विद्वानों का मत और आप का कथन है कि ब्राह्मणों का शरीर साक्षात मेरा ही स्वरुप है। ब्राह्मणों की बुद्धि को क्रोध, ईर्ष्या, अज्ञान, घमण्ड और लालची लोभ ने निगल लिया है अर्थात् वह अपने स्वाभाविक गुणों को भूल कर अज्ञानी, कामी, क्रोधी, घमंडी और लोभी हो गए हैं ॥२॥

राज-समाज कुसाज कोटि कटु, कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमित पति, हेतुबाद हठि हेरि हई है ॥३॥

इसी प्रकार राजमण्डली अर्थात क्षत्रिय जाति में करोड़ों अनिष्ट, नवीन कुचाल और पापों की रचना होती है। नीति, विश्वास, प्रीति, प्रतिष्ठा और मर्यादा को खोज कर नास्तिकता ने नाश कर डाला है ॥३॥

आस्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप-रत, अपने अपने रङ्ग रई है ॥४॥

संसार आश्रम और वर्ण धर्म रहित हो गये हैं और लोक तथा वेदों की मर्यादा का लोप हो गया है। प्रजा धर्मत्यागी, पाप और पाखण्ड में तत्पर होकर यथेच्छाचारी हो गई है ॥४॥

सान्ति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल विलसत हुलसति खलई है ॥५॥

सहनशीलता और सच्चाई की अच्छी रीति घट गई है, कुचाल छलबाजी और बनावट अर्थात ऊपरी तडक भड़क बढ़ा हुआ है। साधु दुखी हो रहे हैं और साधुता सोच में पड़ी है, दुष्ट प्रसन्न है और दुष्टता खुश हो रही है ॥५॥

परमारथ स्वास्थ साधन भये, अफल सकल नहि सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर, विवस विकल जामतिन वई है ॥६॥

धार्मिक कृत्य -जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थाटन आदि स्वार्थ-साधन हो गए हैं, उन सभी में फलहीन वाञ्छित-लाभ और बरकत नहीं है। धरती रूपी कामधेनु कलिकाल रूपी कसाई के अधीन होकर विकल है, उसमें जो बोया जाता है जमता ही नहीं है तब स्वयं फल देने की तो कोई बात ही नहीं है ॥६॥

कलि करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत विनु टहल टई है।
ता पर दाँत पीसि कर माँजत, को जानइ चित कहा ठई है ॥७॥

कलियुग की करतूत कहाँ तक वर्णन करें, वह बिना कौड़ी की सेवा करता फिरता है उस पर दाँत पीस कर हाथ मलता है, न जाने इसने मन में क्या ठान रक्खा है ॥७॥

त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यों ज्यों सील वस ढील दई है।
सरुख बरजि तरजिये तरजनी, कुम्हिलइहै कुम्हड़े की जई है ॥८॥

हे प्रभु ! आप जैसे जैसे दंड देने में ढिलाई करते है वैसे वैसे यह नीच सिर पर चढ़ता जाता है। जरा क्रोध करके इसे डांट दीजिए। आपके तर्जनी उँगली दिखाने मात्र से वह कुम्हड़े की वतिया की तरह मुरझा जायगा ॥८॥

दीजे दाद देखि नातो वलि, मही मोद मङ्गल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कह, राम अवधि चितवनिचितई है ॥९॥

मैं आप की बलि जाता हूँ, स्वामी सेवक के नाते को देख विचार कर मुझे न्याय दीजिये। कलियुग ने इस धरती को आनन्द-मंगल से खाली कर दिया है। लोग प्रेम देख कर मुझे पूरा भाग्यवान कहते हैं कि रामचन्द्रजी ने अपनी कृपादृष्टि से इसको देखा है ॥९॥

विनती सुनि सानन्द हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है।
राम राज भयो काज सगुन सुभ, राजाराम जगत- बिजई है ॥१०॥

मेरी ऐसी विनती सुनकर श्री राम ने प्रसन्नता पूर्वक हँस कर देखा, और दया रूपी जल से धरती को भिगो दिया। राम-राज्य में कल्याणकारी कार्य का शुभ शकुन हुआ क्योंकि रामचन्द्रजी विश्व-विजयी सार्वभौम राजा हैं ॥१०॥

समरथ बड़ो सुजान सुसाहेब, सुकृत सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाव सराहत सादर, अनायास सासति बितई है ॥११॥

बड़े सामर्थ्यवान सुजान श्रेष्ठ स्वामी ने पुण्य की सेना को हराते हुए जिता दिया है। सज्जन जन आदर के साथ आपके स्वभाव की प्रशंसाकरते हैं कि विना परिश्रम ही आपने दुर्दशा का अन्त कर किया है ॥११॥

उथपे थपन उजारि बसावन, गई बहोर विरद सदई है।
तुलसी प्रभु भारत आरति-हर,अभय-बाँह केहि केहि नदई है ॥१२॥

स्थान भ्रष्ट को स्थान देना, उजड़े हुए को बसाना और खोई हुई वस्तु लौटाने का जिनका सदा से यश है। तुलसीदासजी कहते हैं-प्रभु रामचन्द्रजी दुखीजनों के दुःख को हर लेते हैं, उन्होंने किसको किसको निर्भयता का बल अर्थात अभय बांह नहीं दिया है? अर्थात् जो शरण में गया उसको निर्भय कर दिया ॥१२॥

(१४०)

ते नर नरक-रूप जीवत जग , भव-भञ्जन पद बिमुख अभागी।
निसि-बासर रुचि पाप असुचि मन, खल मति मलिन निगम पथ त्यागी ॥१॥

वह मनुष्य अभागे और पाप' के रूप होकर संसार में जीते हैं जो भव भय नाशक श्री राम चन्द्रजी के चरणों से प्रतिकूल है । रात दिन पाप की इच्छा से उन दुष्टों के मन अपवित्र, बुद्धि मैली हुई वेदोक्त मार्ग को त्याग दिया हैं ॥१॥

नहिं सतसङ्ग भजन नहि हरि को, स्त्रवन न राम-कथा अनुरागी।
सुत बित दार भवन ममता निसि, सोवत अति न कबहुँ मति जागी ॥२॥

न तो वह सत्संग ही करते हैं, न भगवान का भजन करते हैं और न ही उनके कानों से रामचन्द्रजी की कथा के प्रेमी हुए। उनकी बुद्धि तो सदा पुत्र, धन, स्त्री और घर के ममत्व रूपी रात्रि में सो रही है कभी जागती ही नहीं नहीं अर्थात् सचेत नहीं होती ॥२॥

तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि, सठ हठि पियत विषय-विष माँगी।
सूकर स्वान सुगाल सरिस जन,जनमत जगत जननि दुखलागी॥३॥

तुलसीदासजी कहते हैं-भगवान का नाम रूपी अमृत छोड़ कर वह मूर्ख हठपूर्वक विषय रूपी विष माँग कर पीते हैं। सुअर, कुत्ता और गीदड़ के समान वह मनुष्य संसार में केवल माता को दुःख देने के लिये जन्म लेते हैं ॥३॥

(१४१)

रामचन्द्र रघुनायक तुम्ह सौँ, हौं विनती केहि भाँति करौं ।
अघ अनेक अवलोकि आपने,अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥१॥

हे रघुकुल के स्वामी रामचन्द्रजी ? किस तरह आप से विनती करूं। अपने अपार अघों अर्थात पापों को देख कर और आप का नाम अनघ अर्थात पाप-रहित विचार कर डरता हूँ ॥१॥

पर-दुख दुखी सुखी पर-सुख तँ, सन्त-सील नहिँ हृदय धरौं ।
देखि प्रान की बिपति परम सुख, सुनि सम्पति विनु आगिजरौं ॥२॥

पराये के दुःख से दुखी और दूसरे के सुख से सुखी होना सन्तों के शुद्ध आचरण को हृदय में नहीं धारण करता हूँ। इसके विपरीत

दूसरों की विपत्ति देख कर बहुत प्रसन्न होता हूँ और ऐश्वर्य को सुन कर बिना आग के ही जलता हूँ ॥२॥

भगति बिराग ज्ञान साधन कहि, बहु बिधि उहँकत लोग फिरौं ।
सिव सरबस सुखधाम नाम तव, बँचि नरक-प्रद उदर भरीं ॥३॥ ।

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के साधनों को अनेक प्रकार से उपदेश देता हुआ मैं भांति भांति से धोखा देता फिरता हूँ। शिवजी के सर्वस्व सुख के धाम आपके नाम को बेच कर नरक में ले जाने वाले पापी पेट को भरता हूँ ॥३॥

जानतहूँ निज पाप जलधि जिय, जल सीकर सम सुनत लरौं ।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि,गुन-गिरिसमरज तैं निदरौं ॥४॥

अपने पापों को मन में समुद्रवत जानते हुए भी औरों द्वारा अपना पाप पानी के लघुविन्दु के समान सुनते हुए भी लड़ता हूँ। धूलि के बराबर दूसरे के दोष को सुमेरू के समान बनाता हूँ और पर्वत के सदृश उनके गुणों को रेणु के समान जान कर अनादर करता हूँ ॥४॥

नाना वेष बनाइ दिवस निसि, पर-वित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
एकहु पल न कबहुँ अलोल चित, हित देइ पद-सरोज सुमिरौं ॥५॥

भांति भांति के वेश बनाकर दिन रात जिस किसी भेष से पराये धन को हरता हूँ। एक क्षण भी कभी स्थिर चित्त से प्रीति-पूर्वक आपके चरण-कमलों का स्मरण नहीं करता हूँ ॥५॥

जौं प्राचरन विचारहु मेरो, कलप कोटि लगि अवटि मरौं ।
तुलसिदास प्रभु कृपा-विलोकनि, गों-पद ज्यौं भव-सिन्धु तरौं ॥६॥

यदि आप मेरे आचरण पर विचार करेंगे करोड़ों कल्प पर्यन्त संसार रूपी कड़ाह में घूम घूम कर मरूँगा। तुलसीदासजी कहते हैं-हे स्वामिन् ! आप की एक दया भरी चितवन से संसार रूपी समुद्र को गाय के खुर की तरह पार कर जाऊँगा ॥६॥

(१४२)

सकुचत हाँ अति राम कृपा-निधि, क्यौं करि बिनय सुनावौं ।
सकल धरम बिपरीत करत केहि,-भाँति नाथ मन भावौं ॥१॥

हे कृपानिधान रामचन्द्रजी ! मैं बहुत लज्जित हूँ, किस प्रकार मैं आप से विनती विनती करूँ। मैं जो भी करता हूँ सब कुछ धर्म के विरुद्ध होता है, फिर नाथ ! आपको मैं किस प्रकार से अच्छा लगूंगा ॥१॥

जानतहूँ हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं ।
अञ्जन केस सिखा जुबती तहँ, लोचन-सलभ पठावौं ॥२॥

मैं यह जानता हूँ कि सम्पूर्ण जड़ चेतन श्रीहरि का ही रूप है, परन्तु यह जानते हुए भी मैं हठ पूर्वक इस ओर नहीं देखता। मैं तो अपने नेत्र स्वरुप पतंगों को अग्नि को ज्वाला रूपी युवती के अञ्जन और केशों की ओर जलने के लिए भेजता हूँ ॥२॥

स्रवनन्हि को फल कथा तिहारी, यह समुझउँ समझावौँ ।
तिन्ह स्रवनन्हि पर दोष निरन्तर, सुनि सुनि भरि भरि तावौँ ॥३॥

कानों की सार्थकता आप की कथा सुनने में है, मैं समझता हूँ और दूसरों को समझाता भी हूँ। परन्तु उन्हीं कानों से मैं लगातार दूसरों के दोषों को सुन सुन कर हृदय में भर कर संतप्त होता हूँ ॥३॥

जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौँ ।
तेहि मुख पर अपबाद भेक ज्यौँ, रटि रटि जनम नसावौँ ॥४॥

जिस जिह्वा से आप के गुण गाकर मैं बिना परिश्रम के ही सुख पाता हूँ, उसी मुख से मेंढक की तरह पराये की निन्दा रट रट कर अपना जन्म नष्ट कर रहा हूँ॥४॥

करहु हृदय अति बिमल बसहिँ हरि, कहि कहि सबहि सिखावौँ ।
हौँ निज उर अभिमान मोह मद, खल-मंडली बसावौँ ॥५॥

मैं सबको सीख और उपदेश देता हूँ कि हृदय को निर्मल बनाओ जिसमें भगवान निवास कर सकें। परन्तु मैं अपने हृदय में अभिमान' मोह और मद आदि दुष्टों की मण्डली बसाता हूँ ॥५॥

जो तनु धरि हरि-पद साहिँ जन, सो बिनु काज गँवावौँ ।
हाटक घट भरि धरेउ सुधा गृह, तजि नभ-कूप खनावौँ॥६॥

जिस दुर्लभ शरीर को प्राप्त कर मनुष्य भगवान के चरणों की उपासना करते हैं उसको व्यर्थ ही खो रहा हूँ। घर में सोने के घड़े में भरा अमृत रक्खा है उसे त्याग कर आकाश में कुआँ खुदवाता हूँ ॥६॥

मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौँ।
पर प्रेरित इरषा बस कबहुँक, किय कछु सुभ सो जनावौँ ॥७॥

मन, कम और वचन से लग कर जो पाप किये हैं, उन्हें मैं यत्न करके छिपाता हूँ। दूसरों के कहने से ईर्ष्या वश कभी जो भी कुछ अच्छा काम किया उसे प्रचारित करता फिरता हूँ ॥७॥

विप्र-द्रोह जनु बाँट परेउ हठि, सब सौँ बैर बढ़ावौँ ।
ताहू पर निज मति विलास सव, सन्तन्ह माँझ गनावौँ ॥८॥

वैसे तो सबके साथ विरोध ही बढ़ाता हूँ, किन्तु ब्राह्मण का विरोध तो और मानो हिस्से में आ पड़ा है। इतने पर भी मैं अपनी बुद्धि का

विलास (श्रानन्द) सब सन्तों में गिनाता हूँ अर्थात उनमे ज्ञानी संत बनने की कोशिश करता हूँ ॥८॥

निगम सेष सारद निहोरि जौं, अपने दोष कहावौं ।
तो न सिराहिं कल्प सत लगि प्रभु, कहा एक मुख गावौं ॥ ९ ॥

वेद, शेषनाग और सरस्वती से यदि बिनती करके अपने अवगुणों को कहवाऊँ तो हे प्रभो! सैकड़ों कल्प पर्यन्त भी समाप्त नहीं होगा, फिर एक मुँह से उनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ ॥९॥

जी करनी आपनी विचारउँ, तौ कि सरन हौं आवौं ।
मृदुल सुभाउ सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं॥१०॥

यदि मैं अपनी करनी का विचार करूँ तो क्या मैं आप की शरण में ना सकता हूँ ? परन्तु श्री रघुनाथजी के कोमल स्वभाव और शील बल का मन में विचार करता रहता हूँ कि वह पतित पावन है, तुझ जैसे अधम का भी उद्धार करेंगे॥ १० ॥

तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि, सपनेहुँ तुम्हहिँ रिझावौं ।
नाथ कृपा भव-सिन्धु धेनु-पद, सम सो जानि सिरावौं ॥११॥

हे प्रभो। तुलसीदास में वह गुण नहीं है जिससे सपने में भी आप को प्रसन्न कर सके। किन्तु हे स्वामी ! आपकी कृपा के भरोसे संसार

रूपी समुद्र को गैया के खुर के समान समझ कर प्रसन्न होता हूँ ॥११॥

(१४३)

सुनहु राम रघुबीर गोसाँई, मन अनीति रत मेरो।
चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसि दिन फिरत अनेरो ॥ १॥

हे रघुवीर! हे स्वामी श्री रामचन्द्रजी ! सुनिये, मेरा मन दुराचर में लगा है । आप के चरण कमलो को भुला कर रातोदिन व्यर्थ ही घूमा करता हूँ ॥१॥

मानत नहीं निगम अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूलेउ सूल करम कोल्हुन्ह तिल,ज्यौं बहु बारन्हि पेरो. ॥२॥

वह वेद की आज्ञा नहीं मानता और न ही किसी से डरता है । कर्म रूपी कोल्हू में तिल की तरह बहुत बार पेरा गया; किन्तु अब उस पीड़ा को भूल गया है ॥२॥

जहँ सतसङ्ग कथा माधव की, सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ मोह मद काम क्रोध रत, इन्ह साँ नेह घनेरो ॥३॥

जहाँ सत्सङ्ग और भगवान की कथा होती है वहाँ सपने में भूल कर भी नहीं जाता, परन्तु जो लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध में तत्पर रहते है इन्हीं से गहरा स्नेह रखता है ॥३॥

पर-गुन सुनत दाह पर-दूषन, सुनत हरष बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥४॥

दूसरों के गुण सुनते ही जलता है और दूसरों के दोषों को सुन कर अत्यंत ही प्रसन्न होता है। अपने आप तो पापों का नगर बसाता है और दूसरों की खेड़े अर्थात छोटे गाँव को भी नहीं सह सकता ॥४॥

साधन फल स्रुति सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो।
सो पर कर काकिनी लागि सठ, बेंचि होत हठि चेरो ॥५॥

आप का नाम शुभ-साधनों का फल, वेद-तत्व और संसार रूपी नदी के पार जाने के लिये नौका रूप है । उसको यह मूर्ख मन कोडी के लिये दूसरों के हाथ बेंच कर जबरदस्ती उनका गुलाम बनता है ॥५॥

कबहुँ कहूँ सङ्गति सुभाव तँ, जाउँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोध सङ्ग कुमनोरथ, देत कठिन भटभेरो ॥६॥

कभी ताड़ी सत्संग के प्रभाव से अच्छे मार्ग के समीप जाता हूँ, तो बुरे मनोरथ रूपी साथी क्रोध करके तुरंत सांसारिक कामनाओं रुपी गड्ढे में धक्का देकर ढकेलते हैं ॥६॥

इक हाँ दीन मलीन हीन-मति, बिपति-जाल अति घेरो ।
ता पर सहि न जाइ करुनानिधि, मन को दुसह दरेरो ॥७॥

हे दयानिधे ! एक तो मैं वैसे ही दुःखी, अपवित्र, बुद्धि हीन और आपदाओं के समूह से घिरा हूँ। उस पर मन का असहनीय धक्का सहन नही होता ॥७॥

हारि परेउँ करि जतन विविध विधि, ता तँ कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटइ जब, करहु हृदय महँ डेरो॥८॥

अनेक प्रकार का यत्न करके मैं हार गया हूँ, इससे सबेरे आयु रहने तक ही कहता हूँ कि तुलसीदास का यह भय तब मिटेगा जब आप हृदय में निवास करेंगे ॥८॥

(१४४)

सो धौं को जो नाम लाज तँ, नहिँ राखेउ रघुबीर ।
कारुनीक बिनु कारनही हरि, हरी सकल भव-भीर ॥१॥

न जाने वह कौन है जिसको रक्षा नाम के लाज से रघुनाथजी ने नहीं की। हे हरि आप दया के रूप हैं, आप बिना कारण ही सब के जन्म मरण रुपी सांसारिक भय को हरने वाले हैं ॥१॥

बेद बिदित जग बिदित अजामिल, विप्रबन्धु अघ-धाम ।
घोर जमालय जात निवारेउ, सुत हित सुमिरत नाम ॥२॥

वेद में विख्यात जगत्प्रसिद्ध पाप के घर अधम ब्राह्मण अजामिल ने पुत्र के निमित्त नारायण नाम स्मरण किया, तब आपने उसको भीषण यमपुरी जाने से बचा लिया ॥२॥

पसु पाँवर अभिमान-सिन्धु गज, ग्रसेउ आइ जब ग्राह ।
सुमिरत सकृत सपदि आयउ प्रभु, हरेउ दुसह उर दाह ॥३॥

नीच पशु, अभिमान के समुद्र हाथी को जब मगर ने आकर पकड़ लिया। तब उसके केवल एक बार स्मरण करने से, प्रभु ने उसके हृदय के असहनीय सन्ताप को आकर दूर कर किया ॥२॥

ब्याध निषाद गिद्ध गनिकादिक, अगनित अवगुन-मूल ।
नाम श्रोट तँ राम सवन्हि की, दूर करी सब सूल ॥४॥

व्याध, मल्लाह, गिद्ध और गणिका आदि अपार अवगुणों के जड़ों की समस्त पीड़ा को नाम के ओट से रामचन्द्रजी ने दूर कर दिया था। ॥४॥

केहि आचरन घाटि हौँ तिन्ह तें, रघुकुल-भूषन-भूप ।
सीदत तुलसिदास निसि बासर, परेड भीम तम-कूप ॥ ५ ॥

हे राजाओं के भूषण रघुनाथजी ! मैं उन पापियों से किस आचरण में कम हूँ। तुलसी दास भयानक अन्धकूप में पड़ा रात दिन दुःखी हो रहा है ॥५॥

(१४५)

<u>राग-बिलावल</u>

कृपासिन्धु जन दीन दुआरे, दाद न पावत काहे ।
जब जहँ तुम्हहिँ पुकारत भारत, तब तिन्ह के दुख दाहे ॥१॥

हे दयासिन्धु ! आप के द्वार पर यह दीन सहायता क्यों नहीं पाता है । जब जहाँ दीनों ने आप की पुकार की, तब आपने वहीँ पर उनके दुःखों का नाश किया ॥१॥

गज प्रहलाद पंडुसुत कपि सब के रिपु-सङ्कट मँट्यो ।
प्रनत बन्धु-भय विकल विभीषन, उठि सो भरत ज्याँ भँट्यो॥२॥

गजराज, प्रह्लाद, राजा पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर श्रादि पाँचों भाई) और सुग्रीय सब के शत्रु जनित संकट को आपने मिटाया। भाई के डर से व्याकुल शरणागत विभीषण से उठ कर भरतजी के समान गले से लगा लिया ॥२॥

मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम एक, उर आपने वसावाँ ।
भजन बिवेक विराग लोग भल, करम करम करि ल्यावाँ ॥३॥

मैं आप का नाम लेकर अपने हृदयस्थल में एक गाँव बसाना चाहता हूँ। उस में भजन, ज्ञान और वैराग्य रूपी भले लोगों को बसाने की इच्छा से धीरे धीरे ले आता हूँ ॥३॥

सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक, करहिँ जोर बरिआई ।
तिन्हहिँ उजारि नारि अरि धन पुर, राखहिँ राम गोसाई॥४॥

यह सुन कर क्रोध से भरे काम, मद लोभ आदि दुष्ट जबर्दस्ती करते हैं, वह ज्ञानादि को उजाड़ कर हे स्वामिन् रामचन्द्रजी ! स्त्री, शत्रु और धन आदि नीचों को लाकर गाँव में बसाते हैं ॥ ४ ॥

सम सेवा छल दान दंड हाँ, रचि उपाय पचि हारयाँ ।
बिनु कारन को कलह बड़ो दुख, प्रभु साँ प्रगटि पुकारयाँ ॥५॥

साम, दाम , दंड, भेद और सेवा टहल में पूर्णरूप से लग कर, अनेकों उपाय करके मैं हार गया हूँ। हे प्रभु इस बिना प्रयोजन के झगड़े से मैं अत्यंत दुखी हो रहा हूँ और इसी कारण आज मैंने आपके सामने खुलकर दहत्य के लिए निवेदन कर दिया है ॥५॥

सुर स्वारथी अनीस अलायक, निठुर दया चित नाही।
जाउँ कहाँ को विपति निवारक, भव-तारक जग माहीं ॥६॥

आपके अतिरिक्त अन्य देवता मतलबी, असमर्थ, निकम्मे और कठोर हृदय हैं, उनके चित्त में दया नहीं है । कहाँ जाऊं, जगत में आपके

सिवा ऐसा कौन है जो विपत्ति से छुड़ा कर संसार रूपी समुद्र से पार कराता हो?॥६॥

तुलसी जदपि पोच तर तुम्हरो, और न काहू केरो।
दीजै भगति-बाँह बैरक बलि, सुबस बसइ यह खेरो ॥७॥

तुलसी यद्यपि अधम है तो भी दूसरे का नहीं; वह आप का ही है। मैं बलिहारी जाता हूँ, आप कृपा पूर्वक अपनी भक्ति रूपी बाहँ का बल दे दीजिये जिससे यह छोटा सा गाँव स्वाधीन होकर बस सके ॥७॥

(१४६)

हाँ सब बिधि राम रावरो, चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहिबी होत है, ख्याल कालकलि केरो ॥१॥

हे रामचन्द्रजी ? मैं सब प्रकार से आप का दास होना चाहता हूँ। परन्तु कलिकाल की सम्मति से यहाँ तो जगह जगह साहबी हो रही है। भाव यह है की मैं आपका दास बनना चाहता हूँ परन्तु मन और इन्द्रियां सभी मेरे साहब बने बैठे हैं ॥१॥

काल करम इन्द्रिय-विषय, गाहक गन घेरो।
हाँ न कबूलत बाँधि के, मोल करत करेरो ॥२॥

काल, कर्म और इन्द्रियों के विषय रूपी बहुत से ग्राहकों ने मुझे घेर रक्खा है। मैं इनकी गुलामी नहीं करता हूँ इससे मुझे वह बाँध कर कड़ा मोल करते हैं अर्थात् जैसे तैसे लालच दिखा कर अपने वश में करना चाहते हैं ॥२॥

बन्दि छोर तव नाम है, विरदैत बड़ेरो ।
मैं कहें तब छल प्रीति के, माँगेड उर डेरो॥३॥

बंधुआ को छुड़ाने अर्थात बन्धन मुक्त करने में आपके नाम का बड़ा यश है। मैंने कहा कि मैं रामचन्द्रजी का गुलाम हूँ, तब कपट का प्रेम कर के हृदय में ठहरने को स्थान मांगने लगे ॥३॥

नाम ओट अवलगि बचेउँ, मलजुग जग जेरो।
अब गरीब न जमोगिये, पाइबो न हेरो॥४॥

पाप के युग कलियुग ने जगत को हैरान कर रक्खा है, अब तक तो मैं आपने नाम की आड़ में बचता आया हूँ। अब इस गरीव का पालन कीजिए वर्ना खोजने से भी इस दास का पता नहीं चलेगा अर्थात् यदि आप कह देंगे कि तुलसी मेरा दास नहीं है तो मुझे मिथ्यावादी अनाथ समझ कर यह कलियुग न जाने कौन सी दुर्दशा करेगा ॥४॥

जेहि कौतुक बक स्वान को, प्रभु न्याव निबेरो।
तेहि कौतुक कहिये कृपाल, तुलसी है मेरो ॥५॥

हे कृपालु स्वामी ! आपने जिस लीला से पक्षी और कुत्ते का फैसला किया था, उसी लीला से इस कलियुग से कह दीजिये तुलसी मेरा दास है, आप के ऐसा कह देने पर कलियुग निराश होकर मेरा पीछा सहज में ही छोड़ देगा। ॥ ५ ॥

(१४७)

कृपासिन्धु ता तँ रहउँ, निसि दिन मन मारे ।
महाराज लाज आपुही, निज जाँघ उघारे ॥ १ ॥

हे कृपासिन्धु महाराज ? मैं रातोदिन इसलिये मन मारे रहता हूँ कि अपनी जाँघ उघारने से अपने ही को लाज लगती है ॥१॥

मिले रहइँ मारेउ चहइँ, कामादि सँघाती।
मो बिनु रहइँ न मेरिया, जार, छल छाती ॥२॥

काम, क्रोध, लोभ आदि साथी मिले भी रहते हैं और मारना भी चाहते है। यह ऐसे दुष्ट हैं जो मेरे बिना रह भी नहीं सकते और कपट करके मेरी ही छाती जलाते हैं ॥२॥

बसत हिये हित जानि मैं, सब की रुचि पाली।
कियेउ कथिक को दंड हौं जड़-कर्म कुचाली ॥३॥

हृदय में बसनेवाले अपने हितकारी समझ कर मैंने इन सब की रुचि पालन की; किन्तु ये कुमार्गी मूर्खता का काम करनेवाले मुझे जादूगर का डण्डा बना रक्खा है।॥ ३ ॥

देखी सनी न आज लौं, अपनायत ऐसी।
करहिं सबइ सिर मेरेही, फिरि परइ अनैसी ॥४॥

ऐसी आत्मीयता आज तक देखी सुनी नहीं गई कि कुकार्य करें वह सभी और उसका अनिष्ट फल घूम कर मेरे ही सिर आ पड़े अर्थात् कुचाल करें काम आदि और उसका बुरा फल मुझे भोगना पड़े ॥४॥

बड़े अलेखी लखि पर, परिहरे न जाहीँ।
असमञ्जस मैं मगन हाँ, लीजै गहि बाँही ॥५॥

यह सब बड़े अत्याचारी दिखाई पड़ते हैं, त्यागने पर भी नहीं जाते। मैं अत्यंत असमंजस में डूबा हूँ, अब मेरी बाँह पकड़ लीजिये ॥५॥

बारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जी को ।
अनायास मिटि जायगो, सङ्कट तुलसी को ॥६॥

मैं आपकी बलैया लेता हूँ ? एक बार खेल से दास के हृदय की ओर देखिये तो बिना परिश्रम तुलसी का संकट सहज ही दूर हो जाएगा ॥६॥

(१४८)

कहउँ कवन मुँह लाइ के, रघुवीर गोसाँई।
सकुचत समुझत आपनी, सब साँइ-दोहाई ॥१॥

हे स्वामिन् रघुनाथजी ? कौन मुँह लेकर आप से कहूँ। स्वामी जी दुहाई है, जब मैं अपनी करनी पर विचार करता हूँ तब स्वामिद्रोहता समझ कर लज्जित हो जाता हूँ ॥ १ ॥

सेवत बस सुमिरत सखा, सरनागत साँ हौं ।
गुन गन सीतानाथ के, चित करत न हाँ हौं ॥२॥

सेवा करने से वश में हो जाते हैं, स्मरण करने से मित्र बन जाते हैं और शरणागतों के अनुकूल रहते हैं। ऐसे सीतानाथ के गुणों की ओर मैं चित्त नहीं करता हूँ ॥२॥

कृपासिन्धु बन्धु दीन के, भारत हितकारी।
प्रनतपाल विरदावली, सुनि जानि बिसारी ॥३॥

कृपासिन्धु दीनों के सहायक वन्धु दुःखी जनों के हितकारी और शरणागतो के रक्षक रघुनाथजी का यश सुन कर तथा जान कर भी मैंने भुला दिया है ॥३॥

सेइ न धेइ न सुमिरि के, पद-प्रीति सुधारी ।
पाइ सुसाहेब राम साँ, भरि पेट बिगारी ॥४॥

मैंने न तो सेवा, न ध्यान किया और न स्मरण करके चरणों में प्रीति ही ठीक ठीक की । रामचन्द्रजी के समान श्रेष्ठ स्वामी पा कर मैंने आप के साथ पेट भर कर बिगाड़ ही किया ॥ ४॥

नाथ गरीब-नेवाज हैं, मैं गही न गरीबी ।
तुलसी प्रभु निज ओर तँ, बनि परइ सो कीबी ॥ ५ ॥

हे नाथ ! आप गरीबों पर कृपा करने वाले हैं पर मैंने गरीबी धारण नहीं की। अब हे प्रभो ! अपनी ओर से जो आप उचित समझें वह तुलसी के लिये कीजिये ॥ ५ ॥

(१४९)

कहाँ जाउँ कासाँ कहउँ, और ठौर न मेरे।
जनम गँवायउँ तेरेही, द्वार किङ्कर तेरे ॥ १॥

कहाँ जाऊँ और किस से कहूँ, मेरे लिये दूसरी जगह नहीं है। आपके सेवक ने आप ही के दरवाजे पर दास बनकर जन्म बिताया है ॥१॥

मैं तो विगारी नाथ सो, स्वारथ के लीन्हे ।
तोहि कृपानिधि क्याँ बनइ, मेरी सी कीन्हे ॥२॥

हे नाथ ! मैंने जो बिगाड़ा वह केवल अपने मतलब के लिये, किन्तु हे कृपानिधे! यदि आप भी मेरी करनी की और देख कर फल दोगे तो कैसे काम बनेगा ? ॥२॥

दिन-दुरदिन दिन-दुरदसा, दिन-दुख दिन-दूषन ।
जौ लौं तू न बिलोकिहै, रघुवंस-बिभूषन ॥३॥

हे रघुकुल के भूषण ! जब तक श्राप दयादृष्टि से न निहारेंगे तब तक नित्य बुरे दिन, नित्य बुरी दशा, नित्य दुःख और नित्य ही दोष लगे रहेंगे ॥३॥

दई पीठि विनु दीठि मैं, तू बिस्व-विलोचन।
तो सौं तुही न दूसरो, नत-सोच-विमोचन ॥४॥

मैं आपको पीठ दिखाए फिरता हूँ , आपसे विमुख रहता हूँ क्योंकि मैं तो दृष्टिहीन हूँ, परन्तु आप तो संसार के भर को देखनेवाले हैं । आप मुझसे विमुख कैसे होंगे? दीन दुखियों शोक को छुड़ानेवाले आप के समान तो केवल आप ही हैं, दूसरा नहीं है ॥४॥

पराधीन देव दीन हौं, स्वाधीन गोसाँई।
बोलनहारे सौं करइ, बलि बिनय कि झाँई ॥५॥

हे देव ! मैं जीव माया के वश पराधीन हूँ और आप स्वतन्त्र स्वर्ग के स्वामी परमेश्वर हैं । मैं बलिहारी जाता हूँ! क्या जड़ परछाई चेतन

बोलनेवाले प्राणी से विनती कर सकती है? अर्थात मैं जड़ जीव हूँ और आप चैतन्य घन परमात्मा है, फिर मैं किस तरह विनती करके आप को प्रसन्न कर सकता हूँ। ॥५॥

आपु देखि मोहि देखिये, जन जानिय साँचो ।
बड़ी प्रोट राम नाम की, जेहि लई सो बाँचो ॥६॥

अत: आप पहले अपनी ओर देख कर फिर मेरी ओर मुझे देखिये और सच्चा सेवक समझिये । हे रामचन्द्रजी। आप के नाम की ओट बड़ी भारी हैं जिस किसी ने राम नाम की ओट ली वह जीवन मरण के चक्र से बच गया ॥६॥

रहनि रीति राम रावरी, नित हिय हुलसी है।
ज्यौं भावइ त्यौं करु कृपा, तेरो तुलसी है ॥७॥

हे रामचन्द्रजी ! आप के स्वभाव और व्यवहार नित्य ही मेरे हृदय को आनन्दित करते हैं। आपको जैसे अच्छा लगे वैसे कृपा कीजिये, तुलसी आप का (दास) है ॥७॥

(१५०)

रामभद्र मोहि आपनो, सोंच है अरु नाहौं।
जीव सकल सन्ताप के-भाजन जग माहीं ॥ १ ॥

हे कल्याण मूर्ति रामचन्द्रजी ! मुझे अपनी सोच है भी और नहीं भी है क्योंकि इस जगत के समस्त जीव दुःख संताप के पात्र हैं ॥१॥

नातो बड़े समर्थ साँ, एक ओर किधौं हूँ।
तोकौं मो से अति घने, मो कौं एकइ तूं ॥२॥

परन्तु क्या आप जैसे बड़े समर्थ स्वामी से सेवक का नाता केवल मेरी और से ही सम्बन्ध है, अथवा एक ओर मैं अधम दास हूँ। मेरे समान आप के समीप बहुतेरे हैं; किन्तु मेरे लिये तो केवल आप ही श्रेष्ठ स्वामी हैं ॥२॥

बड़ि गलानि हिय हानि है, सरबज्ञ सुसाँई ।
कूर कुसेवक कहत है, सेवक की नाँई ॥३॥

मेरे मन में इसका बड़ा खेद और ग्लानी हैं कि सर्वज्ञ श्रेष्ठ स्वामी से कुमार्गी अधम सेवक अच्छे सेवकों की भांति बातें कहता है ॥३॥

भलो पोच राम को कहइँ, मोहि सब नर-नारी।
बिगरे सेवक स्वान साँ, साहेव सिर गारी ॥४॥

मुझे सब स्त्री -पुरुष भला या बुरा जैसा भी मैं हूँ रामचन्द्रजी का दास ही कहते हैं। सेवक और कुत्ते के अपराध से मालिक के सिर ही गाली पड़ती है ॥४॥

असमञ्जस मन को मिटइ, सो उपाउ न सूझै।
दीनबन्धु कीजै सोई, बनि परइ जो बूझै ॥५॥

जिससे मन का असमंजस दूर हो वह उपाय नहीं सूझता है । हे दीनबन्धु ! जो आप को ठीक लगे अर्थात मेरी नीचता दूर हो जाए और आपको भी कोई भला बुरा न कहे वही कीजिये ॥५॥

बिरदावली विलोकिये, तिन्ह मैं कोउ हाँ हाँ ।
तुलसी प्रभु को परिहरेउ, सरनागत सौहाँ ॥६॥

जरा अपनी नामवरी देखिये मैं भी उसमें से ही कोई हूँ, हे प्रभो ! दास न सही तो आपके सन्मुख शरण आया हुआ तुलसी आप ही के द्वारा त्यागा हुआ जीव है ॥६॥

(१५१)

जौ पै चेराई राम की, करते न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्या, कर कर न बिकातो ॥१॥

अरे ! यदि तू रामचन्द्रजी की सेवकाई करने में न लजाता तो मूल्यवान सिक्का हो जाता, खोटी धातु की तरह हाथों हाथ नहीं बिकता अर्थात यदि तू रामचन्द्रजी की सेवा करने में न लजाता तो रामभक्त कहलाता और काम क्रोधादि के वश में होकर जगह जगह दुर्दशा न भोगता। ॥१॥

जपत जीह रघुनाथ को, नाम नहिं अलसातो।
बाजीगर के सूम ज्यौं, खल खेह न खातो ॥२॥

यदि रघुनाथजी का नाम जीभ से जपने में आलस्य नहीं करता तो-हे दुष्ट ! बाज़ीगर के सूम की तरह धूल नहीं फांकनी पड़ती ॥२॥

जी तू मन मेरे कहे, राम काम कमातो।
सीतापति सनमुख सुखी, सब ठाउँ समातो ॥३॥

हे मन ! यदि तू मेरे कहने से रामचन्द्रजी से सम्बन्ध स्थापन की कमाई करता तो सीतानाथ के सन्मुख होकर सुखी होता और सब जगह अर्थात् लोक-परलोक में स्थान पाता ॥३॥

राम सुहाते तोहि जौं, तू सबहि सुहातो ।
काल करम कुलि कारनी, कोऊ न कौँहातो ॥४॥

यदि तुझे रामचन्द्रजी अच्छे लगते तो तू भी सब को सुहानेवाला होता । काल, कर्म और समस्त भेद उत्पन्न करनेवाले गुण स्वभाव आदि कोई भी तुझसे अप्रसन्न नहीं होते ॥४॥

राम नाम अनुरागही, जिय जौं रतियातों।
स्वारथ परमारथ पथी, तोहि सब पतियातो ॥५॥

यदि राम नाम के प्रेम ही से मन प्रीतिमान होता तो स्वार्थ और परमार्थ के यात्री सभी तुझ पर विश्वास करते अर्थात स्वार्थ-लोक के सभी साथी - प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और बड़ाई आदि और परमार्थ-परलोक के संगी ज्ञान, वैराग्य, उपासना और सद्विचार आदि राम नाम की प्रीति से तुझ में विश्वास कर सहायक होते। ॥५॥

सेइ साधु सुनि समुझि के, पर-पीर पिरातो।
जनम कोटि को काँदलो,हद-हृदय थिरातो ॥६॥

साधुओं की सेवा कर उनके स्वभाव को सुन कर और समझ कर पराये दुःख से दुखी होता तो करोड़ों जन्म का मैल जो तेरे ह्रदय रुपी तालाब में विद्यमान है, वह नीचे बैठ जाता अर्थात तुम्हारा अंतःकरण निर्मल हो जाता ॥६॥

भव मग अगम अनन्त है, बिनु लमहि सिरातो।
महिमा उलटे नाम की, मुनि कियेउ किरातों ॥७॥

संसार का मार्ग दुर्गम और अपार है वह बिना परिश्रम ही समाप्त हो जाता। जब श्री राम के उलटे नाम की इतनी महिमा है की उसमें किरात को भी मुनि बना दिया अर्थात श्री राम का उल्टा नाम जपने से किरात वाल्मीकि मुनि हो गये, फिर सीधे राम नाम जपने का फल कैसे कहा जा सकता है ?॥७॥

अमर अगम तन पाइ सो, जड़ जाय न जातो।

होतो मङ्गल-मूल तुव, अनुकूल विधातो ॥ ८ ॥

अरे मूर्ख ! देवताओं को दुर्लभ शरीर पाकर वह व्यर्थ नहीं जाता । तू मंगल का मूल हो जाता और विधाता ट्रे अनुकूल होते ॥ ८ ॥

जी मन प्रीति प्रतीति सौं, राम नामहि रातो।
तुलसी राम प्रसाद तैं, तिहुँ ताप न तातो ॥ ९ ॥

हे मन ! यदि तू प्रीति और विश्वास से रामचन्द्रजी के नाम ही से प्रेम करता तो राम चन्द्रजी की कृपा से तुलसी तीनों तापों से नहीं जलता।

(१५२)

राम भलाई आपनी, भल कियेउ न काको।
जुग जुग जान किनाथ को, जग जागत साको ॥१॥

रामचन्द्रजी ने अपनी भलाई से किसका भला नहीं किया ? युग युगान्तर से जगत में जानकीनाथ के पुरुषार्थ की महिमा विख्यात है ॥१॥

ब्रह्मादिक बिनती करी, कहि दुख बसुधा को ।
रबिकल कैरव-चन्द भो आनन्द सुधा को ॥२॥

ब्रह्मा आदि देवता पृथ्वी के दुःख को कह कर विनती की तब आपने सूर्यकुल रूपी कुमुद वन के चन्द्रमा एवं आनन्द रूपी अमृत को बरसा कर उन्हें शीतल किया ॥२॥

कौसिक गरत तुषार ज्याँ, तकि तेज तिया को।
प्रभु अनहित हित को दियेउ, फल कोप किया को ॥३॥

स्त्री- ताड़का के तेज को देख कर विश्वामित्रजी ओले की तरह गलते थे। प्रभु रामचन्द्रजी ने उस अपकारिणी पर क्रोध करने का अच्छा ही फल दिया ॥३॥

हरेउ पाप आप जाइ के, सन्ताप सिला को ।
सोच मगन काढ़े सही, साहेब मिथिला को ॥४॥

आपने स्वयं जा कर शिला- अहिल्या के दुःख को हर लिया। मिथिलेश्वर शोक सागर में डूब रहे थे, उन्हें निकाल कर स्वस्थ किया ॥४॥

रोष-रासि भृगुपति धनी,अहमिति ममता को ।
चितवत भाजन कर लियेउ, उपसम समता को ॥ ५ ॥

क्रोध की राशि, अहंकार और ममत्व के धनी परशुरामजी को देखते ही शान्ति और सौम्यता का पात्र बना लिया ॥५॥

मुदित मानि आयसु चले, बन मातु पिता को।
धरम धुरन्धर धीर धुर, गुन सील जिता को ॥६॥

माता-पिता की आज्ञा मान कर प्रसन्नता से बन को चले गए। ऐसा धर्मधुन्धर धीरजधारी तथा गुण और शील का विजयी कौन है ? ॥६॥

गुह गरीब गत ज्ञातिह, जेहि जिउ न भखा को।
पायेउ पावन प्रेम तँ, सनमान सखा को ॥७॥

गरीब गुहा जाति से भी रहित, जिसने कौन से जीव का भक्षण नहीं किया था, आपने पवित्र प्रेम से उसने मित्र का सम्मान प्राप्त किया ॥७॥

सदगति सबरी गीध की, सादर करता को ।
सोच साँव सुग्रीव के, सङ्कट हरता को ॥८॥

आदर के साथ शबरी और गिद्ध की अच्छी गति (मोक्ष) करनेवाला कौन है ? सुग्रीव के शोक और संकट की सीमा का हरण करने वाला कौन है ? ॥८॥

राखि बिभीषन को सकइ, अस कालगहा को।
आज बिराजत राज होइ दसकंठ जहाँ को ॥९॥

ऐसा कौन काल का ग्रास था जो रावण से बैर लेकर विभीषण को अपनी शरण में रख सकता था। आज वही विभीषण जहाँ का राजा रावण था वहाँ राजा होकर विराज मान है ॥९॥

बालिस बासी अवध को, बूझिये न खाको ।
ते पाँवर पहुँचे तहाँ, जहँ मुनि मन थाको ॥१०॥

अयोध्या का रहनेवाला मूर्ख धोबी, जिसमें बुद्धि का नाम भी नहीं था, वह नीच वहाँ पहुँचे जहाँ पहुँचने में मुनियों का मन भी थक जाता है ॥१०॥

गति न लहइ राम नाम सौं, अस बिधि सिरजा को।
समिरत कहत प्रचारि के बल्लभ-गिरजा को ॥११॥

ब्रह्मा ने ऐसा कौन जीव उत्पन्न किया है जो राम नाम से मोक्ष प्रपात नहीं करेगा? पार्वतीजी के प्यारे शिवजी जिस राम नाम का स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरों को उपदेश देकर उसका प्रचार करते हैं ॥११॥

अकनि अजामिल की कथा, सानन्द न भा को ।
नाम लेत कलिकालहू, हरिपुरहि न गा को ॥ १२॥

अजामिल की कथा सुन कर कौन आनन्द युक्त नहीं हुआ ? कलिकाल में भी नाम लेने से कौन भगवान श्री हरि के लोक को नहीं गया? ॥१२॥

राम नाम महिमा करइ, कामभूरुह आको ।
साखी बेद पुरान है, तुलसी तनु ताको ॥ १३॥

रामनाम की महिमा ऐसा है जो आक के पेड़ को भी कल्पवृक्ष बना देती हैं। वेद और पुराण इस बात के साक्षी हैं, तुलसी की ओर देखिये क्या का क्या हो गया ॥१३॥

(१५३)

मेरे रावरियै गति है, रघुपति बलिजाउँ ।
निडर नीच निरगुन निरधन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥१॥

हे रघुनाथजी ! मैं आप पर बलिहारी जाता हूँ, मुझे आपका ही सहारा है। मेरे बराबर निर्भय, नीच, निर्गुणी और दरिद्र को संसार में आपको छोड़ कर जगह नहीं है और न कोई एनी स्वामी है ॥१॥

हैं घर घर भव भरे मुसाहिब, सूझत सबहि आपनो दाउँ ।
बानर-बन्धु विभीषन हित बिनु , कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥२॥

वैसे तो जगत में अनेकों स्वामी भरे पड़े हैं किन्तु उन सब को अपना ही स्वार्थ सूझता है। हे कोशलेश श्री राम चन्द्रजी मैं वानरों के सहायक वन्धु और विभीषण के मित्र आपको छोड़ कर कहीं शरण नहीं पा सकता ॥२॥

प्रनतारति भजन जन रञ्जन, सरनागत पवि-पञ्जर नाउँ ।
कीजै दास दासतुलसी अब, कृपासिन्धु बिनु मोल विकाउँ॥३॥

दीनों के दुःख नाशक, सेवकों को प्रसन्न करने वाले और नाम शरणागती के लिये तो आपका नाम ही वज्र के पिंजरे के समान है। हे कृपासिन्धु! तुलसीदास को अब अपना दास बनाइये, मैं अब बिना मोल के ही आप के हाथ बिकना चाहता हूँ ॥३॥

(१५४)

देव दूसरो कौन दीन को दयाल ।
सील-निधान सुजान सिरोमनि, सरनागत प्रिय प्रनतपाल ॥१॥

दीनदयालु, शीलनिधि, चतुर-शिरोमणि, शरणागतों पर प्रेम और भक्तों की रक्षा करने वाला दूसरा कौन देवता है ? ॥१॥

को समरथ सरबज्ञ सकल प्रभु, सिव सनेह मानस मरालु ।
को साहेब किय मीत प्रीति बस,खग निसिचर कपि भील भालु ॥२॥

समर्थ, सर्वज्ञ, सब के स्वामी और शिवजी के स्नेह रूपी मानसरोवर में हंस रूप होकर कौन निवास करता है? किस मालिक ने प्रेम वश पक्षी, राक्षस, बन्दर, किरात और भालू को मित्र बनाया था ? ॥२॥

नाथ हाथ माया प्रपञ्च सब, जीव दोष गुन करम काल ।
तुलसिदास भल पोच रावरो, नेकु निरखि कीजै निहाल ॥३॥

हे नाथ ! माया का प्रपञ्च, जीव के दोष, गुण, कर्म और काल सब आप के ही हाथ में हैं। भला या बुरा तुलसीदास आपका ही दास है, तनिक इसकी ओर निहार कर पूर्णकाम कर दीजिए ॥३॥

(१५५)

राग-सारंग।

विस्वास एक राम नाम को ।
मानत नहीं प्रतीति अनत ऐसो सुभाउ मन बाम को ॥१॥

एक राम नाम का विश्वास छोड़ कर मेरे कुटिल मन का कुछ ऐसा स्वाभाव है की वह कहीं और भरोसा नहीं करता ॥२॥

पढ़िवो परेउ नछठी छ-मत रिंग,-जजुर अथरबन साम को।
व्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि, मरइ करइ तनु छाम को ॥२॥

छह शास्त्र, ऋग, यजुर, अथर्षण और साम वेदों का पढ़ना मेरे भाग्य ही में नहीं लिखा था। उपवास, तीर्थयात्रा और तप की कठिनता सुन कर मैं सहम जाता हूँ कि उसमें पूर्णरूप से लग कर कौन मरे और शरीर को दुर्बल करे ॥२॥

करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन ससाधित दाम को।
ज्ञान बिराग जाग जप तप भय, लोभ मोहमद काम को ॥३॥

कलिकाल में कर्म-समूह का अनुष्ठान कठिन है, फिर उसका अच्छी तरह सम्पादित होना धन के आधीन है। ज्ञान वैराग्य, यज्ञ, जप और तप में लोभ, मोह, मद, काम आदि का भय रहता है ॥३॥

सब दिन सब लायक गायक भये, रघुनायक गुन-ग्राम को।
बैठे नाम कामतरु तर डर, कवन घोर घन घाम को ॥४॥

रघुनाथजी के गुणसमूह को गानेवाले प्राणी मात्र सदा सभी से योग्य हुए हैं । नाम रूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए को भयंकर धूप का कौन सा डर है ? ॥४॥

को जानइ को जइहै जमपुर, को सुरपुर पर-धाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग,जीवन राम-गलाम को ॥५॥

कौन जानता है कौन यमपुरी जाएगा, कौन स्वर्ग और कौन वैकुण्ठ की और प्रस्थान करेगा। तुलसी को रामचन्द्रजी का दास होकर जगत में जीना बहुत अच्छा लगता है ॥५॥

(१५६)

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घाम को ॥१॥

कलिकाल में रामचन्द्रजी का नाम कल्पवृक्ष रूप है । दरिद्रता रूपी दुर्भिक्ष के दुःख को और दोष रूपी भीपण ताप का नाश करनेवाला है ॥१॥

नाम लेत दाहिनो होत मन, वाम विधाता बाम को।
कहत मुनीस महेस महातम, उलटे सीधे नाम को ॥२॥

जिन कुटिलों पर विधाता का मन विपरीत है, राम नाम कहते ही वह अनुकूल हो जाता है । मुनीश्वर और शिवजी उलटे सीधे नाम के महत्व को कहते हैं ॥२॥

भलो लोक परलोक तासु, जाको बल ललित ललाम को ।
तुलसी जग जानियत नाम तेँ, सोच न कूच मुकाम को ॥३॥

उसका लोक और परलोक में भला है जिसको इस सुन्दर रत्न राम नाम का भरोसा है। नाम ही के नाते तुलसी को जगत जानता है इससे संसार से चले जाने और रहने का कोई सोच नहीं है ॥३॥

(१५७)

सेइये सुसाहेब राम सों।
सुखद सुसील सुजान सूर सुचि सुन्दर कोटिक काम सो॥१॥

रामचन्द्रजी सरीखे श्रेष्ठ स्वामी की सेवा करनी चाहिये वह सुख देनेवाले, अच्छे शीलवान्, चतुर, शूरवीर, पवित्र और करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर हैं ॥१॥

सारद सेष साधु महिमा कह, गुन गन गायक साम सा ।
सुमिरि सप्रेम नाम जासौं रति, चाहत चन्द्र-ललाम सो ॥२॥

जिनकी महिमा, सरस्वती, शेष और सज्जन लोग कहते हैं तथा जिनके गुणों को सामवेद के समान गवैया गाते हैं। प्रेम के साथ नाम स्मरण करके जिससे चन्द्रभूषण शिवजी प्रीति चाहते हैं ॥२॥

गमन बिदेस कलेस लेस नहिँ, सकुचत सकृत प्रनाम सो।
साखी ताको बिदित बिभीषन, बैठो अविचल धाम सो ॥३॥

राम नाम के प्रभाव से विदेश यात्रा में लेशमात्र कष्ट नहीं होता, जो एक बार प्रणाम करने से सकुचते हैं कि मैंने इसकी कोई भलाई नहीं की। इसका विख्यात साक्षी विभीषण है जो अचल स्थान में बैठा है ॥३॥

टहल सहल जन महल महल, जागत चारों जुग जाम सो।
देखत दोष न खीझत रीझत, सुनि सेवक गुन-ग्राम सो ॥४॥

जिनकी सेवा सहज है, जो भक्तों के घर घर चारों युग और आठों पहर जागते रहते हैं। आँख से देखते हुए सेवकों के दोष को चिढ़ते नहीं और सुने हुए गुणों से प्रसन्न होते हैं ॥४॥

जा के भजे तिलोक तिलक भे, त्रिजगजोनि तन तामसो।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजइ नहि, ताहि बिधाता बाम सो॥५॥

जिनका भजन करने से तिर्यकयोनि तामसी शरीरवाले (पशु, पक्षी, राक्षस आदि) त्रैलोक-शिरोमणि हुए हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे स्वामी रामचन्द्रजी का भजन नहीं करता उस पर विधाता सदा प्रतिकूल रहते हैं ॥५॥

(१५८)

राग-नट।

कैसे दे नाथहि खोरि ।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥१॥

मैं अपने स्वामी को कैसे दोष दूँ । हे हरे! मेरा मन आप की भक्ति छोड़ कर विषय की कामनाओं का अत्यन्त लालची होकर इधर उधर भटकता फिरता है ॥१॥

बहुत प्रीति पुजाइवे पर, पूजिवे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥२॥

मुझे अपनी पूजा करवाने पर अत्यंत प्रीति है और आपकी पूजा करने में थोड़ी भी प्रीति नहीं है । शिक्षा देता हूँ, किन्तु सिखाना मानता नहीं ऐसी मेरे मन की मूर्खता है ॥२॥

किये सहित सनेह जे अघ, हृदय राखे चोरि ।
सङ्ग बस किय सभ सुनाये, सकल लोक निहोरि ॥३॥

जिन पापों को मैंने प्रेम के साथ किया है उन्हें हृदय में छिपा कर रखता हूँ । परन्तु किसी के अच्छे संतग अथवा प्रभाव से कुछ अच्छा काम किया है तो उसे सारी दुनियाँ को विनती करके सुनाता हूँ ॥३॥

करउँ जो कछु धरउँ सचि पचि, सुकृत सिला बटोरि ।
पइठि उर वरबस दयानिधि, दम्भ लेत अँजोरि ॥४॥

जो कुछ सुकृत हो जाता है उसे तन्मय होकर खेत में पड़े हुए अन्न के डेन की तरह बटोर कर सञ्चित कर लेता हूँ। हे दयानिधे ! उसको घमण्ड रूपी डाकू उजाला करके प्रबलता से हृदय में आघात लगा कर लूट लेता है अर्थात जो कुछ नाम मात्र पुण्य करता हूँ उसको बड़े

अभिमान से औरों को कहता फिरता हूँ और अपने उस अहंकार के कारण वह सुकृत नष्ट हो जाता है । ॥४॥

लोभ मनहिँ नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि ।
बात कहउँ बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥५॥

लोभ रूपी मदारी गले में आशा रूपी डोरी लगा कर मन को बन्दर की तरह नचाता है। परन्तु इतना होने पर भी मैं दंभ से एक बड़े विद्वान के जैसे उत्तम वैराग्य की बातें कहता हूँ ॥५॥

इतो पै तुम्हरों कहावत, लाज अँचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहि छोरि ॥६॥

इतना होने पर भी मैं आप का दास कहलाता हूँ, लाज को तो मानो मैंने घोल कर पी डाला है। हे रघुनाथजी! इस निर्लज्जता पर प्रसन्न होकर तुलसी को संसार-बन्धन से मुक्त कर दीजिये ॥६॥

(१५६)

है प्रभु मेरोई सब दोस ।
सीलसिन्धु कृपाल नाथ अनाथ भारत पोस ॥१॥

हे प्रभो ! सब मेरा ही दोष है । आप शील के सागर, दयालु, अनाथों के नाथ और दुःखी जनों के पालक हैं ॥१॥

बेष वचन विराग मन अघ, अवगुनन्हि को कोस ।
राम प्रीति प्रतीति पोलो, कपट करतब ठोस ॥२॥

वेश और वचन तो वैराग्यवान का है, किन्तु मन पाप तथा अवगुणों का भण्डार है। राम चन्द्रजी की प्रीति और विश्वास के लिए तो मन पोपला अर्थात खाली है, परन्तु कपट के कामों में मजबूत है अर्थात इसमें कपट ही कपट भरा है ॥२॥

राग रङ्ग कुसङ्गही साँ,साधुसङ्गति रोस।
चहत केहरि जसहि सेइ सृगाल ज्याँ खरगोस ॥ ३॥

कुसंगियों की प्रीति से प्रसन्नता और साधुओं की संगति से क्रोध रखता हूँ। जैसे खरगोश सियार की सेवा करके सिंह के यश को प्राप्त करना चाहता है ॥३॥

सम्भु सिखवन रसनहूँ नित, राम नामहिँ घोस ।
दम्भहू कलि नाम कुम्भज, सोच सागर सोस ॥४॥

शिवजी भी सिखाते हैं कि नित्य जिह्वा से रामचन्द्रजी का नाम उच्चारण करो। कलियग में पाखण्ड से भी मुख से लिया हुआ राम नाम शोक रूपी समुद्र को सुखाने के लिये अगस्त्य रूप है ॥ ४॥

मोद मङ्गल मूल अति अनुकूल निज निरजोस ।
राम नाम प्रभाव सुनि तुलसिहि परम सन्तोस ॥ ५ ॥

यह ठीक निश्चय है कि राम नाम का जाप आनन्द और मंगल का मूल है और ऐसा अनुकूल है जिसकी किसी भी अनुकूलता से तुलना नहीं होती। राम नाम की महिमा सुन कर तुलसी को परम सन्तोष है ॥ ५॥

(१६०)

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित तुम्ह पतितपावन, दोउ बानक बने ॥१॥

हे हरे ! मैंने सुना है कि आप पापियों को पवित्र करते हैं। मैं पतित हूँ और आप पतितपावन हैं, दोनों का अच्छा मेल मिला है ॥ १ ॥

'ब्याध गनिका गज अजामिल, साखि निगमन्हि भने।
और अधम अनेक तारे, जात का पहिँ गले ॥२॥

व्याध, वेश्या, हाथी और अजामिल आदि पापियों के तारने की गवाही वेदों ने की है। और अन्य असंख्यों पापात्माओं का भी आपने उद्धार किया वह किससे गिना जा सकता है ? ॥२॥

जानि नाम अजान लीन्हे, नरक जमपुर मने।
दासतुलसी सरन आयउ, राखि ले आपने ॥३॥

जान कर अथवा अनजाने में भी जिसने आपका नाम लिया उसका नरकवास और यमवास जाना मना हो गया अर्थात वब सभी भवसागर से पार होकर मुक्त हो गए। इसी कारण तुलसीदास आप की शरण में आया है इसकी रक्षा कीजिए ॥३॥

(१६१)

राग-मलार।

तो साँ प्रभु जो कहूँ कोड होती ।
तो सहि निपट निरादर निसि दिन, रटि लटि अस घटि को तो॥१॥

आप के समान यदि कोई अन्य दूसरा समर्थ स्वामी होता तो भला ऐसा कौन क्षुद्र था जो सदैव अपमान सहकर ने दिन रात आपका ही नाम रटकर दुबला होता ॥ १॥

कृपा सुधा जलदानि मानियो, कह सो साँच निसोतो।
स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत, चित चातक को पोतो ॥२॥

मैं जो आपसे कृपा रुपी अमृतजल मांग रहा हूँ वह उसी प्रकार निराला है जैसे मेरा चित्तरुपी चातक का बच्चा आपके प्रेम रुपी स्वाति नक्षत्र का आनंद रूपी जल चाहता हो ॥२॥

काल करम बस मन कुमनोरथ, कबहुँ कबहुँ कछु भोतो ।
ज्याँ मुद मय बसि मीन वारि तजि, उरि भभरि लेइ गोतो ॥३॥

काल और कर्म के अधीन होकर कभी कभी मन में कोई बुरी कामना उसी प्रकार आ जाती है जैसे आनंद पूर्वक जल में रहती हुई मछली कभी कभी उछल कर वापस उसी जल में गोता लगाती है ॥३॥

जितो दुराव दासतुलसी उर, क्याँ कहि श्रावत ओतो।
तेरे राज राय दसरथ के, लयउँ बयो बिनु जोतो ॥४॥

जितना छिपाव तुलसीदास के हृदय में है उतना कैसे कहने में आ सकता है ? हे राजा दशरथ प्रिय! आप के राज्य में मैंने बिना जोते बोये ही पाया है अर्थात आप के अनुग्रह से मुझे बिना जप तप योग व्रतादि के रामभक्त कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मैं संसार में सुख से जोवन व्यतीत करता हूँ। ॥४॥

(१६२)

राग-रामकली

ऐसो को उदार जग माहीँ ।
बिनु सेवा जो द्रवइ दीन पर, राम सरिस कोउ नाही ॥१॥

ऐसा जगत में उदार कौन है जो बिना सेवा के दीनों पर दया करता हो ? ऐसे केवल एक श्री राम चन्द्र हे हैं, उनके समान कोई अन्य नहीं है ॥१॥

जो गति जोग बिराग जतन करि, नहिँ पावत मुनि-ज्ञानी।
सो गति दई गीध सबरी कहँ, प्रभु न अधिक करि मानी ॥२॥

जिस गति को योग, वैराग्य श्रादि यत्न करके ज्ञानीमुनि नहीं पाते, उस मोक्ष को प्रभु रामचन्द्रजी ने गिद्ध और शवरी को प्रदान कर, उसको अधिक करके नहीं समझा अर्थात् मन में सकुचते थे कि इनको मैंने कुछ नहीं दिया ॥२॥

जो सम्पति दससीस अरपि के, रावन सिव पहिँ लीन्ही ।
सोइ सम्पदा विभीषन कह अति, सकुच सहित हरि दीन्ही ॥३॥

रावण ने दसों सिर अर्पण करके जो सम्पदा शिवजी से प्राप्त की थी, वही सम्पत्ति विभीषण को भगवान ने श्री हरि ने बड़े संकोच से प्रदान की ॥३॥

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख, जौँ चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन, करहिं कृपानिधि तेरो ॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे मेरे मन ! यदि तू समस्त सुख प्राप्त करने का अभिलाषी है तो रामचन्द्रजी का भजन कर, वह दया के समुद्र है तेरी समस्त कामनाएं पूरी कर देंगें ॥४॥

(१६३)

एकइ दानि-सिरोमनि साँचो ।
जेहि जाचेउँ सो जाचकता, बस, फिरि बहु नाच न नाँचो ॥ १॥

एक ही सच्चे दानी-शिरोमणि हैं, जिसने उनसे याचना की फिर वह महानता के अधीन होकर बहुत नाच नहीं नाचा अर्थात् एक बार विनती करने से ही कार्य पूर्ण हो गया ॥१॥

सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि, कोउ न देत बिनु पाये ।
कोसलपाल कृपाल कलपतरु, द्रवत सकृत सिर नाये ॥२॥

दैत्य, देवता, मनुष्य और मुनि यह सब स्वार्थी हैं, बिना लिए कोई नहीं देता। कल्पवृक्ष रूप दयालु कौशलेन्द्र भगवान एक बार प्रणाम करने से ही दया करते हैं ॥२॥

हरिह अवर अवतार आपने, राखी बेद बड़ाई।
लेइ चिउरा निधि दई सुदामहि, जद्यपि बाल-मिताई ॥३॥

भगवान ने भी अपने दूसरे अवतारों में वेद की मर्यादा रक्खी है। यद्यपि सुदामा से लड़कपन की मित्रता थी तो भी आपने चिउरा लेकर उन्हें गृहादि सम्पत्ति का भण्डार दे दिया ॥३॥

कपि सबरी सुग्रीव बिभीषन, को नहिँ कियेउ अजाची।
अब तुलसिहि दुख देत दयानिधि, दारुन आस पिसाची ॥४॥

हनुमानजी, शबरी, सुग्रीव और विभीषण आदि किसको आपने याचना रहित अर्थात सम्पन्न नहीं किया ? हे दयानिधान ! अब तुलसी को आशा रूपी भीषण पिशाचिनी दुःख दे रही है, इसका निवारण दर्शन दे कर कीजिये ॥४॥

(१६४)

राग-सोरठ।

जानत प्रीति रीति रघुराई ।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह सगाई ॥१॥

प्रीति की रीति श्री रघुनाथजी जानते हैं । रामचन्द्रजी प्रेम के नाते सामने दूसरे सब नातों को नाश कर रखते हैं अर्थात् स्नेह के नाते के बरावर दूसरे नाते को कुछ नहीं समझते ॥१॥

नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई।

ऐसेहु पितु तेँ अधिक गीध पर, ममता गुन गरुभाई ॥२॥

शरीर त्याग कर दशरथजी ने स्नेह निभाया और अविचल कीर्ति जगत में प्राप्त की। ऐसे पिता से भी बढ़ कर गिद्ध पर उसके स्नेह के प्रभाव का गुण-गौरव दिखाया ॥२॥

तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि, प्रान प्रिया बिसराई।
रन परे बन्धु बिभीषनही को, सोच हृदय अधिकाई॥३॥

स्त्री-वियोग में दुखी मित्र सुग्रीव को देख कर आपने प्राणप्यारी सीताजी को भी भुला दिया । रणभूमि में भाई लक्ष्मण अचेत होकर गिर पड़े, उस समय आप हृदय में विभीषण जी की ही चिंता करते रहे । जब लक्ष्मणजी को शक्ति लगी तब रामचन्द्रजी ने विलाप करते हुए सुग्रीव से कहा-"गिरि कानन जइह साखामृग, हो मरि अनुज संघाती । हाइहै कहा विभीपन की गति, रहेउ सोच भरि छाती" अर्थात् बन्दर पर्वत और वनों में चले जाँयगे, मैं मृतक होकर लघुवन्धु का साथ दूंगा। विभीपण की क्या दशा होगी? इस सोच से हृदय भर गया है। ॥३॥

घर गुरु गृह प्रिय-सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलन की, रुचि माधुरी न पाई ॥४॥

अपने घर, गुरु मन्दिर, मित्रों के भवन और ससुराल में जहाँ जहाँ आपकी आवभगत हुई, तब वहाँ शबरी के फलो की चाह और मधुरता आपको नहीं मिली ॥४॥

सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर-बन्धु बड़ाई ॥५॥

मुनि लोग जब आपके स्वाभाविक यथातथ्य कथा का वर्णन करते हैं उसको सुन कर आप सकुचा कर सिर नीचे कर लेते हैं और मल्लाह के मित्र कहने से प्रसन्न होते तथा वानरों द्वारा बन्धु कहाने में आप अपनी बड़ाई मानते हैं ॥५॥

प्रेम कनौड़ो राम सरिस प्रभु, त्रिजग त्रिकाल न भाई ।
तेरो रिनी कहेउ कपि सौं असि, मानिहि को सेवकाई ॥६॥

भाइयो ! रामचन्द्रजी के समान प्रेम वश रहने वाले स्वामी तीनों लोक और तीनों काल में नहीं है । भला ! ऐसा सेवा से कृतज्ञ रहने वाला कौन हैं जिन्होंने वानर हनुमान से यह तक कहा कि मैं तेरा ऋणी हूँ ॥६॥

तुलसी राम सनेह सील लखि, जौं न भगति उर आई।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़, तन तरुनता गँवाई ॥७॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी के शील और स्नेह को देख कर यदि हृदय में रामभक्ति नहीं आई तो तुझ जैसे मूर्ख को माता ने व्यर्थ ही पैदा करके अपने शरीर की जवानी को खो दिया ॥७॥

(१६५)

रघुवर रावरि इहइ बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई॥१॥

है रघुनाथजी ! आप की यही बड़ाई है कि आप धनवानों का अनादर करके गरीबों का आदर और उन पर बड़ी कृपा करते हैं ॥१॥

थके देव साधन करि सब सपनेहुँ नहिँ दियेउ दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियेउ सकल सग-भाई ॥२॥

देवता सभी उपाय करके हार गये उन्हें आप सपने में भी नहीं दिखाई दिये और केवट, भालू , बन्दर तथा राक्षस आदि समस्त जीवों को सहोदर भाई वबा लिया ॥२॥

मिलि मुनिवृन्द फिरे दंडकबन, सो चरचउ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥३॥ .

दण्डकारण्य में घूम कर मुनियों से मिले उसकी चर्चा तब भी किसी से नहीं की; परन्तु गिद्ध और शबरी की सुहावनी प्रीति का बखान आपने निरंतर किया ॥३॥

स्वान कहे तँ कियेउ पुर बाहिर, जती गयन्द चढ़ाई।
सिय निन्दक मतिमन्द प्रजा रज, निज-नय नगर बसाई॥४॥

कुत्ते के कहने से सन्यासी को हाथी पर चढ़ा कर शहर से बाहर निकाल दिया और सीताजी की निन्दा करनेवाले नीचबुद्धि धोबी को अपनी प्रजा समझ कर अपने नगर में बसाया अर्थात् देश निकाले का दण्ड नहीं दिया क्योंकि वह दीन हीन था ॥४॥

एहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।
दीन दयाल दीन तुलसी की, काह न सुरति कराई ॥५॥

इस दरवार में दीनों के आदर की रीति सदा से चली आ रही है। हे दीनदयाल ! क्या इस दीन तुलसी की याद किसी ने नहीं दिलाई ॥५॥

(१६६)

ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी॥१॥ .

श्री रामचन्द्रजी ऐसे दीन हितकारी हैं, वह अत्यन्त कोमल स्वभाव, दया के स्थान हैं और बिना कारण दूसरों की भलाई करने वाले हैं ॥१॥

साधन हीन दीन निज-अघ बस, सिला भई मुनि नारी।
गृह त गवनि परसि पद-पावन, घोर साप तँ तारी ॥२॥

उपाय रहित, दुःख से भरी, अपने पाप के अधीन मुनि-पत्नी अहिल्या पत्थर की चट्टान हो गयीं थी। घर से चल कर आपने अपने पवित्र चरणों का स्पर्श करके भीषण शाप से उसका उद्धार किया ॥२॥

हिंसा-रत निषाद तामस बपु, पसु समान बनचारी।
भेंटयो हृदय लगाइ प्रेम-बस, नहिँ कुल जाति बिचारी ॥३॥

जीवों की हत्या में तत्पर तामसी शरीर का मल्लाह पशु के समान जंगली था । उसको प्रेमाकुल हृदय से लगा कर मिले, कुल और जाति का विचार नहीं किया ॥३॥

जद्यपि द्रोह कियेउ सुरपति-सुत, कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोक-हत, सरन गये भय टारी॥४॥

यद्यपि इन्द्र के पुत्र जयन्त ने ऐसा बड़ा भारी बैर किया जिसका वर्णन करना भी दुष्कर है। तब भी जब वह बाण से व्याकुल होकर सारे

लोकों में घूम कर अंत में आपकी शरण में आया तो आपने उसके भय को दूर कर दिया ॥४॥

विहंग-जोनि आमिष अहार पर, गीध कवन ब्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज,कर करि बात सँवारी ॥५॥

पक्षी-योनि का मांसभक्षी गिद्ध कौन सा श्रेष्ठ व्रतधारी था? जिसकी पिता के सामान अपने हाथ से उसकी अन्त्येष्टिक्रिया करके बात सुधार दी ॥५॥

अधम जाति सबरी जोषित सठ, लोक बेद त न्यारी।
जानि प्रीति देइ दरस कृपानिधि, सोउ रघनाथ उधारी ॥६॥

नीच जाति शबरी स्त्री दुष्ट ओर लोक वेद से बाहर अर्थात् छूने लायक नहीं थी, परन्तु उसका सच्चा प्रेम समझ कर कृपानिधान रघुनाथजी ने दर्शन देकर उसका भी उद्धार किया ॥६॥

कपि सुग्रीव बन्धु भय ब्याकुल, आयेउ सरन पुकारी ।
सहि न सके जन को दारुन दुख, हतेउ बालि सहि गारी ॥७॥

वानर सुग्रीव अपने भाई बालि के डर से व्याकुल हो जब आपकी शरण आया तब आपने सेवक के भीषण दुःख को नहीं सहा और गाली सह कर भी बालि का वध किया ॥७॥

रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर, कवन भजन अधिकारी।
सरन गंगड आगे होइ लीन्हेंड, भेंटयो भुजा पसारी ॥८॥

शत्रु का छोटा भाई राक्षस विभीषण कौन से भजन का अधिकारी था? परन्तु जब वह आपकी शरण में आया तो अपने आगे से उठ कर लिया और बाँह फैला कर क्रिदय से लगा लिया ॥८॥

असुभ होइ जिन्ह के सुमिरन तें, बानर रीछ बिकारी।
बेद बिदित पावन भये ते सब, महिमा नाथ तिहारी ॥९॥

बन्दर और भालू ऐसे अधर्मी हैं जिनका नाम लेने से भी अमंगल होता है, परन्तु वह सभी पावन पवित्र बन गए। हे नाथ! वेदों में विख्यात है यह केवल आप की ही महिमा है ॥९॥

कह लगिकहउँ दीन अगनित, जिन्ह की तुम्हविपति निवारी।
कलिमल ग्रसित दासतुलसी पर, काहे कृपा बिसारी ॥ १०॥

जिन जिन की विपत्तियां आपने दूर की हैं उन असंख्य दीनों की कथा मैं कहाँ तक कहूँ। किन्तु न जाने क्यों कलियुग के पापों से ग्रसित इस दीन तुलसीदास पर आप कृपा करना भूल गए हैं ? ॥१०॥

(१६७)

रघुपति भगति करत कठिनाई।

कहत सुगम करनी अपार जानइ सो जहि बनिभाई ॥१॥

रघुनाथजी की भक्ति करने में कठिनता है। कहने में सहज है। किन्तु करना दुर्गम है, इसे वहीं जानता है जिसने इनकी भक्ति की है ॥१॥

जो जेहि कला कुसल ताकहँ सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहइ गज भारी ॥२॥

जो जिस कला में प्रवीण होता है वह उसके लिये सदा सहज और आनन्दकारी होता है। गंगा की की जलधारा के सामने एक छोटी मछली आसानी से तैरती जाती है और इतना बड़ा हाथी बह जाता है ॥२॥

ज्यौँ सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तँ नहिं बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूकम पिपीलिका, बिनु प्रयासही पावै ॥३॥

जैसे चीनी बालू में मिल जाय उसको कोई कितना भी बलशाली हो अलग नहीं कर सकता । परन्तु उसके रस को जाननेवाली अत्यन्त छोटी चींटी विना परिश्रम के ही बालू से चीनी अलग कर लेती है ॥३॥

सकल हस्य निज उदर मेलि, सोवइ, निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम-सुख अतिसय द्वैत बियोगी ॥४॥

समस्त दृश्य पदार्थों को अपने हृदय में मिला कर जो योगीजन मोह की नींद त्याग कर अर्थात अज्ञानता को त्याग कर सोते हैं। वही भेद-भाव के अतिशय वियोगी और भगवान के चरणों के परमानन्द का यथार्थ ज्ञान रखते हैं|

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाही।
तुलसिदास एहि दसा हीन, संसय निर्मूल न जाहाँ ॥५॥

वहाँ शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन, रात, देश और काल नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस अवस्था के बिना मिथ्या प्रपञ्च को सच मानने का सन्देह निर्मूल नहीं होता ॥५॥

(१६८)

जौपै राम-चरन-रति होती ।
तौ कत त्रिविध सूल निसि बासर, सहते विपति निसोती ॥ १ ॥

यदि रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति होती तो दिन रात तीनों तापों की पीड़ा और निरी विपत्ति क्यों सहनी पड़ती ॥१॥

जौँ सन्तोष-सुधा निसि वासर, सपनेहुँ कबहुँक पावै।
तो कत विषय बिलोकि झूठ जल, मन कुरङ्ग ज्यौँ धावै ॥२॥

यदि सन्तोष रूपी अमृत रात दिन के बीच कभी सपने में भी पा जाय तो विषय रूपी मिथ्याजल को देख कर हिरन की तरह मन उसके पीछे क्यों दौड़े ॥२॥

जौं श्रीपति महिमा विचारि उर, भजते भाव बढ़ाये।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्याँ, फिरते पेट खलाये ॥३॥

यदि लक्ष्मीकान्त की महिमा हृदय में विचार कर और स्नेह बढ़ा कर उनका भजन किया जाए तो कुत्ते की तरह द्वार द्वार पर खाना मांगने क्यों मारे मारे फिरते ॥३॥

जे लोलुप भये दास आस के, ते सबही के चेरे ।
प्रभु बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥४॥

जो अत्यन्त लालच से आशा के दास बने हुए हैं, वह सभी के चाकर है। प्रभु रामचन्द्रजी पर विश्वास करके जिन्होंने आशा को जीत लिया है केवल वही भगवान के भक्त हैं ॥४॥

नहि एकहु आचरन भजन को, बिनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ नाम के नाते ॥ ५॥

मैं आपसे इसीलिए विनती कर रहा हूँ क्योंकि भजन का एक भी आचरण मुझ में नहीं है। हे स्वामी ! तुलसी दास पर नाम के नाते ही कृपा कर दीजिए ॥५॥

(१६९)

जी मोहिं राम लागते मीठे।
तौ नवरस षटरस रस अनरस, होइ जाते सब सीठे ॥१॥

यदि मुझे रामचन्द्रजी प्यारे लगते तो साहित्य के श्रृंगार आदि नव रस और भोजन के अम्ल श्रादि छह रस के स्वाद सार हीन हो जाते ॥२॥

बञ्चक विषय बिबिध तनु धारे, अनुभव सुने अरु दीठे।
यह जानतहूँ हिय अपने सपने न अघाइ उवीठे॥२॥

अनेक शरीर धारण करके मैंने अनुभव किया सुना और देखा है कि विषय ठग रूपी है। यह जानते हुए भी अपने हृदय में उससे तृप्त होकर कभी सपने में भी अनिच्छित नहीं हुआ ॥२॥

तुलसिदास प्रभु सौ एकहि बल, बचन कहत अति ढीठे ।
नाम की लाज मानि करुनाकर, केहि न दियेड करि चीठे ॥३॥

हे प्रभो! तुलसीदास एक ही बल ल से अत्यन्त ढीठ होकर वचन कहता है । हे दयानिधान ! नाम की लाज मान कर आपने किसको सार-बन्धन से मुक्त करने क आज्ञा नहीं दी है? अर्थात् सभी के संकट दूर किये हैं ॥३॥

(१७०)

यॉं मन कबहूँ तुम्हहिं न लागेउ ।
ज्यॉं छल छाड़ि सुभाय निरन्तर, रहत विषय अनुरागेउ ॥१॥

आप से मेरा मन ऐसे कभी नहीं लगा जैसे छल छोड़ कर सहज ही सदा विषयो में अनुरक्त रहता है ॥५॥

ज्यॉं चितई पर नारि सुने पातक प्रपञ्च घर घर के।
त्यॉं न साधु सुरसार तरङ्ग निरमल गुन-गन रघुबर के ॥२॥

जिस प्रकार आँखें पराई स्त्री को देखती हैं और कान घर घर के पाप-छल को सुनते हैं, वैसे न तो कभी साधुओं की दर्शन करता हूँ और न ही गंगा जी की निर्मल तरंगों के समान श्री रघुनाथजी के निर्मल गुणों का गान करता हूँ ॥२॥

ज्यॉं नासा सुगन्ध-रस बस रसना षट-रस रति मानी ।
राम प्रसाद माल जूठन लगि, त्यॉं न ललकि ललचानी ॥३॥

जैसे नाक सुगन्ध के आनंद के अधीन और जीभ छह रसों में प्रीति रखती है, वैसे ही यह नाक रामचन्द्रजी के प्रसाद रूप माला और जीभ भगवत प्रसाद के लिये बड़ी अभिलाषा से नहीं तरसती ॥३॥

चन्दन चन्दबदनि भूषन पट, ज्यॉं चह पाँवर परसेउ ।

त्यौं रघुपति-पद-पदुम परस कह, तनु पातकी न तरसेउ ॥४॥

जैसे यह नीच मन चन्द्राननी नायिका के चन्दन, आभूषण और वस्त्रों को छूना चाहता है, वैसे रघुनाथजी के चरण-कमल को छूने के लिये तनिक भी इच्छा नहीं करता ॥४॥

ज्यौं सब भाँति कुदेव कुठाकुर, सेयेउ बचन हियेहूँ।
त्यौं न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत, सकृत प्रनाम कियेहूँ॥५॥

जैसे सब तरह बुरे देवता और नीच स्वामियों की सेवा वचन तथा मन-से की, वैसे श्री राम चन्द्रजी की सेवा नहीं की जो सुन्दर कृतज्ञ एक ही बार प्रणाम करने से सकुचा जाते हैं ॥५॥

चञ्चल चरन लोभ लगि लोलुप, द्वार द्वार जग बागे।
राम-सीय प्रास्त्रमन्हि चलत त्यौं, भयेउ न त्रमित अभागे ॥६॥

जैसे लोभवश मेरे चंचल चरण संसार भर में द्वार द्वर ठोकर खाते हैं, वैसे-अरे अभागे ! राम-जानकी के आश्रमों में चलते हुए नहीं थके ॥६॥

सकल अङ्ग पद बिमुख नाथ, मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥७॥ .

हे नाथ ! मैं सर्वांग रूप से आप के चरणों से विमुख हूँ; किन्तु मुख से आप के नाम की नोट ले रखी है। तुलसी को एक ही भरोसा है कि स्वामी की मूर्ति दयामयी है अर्थात आप दया के रूप हैं, नाम के नाते इस बनावटी भक्त पर भी अवश्य दया करेंगे।

(१७१)

कीजे मो को जमजातना-मई ।
तुम्ह तो राम सदा सुचि साहेब, मैं सठ पीठि दई ॥१॥

हे नाथ ! मुझे तो आप यम की यातना में ही दाल दीजिए। हे रामचन्द्रजी ! आप तो सदा पवित्र स्वामी हैं, किन्तु मैं ही ऐसा दुष्ट हूँ जो आप जैसे सुहृदय से पीठ किए बैठा हूँ ॥१॥

गर्भबास दस मास पालि पितु-मातु रूप हित कीन्हाँ ।
जड़हि बिबेक सुसील खलहि, अपराधिहि आदर दीन्हाँ ॥२॥

गर्भवास में दस महीने माता-पिता के रूप में पालन करके आपने उपकार किया । मुझ जैसे मूर्ख को आपने ज्ञान, मुझ जैसे दुष्ट को सुन्दर शील और मुझ जैसे सरीखे पापी को आदर दिया ॥२॥

कपट करउँ अन्तरजामिहु साँ,अघ ब्यापकहि दुरावाँ ।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर, रघुपति न कियेउ मन बावाँ ॥ ३॥

मैं अन्तर्यामी प्रभु से भी छल करता हूँ और सर्वव्यापी प्रभु से पाप छिपाता हूँ। परन्तु ऐसे कुबुद्धि नीच सेवक पर भी रघुनाथजी ने अपना मन प्रतिकूल नहीं किया ॥३॥

उदर भरउँ किङ्कर कहि बेचेरें,-बिषयन्हि हाथ हियो है।
मो से बञ्चक को कृपाल छल छाडि के छोह कियो है ॥४॥

मैं अपना पेट तो भरता हूँ आपका दास कहला कर और अपने हृदय को मैंने विषयों के हाथ बेच डाला है । मुझ से ठग पर भी कृपालु रामचन्द्रजी ने निष्कपट भाव से कृपा ही की है ॥४॥

पल पल के उपकार रावरे, जानि बुझि सुनि नीके।
भिदेउ न कुलिसहु तँ कठोर चित, कबहुँ प्रेम सिय पी के ॥५॥

आप के क्षण क्षण के उपकारों को अच्छी तरह सुन कर, समझ कर और जान कर भी मेरे वज्र से कठोर चित्त में सीतानाथ की प्रीति नहीं चुभी ॥५॥

स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ-दोहाई ।
मैं मति तुला तौलि देखेउँ भइ, मेरिहि दिसि गरुभाई ॥६॥

स्वामी की सारी सेवक हितकारिता और अपनी कुछ थोड़े से स्वामि-द्रोह को मैंने अपनी बुद्धि रूपी तराजू पर तौल कर देखा तो मेरी ही ओर का पलरा भारी निकला ॥६॥

एतेहु पर हित करत नाथ मम, करि आये अरु करिहै ।
तुलसी अपनी ओर जानियत, प्रभुहि कनौड़ो भरि ॥७॥

इतने पर भी स्वामी मेरा भला कर रहे हैं, पूर्व में करते आये हैं और आगे भी करेंगे। तुलसी जानता है कि मेरे लिये स्वामी ही एहसानमन्द होकर कृतज्ञता पूरी करेंगे ॥७॥

(१७२)

कबहुँक हौं एहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपाल कृपा तें, सन्त सुभाव गहौंगो ॥१॥

कृपालु श्रीरघुनाथजी की कृपा से सन्तों का स्वभाव ग्रहण कर कभी मैं इस रीति से रहूँगा ?॥२॥

जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो ।
पर हित निरत निरन्तर मन क्रम, बचन नेम निवहौंगो ॥२॥

जो कुछ मिले उससे सदा सन्तुष्ट रह कर किसी से कुछ नहीं चाहूँगा। परोपकार में तत्पर होकर निरन्तर मन, कर्म और वचन से प्रतिज्ञा पूरी करूँगा ॥२॥

परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो॥३॥

कानों से अत्यन्त असहनीय कर्कश बचनों को सुन कर उसकी अग्नि में ईर्ष्या से नहीं जलूँगा । अभिमान रहित रहकर, शान्त और शीतल मन से समबुद्धि रहूँगा और पराये के गुण दोषों को नहीं कहूँगा ॥३॥

'परिहरि देह जनित चिन्ता दुख-सुख सम बुद्धि सहाँगो।
तुलसिंदास प्रभु एहि पथ रहि, अविचल हरिभगति लहाँगो ॥४॥

शरीर से उत्पन्न चिन्ता को त्याग कर दुःख और सुख समान बुद्धि से सहन करुंगा। हे प्रभो! क्या तुलसीदास इस रास्ते में रह कर निश्चल हरिभक्ति प्राप्त करेगा ॥४॥

(१७३)

नाहि न आवत आन भरोसो ।
एहि कलिकाल सकल साधन तरु, है स्त्रम फलनि फरोसो ॥१॥

श्री राम नाम के सिवा मेरे मन को किसी अन्य साधन पर भरोसा नहीं होता, इस कलिकाल में सब साधन रूपी वृक्षों पर केवल परिश्रम रूपी फल फलते हैं अर्थात कलियुग में सभी साधनाओं से परिश्रम के सिवा सिद्धि प्राप्त नहीं होती ॥१॥

तप तीरथ उपवास दान मख, जो जेहि रुचइ करो सो।
पायहि पै जानिबो करम फल, भरि भरि वेद परोसो ॥२॥

तपस्या, तीर्थाटन, व्रत, दान और यज्ञ जिसको जो अच्छा लगे वह करे। वेदों ने इनको खूब भर भर कर परोसा है अर्थात् उनके फलों की अनन्त महिमा गाई है, किन्तु कर्मों के प्रभाव को फल मिलने ही से जाने जा सकते हैं अर्थात शरीर त्यागने पर कौन से फल की प्राप्ति होगी इसको अभी कैसे कहा जा सकता है, यह तो शरीर त्यागने के उपरांत ही पता चलेगा ॥२॥

आगम-विधि जप जाग करत नर, सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहुँ न जोग सिधि साधन, रोग बियोग धरो सो ॥३॥

शास्त्र की विधि से मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं, किन्तु तिनके के बराबर भी काम नहीं होता। योग के साधन में सुख की सिद्धि तो सपने में भी नहीं होती, उलटे उसमें रोग और वियोग रहता है ॥३॥

काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि, ज्ञान बिराग हरो सो।
बिगरत मन सन्यास लेत जल,-नावत आम घरो सो॥४॥

काम, क्रोध, मद, लोभ और अज्ञान मिल कर ज्ञान वैराग्य को हर लेते हैं। और बिना वैराग्य के सन्यास लेने से मन कच्चे घड़े में पानी डालने के समान बिगड़ जाता है ॥४॥

बहु मत सुनि बहु पन्थ पुरानन्हि, जहाँ तहाँ झगरों सो।
गुरु कहे राम भजन नीको मोहि, लगत राजडगरो सो ॥५॥

अनेकों मत और अनेक रास्ते के लिये पुराणों का जहाँ तहाँ झगड़ा सुन कर गुरुजी के कथनानुसार मुझे रामभजन ही राजमार्ग के समान अच्छा लगता है ॥५॥

तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि,-फिरि पचि मरइ मरो सो।
राम नाम बोहित भव-सागर, चाहइ तरन तरो सो ॥६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि विना विश्वास और प्रीति के फिर फिर कर अर्थात अन्य साधनों में लग कर जो मरना चाहै वह मरे। जो संसार रूपी समुद्र से पार होना चाहे वह राम नाम रूपी जहाज़ का सहारा ले ॥६॥

(१७४)

राग-सोरठी।

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥ १॥

जिन्हें राम-जानकी प्यारे नहीं हैं, यद्यपि यह परम स्नेही ही क्यों न हो तो भी उसको करोड़ों शत्रु के समान जान कर त्याग देना चाहिये ॥१॥

तजेउ पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महँतारी ।

बलि गुरु तजेउ नाह व्रजवनितन्ह, भे जग मङ्गलकारी ॥२॥

प्रह्लाद ने अपने पिता को, विभीषण ने अपने भाई को और भरतजी ने अपनी माता को त्याग दिया। बलि ने अपने गुरु को और ब्रज गोपिकाओं ने अपने पति को त्याग दिया, परन्तु यां सभी संसार में मंगल कारी हुए ॥२॥

नातो नह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटइ, बहुतक कहउँ कहाँ लौं ॥३॥

रामचन्द्रजी के स्नेह के नाते जितने सुहृदय, मित्र और सुन्दर सेवा करने योग्य हैं केवल उनको मानना चाहिये। अब अधिक क्या कहूं, वह अंजन किस काम का जिससे आँख फूट जाएँ ॥३॥

तुलसी सोइ आपनो सकल बिधि, पूज्य प्रान तेँ प्यारो।
जासाँ होइ सनेह राम साँ एतो मतो हमारो ॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हमें तो सब तरह से वही पूज्य और प्राणों से भी बढ़ कर प्यारा है जिसके कारण श्री रामचन्द्रजी के चरणों से प्रेम बढे, बस हमारा तो यही सिद्धान्त है ॥ ४ ॥

(१७५)

जौपै रहनि राम साँ नाही।

तौ नर खर कूकर सूकर सम, जाय जियत जग माहीं ॥१॥

यदि रामचन्द्रजी से प्रेम नहीं है तो मनुष्य गदहे, कुत्ते और सुअर के समान संसार में व्यर्थ जीवित रहता है ॥१॥

काम क्रोध मद लोभ नाँद भय, भूख प्यास सबही के ।
मनुज-देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय पी के ॥२॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, निद्रा, डर, भय भूख और प्यास सभी शरीरधारियों में है। मनुष्य देह की देवता और सज्जन सराहना करते हैं वह श्री सीतानाथ श्री राम जी के स्नेह के सम्बन्ध से ही है ॥२॥

सूर सुजान सपूत सुलच्छन, गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इनारुन के फल, तजत नहीं करुआई ॥३॥

उसी को शूर वीर, चतुर, सुपुत्र, सुन्दर लक्षण वाला और बड़े गुणवानों में गिनना चाहिये। बिना हरिभजन के वह कैसा ही सुघड़ क्यों न हो वह इन्द्रायन के फल के समान है जो सुन्दर होने पर भी अपना कड़वापन नहीं छोड़ता है ॥३॥

कीरति कुल करतूति भूति भलि, सील सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस, सालन साग अलोने ॥४॥

कीर्ति, ऊंचा कुल, अच्छी करनी, ऐश्वर्य, शील और रूप यदि अच्छा सुन्दर है परन्तु प्रभु रामचन्द्रजी के प्रेम से रहित है तो तुलसीदासजी कहते की हैं यह सारे गुण और सुन्दरता ऐसी ही फीकी है जैसे बिना नमक के सब्जी और भाजी फीकी लगती है ॥ ४॥

(१७६)

राखेउ राम से स्वामि सौं, नीच नेह न नातो।
एते अनादर होतहू तोहि ते नहिँ हातो ॥ १ ॥

अरे नीच ! रामचन्द्रजी के समान स्वामी से तूने स्नेह का नाटा नहीं रक्खा परन्तु इतना अनादर होने पर भी भी उन्होंने तुझे दयावश नहीं छोड़ा ॥ १ ॥

जोरे नित नाते नये, नेह फोकट फीके।
देह के दाहक भलेही, बने गाहक जी के ॥२॥

तूने नित्य स्नेह के नए नए नीरस नाते जोड़े, जो देह के जलानेवाले और जान के ग्राहक थे अर्थात इस सांसारिक नातों से तुझे कभी सुख शान्ति कभी नहीं मिली ॥२॥

अपने अपने को सबै, लोग चाहत नीको ।
मूल दूनहुँ को दयाल, दूलह प्रिय सी को ॥३॥

अपनी अपनी सब लोग भलाई चाहते हैं, लोक-परलोक दोनों की भलाई की जड़ दया के स्थान प्यारे जानकीवल्लभ श्री रामचन्द्रजी हैं ॥३॥

जीवहु के जीवन नाथ, प्रानहुँ के प्यारे।
सुखहू के सुख राम, सो तें निपट बिसारे ॥४॥

स्वामी जीवों के भी जीवन और प्राणों के प्यारे हैं । सुख के सुख-रामचन्द्रजी को तूने सभी प्रकार से भुला दिया ॥४॥

किये हैं करेंगे औसि, तो से खल को भलो।
ऐसे सुसाहेब राम साँ, तू क्यों कुचाल चलो ॥५॥

तेरे समान दुष्ट की भलाई उन्होंने की है और आगे भी अवश्य करेंगे। ऐसे अच्छे स्वामी रामचन्द्रजी से तू क्यों ऐसी कुचालें चल रहा है ॥५॥

तुलसी तेरी भलाई, जोपै अजहूँ सूझे।
राँड़उ राउत होत है, रन फिरि के जूझै ॥६॥

हे तुलसी ! यदि तू अब भी समझ जाए तो तेरी ही भलाई होगी। युद्ध में बार बार लड़ने से कायर भी शूरवीर होता है॥६॥

(१७७)

जौं तुम्ह त्यागहु हौं नहिँ त्यागौँ।
परिहरि पाँय काहि अनुरागाँ ॥१॥

यदि आप भी मुझे त्याग देंगे तो भी मैं आपको नहीं त्यागूँगा, आप के चरणों को छोड़ कर और मैं किससे प्रेम करूँ ॥१॥

सुखद सुप्रभु तुम्ह सौं जग माही। स्त्रवन नयन मन गोचर नाहीं॥
हाँ जड़ जीव ईस रघुराया। तुम्ह मायापति हाँ बस माया ॥२॥

आप के समान सुन्दर सुखदायी स्वामी संसार में न तो कानों से सुनता हूँ, न ही आँखों से देखता हूँ और न मन से ही अनुमान में आता है। है रघुनाथजी ! मैं मूर्ख जीव हूँ आप ईश्वर हैं, आप मायाधीश हैं और मैं माया के अधीन हूँ ॥२॥

हाँ तो कुजाचक स्वामि सुदाता ।हाँ कपूत तुम्ह हित पितु माता ॥
जोपै कहूँ कोउ बूझत बातो। तौ तुलसी बिन मोल विकातो ॥३॥

मैं तो कृत्घन मांगने वाला हूँ और आप अच्छे दानी राजा हैं, मैं कपुत्र हूँ और आप हितकारी माता पिता हैं। यदि तुलसी की कोई बात भी पूछता तो मैं बिना मोल के बिक जाता ॥३॥

(१७८)

भयहु उदास राम मेरे आस रावरी ।
आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥
जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिये।
नेम प्रेम के निबाहे चातक सराहिये ॥१॥

हे रामचन्द्रजी। भले ही आप का चित्त मेरी ओर से हट गया हो, किन्तु मुझे तो केवल आप से ही की आशा है। दुःखी और स्वार्थी सब पागलों की सी बाते कहते हैं । जीवन रुपी जल को प्रदान करने वाले मेघ को क्या चाहिए? अर्थात वह निःस्वार्थ जगत की भलाई के लिये जल बरसाता है औए किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखता। परन्तु अपना नियम और प्रेम निबाहने के लिए सराहना चातक की होती है ॥२॥

मीन ते न लाभ लेस पानी-पन्य पीन को।
जल बिन थल कहाँ मीचु बिन मीन को ।
बड़हि की ओट बलि बाँचि आये छोटे हैं।
चलत खरे के सङ्ग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥२॥

पवित्र पुष्टकारक जल को मछली से थोड़ा सा भी लाभ नहीं है, परन्तु मछली के लिए पानी के बिना ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ वह अपने प्राणों की रक्षा कर सके? बलिहारी जाता हूँ! देखिए बड़ों की आड़ में ही सदैव छोटे बचते आये हैं और खरे सिक्केके साथ जहाँ तहाँ खोटे भी चल जाते हैं ॥२॥

एही दरबार भलो दाहिनेहू बाम को ।
मो को सुखदायक रोसो राम नाम को ॥
कहत नसानी होइहै हिये माहिँ नीकी है।
पानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥३॥

आपके दरबार में भले बुरे, सभी का कल्याण होता है और मुझे को केवल सुखदाई राम नाम का ही भरोसा है। हे नाथ ! कह देने से भेद खुल जाएगा, किन्तु हदय में रखना अच्छी प्रीति है, हे कृपानिधान ! आप तो तुलसी के मन की जानते हैं ॥३॥

(१७९)

राग-बिलावल

कहाँ जाउँ कासौं कहउँ कौन सुनै दीन की ।
त्रिभुवन तुहाँ गति सब अङ्गहीन की ॥ १ ॥

कहाँ जाऊँ किससे कहूँ मुझ दीन की अब कौन सुनेगा ? तीनों लोक में सभी अंगों से हीन मुझ जैसों को केवल आप ही का सहारा है ॥१॥

जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार को अधार गुन गन तेरे हैं ॥
गजराज काज खगराज तजि धायो को।

मो से दोस-कोस पोसे तो से माय जायो को ॥२॥

वैसे तो संसार में हर घर में अनेकों जगदीश अर्थात पृथ्वीनाथ भरे हैं तो भी निराश्रितों के लिये आप की ही गुणावली आधार रूप है। हाथी को छुड़ाने के लिए गरुड़ को छोड़ कर कौन दौड़ पड़ा था? और मेरे समान दोषों के भण्डार का पालन-पोषण करने और कौन हैं? ऐसे एक आप को छोड़ कर किस माता ने पुत्र उत्पन्न किया है ?॥२॥

मो से कूर कायर कपूत कौड़ी आधको ।
कियेउ बहु मोल तू करैया गीध स्त्राध को।
तुलसी की तेरेही बनाये बलि बनेगी।
प्रभु की बिलम्ब अम्ब दोष दुख जनगी ॥३॥

मुझ जैसे कुमार्गी, कायर, कपूत और आधी कौड़ी की कीमत वाले को भी आपने उसी प्रकार कृतार्थ कर दिया जैसे आपने गिद्ध का श्राद्ध करके उसे कृतार्थ किया था। बलिहारी जाता हूँ! तुलसी की बिगड़ी बात तो आप बनाने से ही बनेगी, यदि आपने मेरा उद्धार करने में विलम्ब किया तो रह देहरूपी माता दोष और दुःख ही उत्पन्न करेगी ॥३॥

(१८०)

बारक बिलोकि वलि कीजै मोहि आपनों।
राय दसरथ के तू उथपन थापनों ॥१॥

हे राजा दशरथजी के प्यारे ! मैं तुम्हारी बलिहारी जाता हूँ, एक बार निहार कर मुझे अपना लीजिये, हे नाथ ! आप उजड़े हुए जीवों को पुन: बसानेवाले हैं ॥१॥

साहेब सरनपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेतही सुखेत होत ऊसरो ॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥२॥

आप के समान शरणागतों की रक्षा करनेवाला बलवान स्वामी कोई अन्य नहीं है, आप का नाम लेते ही ऊसर खेत भी सुन्दर उपजाऊ हो जाता है। आप के वचन और कर्म मेरे मन में गड गए हैं अर्थात दृढ रूप से स्थापित हो गए हैं और मैंने दुनियाँ में जितने अन्य बड़े हैं उन सब को देखा, सुना और जाना है। ॥२॥

कौन कियो सनमान समाधान सीला को ।
भृगुनाथ सारिखो जितैया कौन लीला को ॥
मातु पितु बन्धु हित लोक बेद पाल को ।
बोल को अचल नत करत निहाल को ॥३॥

पत्थर-अहिल्या का सम्मान-पूर्वक सन्देह दूर करके किसने उसे शान्ति प्रदान की? और किसने परशुराम के समान महाक्रोधी ऋषि को खेल-खेल में ही जीत लिया? माता, पिता और भाई के उपकारार्थ लोक-वेद की मर्यादा का किसने पालन किया ? वचनों का अविचल और दीनों को केवल प्रणाम मात्र से प्रसन्न करने वाला कौन है ? ॥३॥

सङ्ग्ही सनेह बस अधम असाध को ।
गीध सबरी को कहो करी है सराध को ॥
निराधार को अधार दीन को दयालु को।
मीत कपि केवट रजनिचर भाल को।॥४॥

दुष्ट अधर्मियों को स्नेह वश शरण में लेना और गिद्ध शवरी का माता पिता की तरह श्राद्ध कहिये किसने किया ? जिनका कोई सहारा नहीं है के आधार और दीनों के लिए दयालु कौन है ? बन्दर, मल्लाह, राक्षस और भालू का मित्र आप के सिवा दूसरा कौन है ? ॥४॥

रङ्क निरगुनी नीच जे जे तें निवाजे हैं।
महाराज सुजन समाज ते बिराजे हैं ।
साँची बिरदावली न बढ़ि कहि गई है।
सीलसिन्धु ढील तुलसी की बार भई है॥५॥

हे महाराज ! जिन जिन दरिद्रों, निर्गुणी और नीचों पर आपने दया की है,वह सभी सज्जन मण्डली में विराजते हैं । यह आपके सच्चे यश

का वर्णन किया गया है, एक शब्द भी बढ़ा कर नहीं कहा, किन्तु हे शील सागर! तुलसी की लिए न जाने क्यों आप इतनी देर कर रहे हैं॥५॥

(१८१)

<u>राग-सारठी</u>

केहू भाँति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिये ।
मो को और ठौर न सुटेक एक तेरिये ॥१॥ -

हे कृपासिन्धु ! किसी तरह मेरी ओर भी देखिए, मुझे केवल आपका ही का सुन्दर सहारा है और कहीं भी ठौर ठिकाना नहीं है ॥२॥

सहस सिला तँ अति जड़ मति भई है।
कासौँ कहाँ कवने गति पाहनहिँ दई है ॥
पद राग जाग चहउँ कौसिक ज्याँ किया है।
कलिमल दल देखि भारी भीति भियो है ॥२॥

पत्थर से हज़ारगुना बढ़ कर मेरी बुद्धि अत्यन्त जड़ है। किससे कहूँ पत्थर को आपने सिवा किसने मुक्त किया है । मैं आप के चरणों की प्रीति रूपी यज्ञ करना चाहता हूँ, जैसे विश्वामित्रजी ने किया है। परन्तु किन्तु कलि के पापरुपी सेना को देख कर मुझे भारी भय हो रहा है ॥२॥

करम कपीस बाली बली त्रास त्रसेउ हाँ।
चाहत अनाथनाथ तेरी बाँह बसेउ हाँ॥
महा मोह रावन बिभीषन ज्याँ हयो है।
त्राहि तुलसीस त्राहि तिहूँ ताप तयो है ॥३॥

मैं कुटिल कर्म रूपी बलवान बालि के डर से भयभीत हूँ, हे अनाथों के नाथ! आप की भुजा के बल पर बसना चाहता हूँ। महा मोह रूपी रावण मुझ जैसे विभीपण मार रहा है, हे स्वामी! तुलसी तोनों तापों से जल रहा है, मेरी रक्षा कीजिये मेरी रक्षा कीजिये ॥३॥

(१८२)

नाथ गुन-गाथ सुनि होत चित चाउ सो ।
राम रीझये की जानो भगति न भाउ सो॥१॥

हे स्वामी ! आपके गुणों की कथा सुन कर उससे चित्त में लालसा होती है, किन्तु हे रामचन्द्रजी ! आप भक्ति और भाव से प्रसन्न होते हैं, उसे मैं नहीं जानता ॥१॥

करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाउँ सो।
सुधन न सुतन न सुमन सुभाउ सो ॥
जाची जल जाहिं कहइ अमिय पित्राउ सो ।
कहा कहउँ काहू साँ न बढ़त हियाउ सो ॥२॥

न मेरा कर्म अच्छा हैं न स्वाभाव, न समय अच्छा है, न ही मेरा कोई स्वामी है, न मेरा कोई ठौर ठिकाना है न मेरे पास अच्छा धन है और न ही अच्छा शरीर है, न मेरा मन श्रेष्ठ है और न वैसी बड़ी आयु है। जिससे प्यास बुझाने के लिए पानी माँगता हूँ वह कहता है अमृत पिलाओ, क्या कहूँ किसी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती है ॥२॥

बाप बलिजाउँ आप करिये उपाउ सो ।
तेरेही निहारे परइ हारेहू सुदाउ सो ॥
तेरेही सुझाये सूझइ असुझ सुझाउ सो ।
तेरेही बुझाये बूझइ अबुझ बुझाउ सो ॥३॥

हे पिता तुल्य! मैं बलिहारी जाता हूँ आप मेरे लिए यह उपाय कर दीजिए। आप की कृपादृष्टि से हारे हुए का भी सुन्दर दाँव हाथ लग जाता है । आप ही के सुझाने से अदृश्य वास्तु भी दिखाई देने लग जाती है और आप के ही समझाने से नासमझ को समझ आने लगता है, अत: आप ही उसे सुझा और समझा दीजिए ॥ ३॥

नाम अवलम्ब अम्बु दीन मीनराउ सो ।
प्रभु सो बनाइ कहे जीह जरि जाउ सो ॥
सबइ भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो।
तुलसी सुसाहेबाह दियेउ है जनाउ सो ॥४॥

आपके नाम का आधार जल है और मैं उसमें रहने वाली दीन मीनराज मछली के समान हूँ। यदि मैं स्वामी से कुछ भी अपनी तरफ बना कर कहूं तो यह जीभ जल जाए। मेरी सब तरह से बिगड़ी है; किन्तु अच्छे सुधार की आशा केवल यही बात है कि तुलसी ने उसे श्रेष्ठ स्वामी को जना दिया है ॥ ४॥

(१८३)

राग-असावरी

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई करै छोटे की छोटाई दूरि,
ऐसी विरदावली सुबेद मनियत है ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी आप प्रीति की रीति को भली भाँति जानते है। बड़े की बड़ाई और छोटे की छोटाई दूर करना आपका ऐसा अच्छा यश वेद मानते हैं अर्थात् वेदों ने गाई है ॥१॥

गीध को कियेउ सराध भीलनी के खाये फल,
सोऊ साधु. सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक वेदह आदरी अति,
जोग ज्ञानहूँ तँ ताहि गरू गनियत है ॥२॥

आपने गिद्ध का श्राद्ध किया और भिलिनी के फल खाय उसका साधुमण्डली में अच्छी तरह वर्णन किया है। जिस किसी का आपने आदर किया लोक और वेद दोनों में वह आदर पाता है। आपका प्रेमयोग ज्ञान से भी श्रेष्ठ गिना जाता है ॥२॥

प्रभु की कृपा कृपाल कठिन कलिहु काल,
महिमा समुझि उर माहिँ अनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबन्धु द्वारे हरि हठ ठनियत है ॥३॥

कृपालु स्वामी के कृपा की महिमा समझ कर कठिन कलिकाल में भी उसको हृदय में ले आता हूँ । परन्तु विषयों के पराधीन होने से तुलसी का प्रेम रसहीन हो रहा है, हे दीन बन्धु भगवन्! इसी कार्म मैं आप के दरवाजे पर धरना दिए बैठा हूँ ॥३॥

(१८४)

राम नाम के जपे पै. जाइ जिय की जरनि ।
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये,
जैसें तम नासवें को चित्र के तरनि ॥१॥

श्री राम-नाम के जपने से मन की जलन चली जाती है। कलिकाल में योग, यज्ञादि अन्य उपाय उसी प्रकार व्यर्थ हैं जैसे अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य का चित्र व्यर्थ है ॥१॥

करम कलाप परिताप पाप साने, सब,
ज्यौं सुफूल फूलइ रूख फोकट फरनि ।
दम्भ लोभलालच उपासना विनासि नीके,
सुगति साधन भई उदर भरनि ॥२॥

कर्म के व्यापार सव दुःख और पाप से मिले हैं, कर्मों को संपन्न करना इस समय ऐसा ही है जैसे सुन्दर फूल फूलनेवाला सेमर वृक्ष व्यर्थ अर्थात सार हीन फल फलता है । पाखण्ड,लोभ और तृष्णा ने आराधना का अच्छी तरह से नाश कर डाला है; क्योंकि मोक्ष की साधनाएँ आजकल पेट भरने का साधन बना हुआ है ॥२॥

जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ज्ञान,
बचन बिसेष बेष कहूँ न करनि ।
कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटि,
सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥ ३ ॥

न योग, न समाधि, न ज्ञान और वैराग्य बाधा हीन हैं, इनको करने वालों के वचन और वेश तो बड़े लम्बे चौड़े, किन्तु करनी और कहनी सब खोटी है। करोड़ों छल और कुमार्ग की कहावत तथा खोटी चालचलन पर भी यह सब अपने अपने आचरण की बड़ाई करते हैं ॥ ३॥

मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,
सुरसरि तीर कासी धरम धरनि ।

राम नाम को प्रताप हर कह जपइँ आप,
जुग जुग जाने जग बेदह बरनि ॥४॥

गंगा जी के किनारे पुण्य-भूमि काशी में जीवों को मरते समय शिवजी या उपदेश करते हैं ? राम नाम की महिमा का शंकर जी उपदेश करते हैं और स्वयं भी जपते हैं, युग युगान्तरों से संसार जानता है तथा वेद भी वर्णन करते हैं ॥४॥

मति राम नामही साँ रति राम नामही साँ,
गति राम नामही की विपति हरनि ।
राम नाम साँ प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक,
तुलसी ढरेंगे राम आपनी ठरनि ॥५॥

राम नाम ही से बुद्धि, राम नाम ही से प्रीति और राम नाम की ही गति से विपत्तियों का नाश होता है। राम नाम में विश्वास और प्रेम रखने से तुलसीदासजी कहते हैं कि कभी न कभी रामचन्द्रजी अपनी स्वाभाविक दया से अवश्य ही दयालु होंगे ॥५॥

(१८५)

लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच ताज जो हरि तुम्ह कहँ भावत ॥१॥

हे हरे ! मुझे आपका दास कहलाने में लाज नहीं आती। जो आचरण आप को अच्छा लगता है उसको मैं बिना किसी विचार के भुला देता हूँ ॥१॥

सकल सङ्ग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जोग बनावत ।
मो सम मन्द महा खल पाँवर, कवन जतन तेहि पावत ॥ २॥

सब कुछ त्याग कर मुनिजन जप, तप और योग करके जिनका भजन करते हैं। मेरे समान महामूर्ख, दुष्ट और नीच उस प्रभु को किस उपाय से पा सकता हूँ ? ॥२॥

हरि निरमल मल-ग्रसित हृदय असमञ्जस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कङ्क बक सूकर, क्यों मराल तहँ श्रावत ॥ ३ ॥

भगवान निर्मल हैं और मेरा हृदय मलिनता से जकड़ा है, इसी से मुझे असमंजस जान पड़ता है कि जिस तालाब में कौआ, गीध, बगुले और सुअर रहते हैं, वहाँ हंस कैसे आ सकता है ? ॥३॥

जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रय ताप बुझावत ।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति, सरगहु मिटत न सावत ॥४॥

जिनकी शरण में जाकर विद्वान भीषण सांसारिक तीनों तापों बूझाते हैं, वहाँ जाने पर भी मुझे मद, मोह और लोभ और भी अधिक सतायेंगे क्योंकि स्वर्ग में भी ईर्ष्या नहीं मिटती ॥४॥

भव-सरिता कह नाव सन्त यह, कहि औरन्हि समुझावत ।
हौं तिन्ह सौं हरि परम बैर करि, तुम्ह सौं भलो मनावत ॥५॥

सन्त जन संसार रूपी नदी से पार उतारने के लिये नौका रूप है, यह कह कर मैं दूसरों को समझाता हूँ। हे हरे ! मैं उनसे अतिशय शत्रुता करके आप से अपनी भलाई चाहता हूँ ॥५॥

नाहिन और ठौर मो कहँ ता तँ हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार चूड़ामनि, तुलसिदास गुन गावत ॥ ६॥

मुझ कोइ दूसरी जगह नहीं है इसी से हठ करके आप से नाता जोड़ता है। हे दानियों के शिरोमणि ! तुलसीदास को शरण में रखिये, यह आप का गुण गान करता है ॥६॥

(१८६)

कवन जतन बिनती करिये ।
निज आचरन बिचारि हारि हिय, मानि जानि डरिये ॥१॥

किस उपाय से विनती करूं? अपने आचरण को विचार कर हृदय में हार मान कर समझ कर डरता हूँ ॥६॥

जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये।

जाते विपति जाल निसि दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥

हे हरे ! जिन साधनों से अपना दास समझ कर आप प्रसन्न होते हैं उसको मैं हठपूर्वक त्यागे हुए हूँ। और उसी कुमार्ग पर चला जाता हूँ जहाँ विपत्ति के जाल में फँसकर रात दिन दुःख ही प्राप्त होता है ॥२॥

जानतहूँ मन बचन करम पर-हित कीन्हे तरिये ।
सो बिपरीत देखि पर-सुख विनु कारनहीं जरिये ॥३॥

यह जानते हुए कि मन, वचन और कर्म से दूसरों पर परोपकार करने से ही संसार-सागर से पार हो सकूँगा । परन्तु उसके विरुद्ध आचरण करता हूँ और दूसरे का सुख देख कर विना कारण ही ईर्ष्या से जलता हूँ ॥३॥

सुति पुरान सबको मत यह, सतसङ्ग सुदिढ़ धरिये ।
निज अभिमान मोह इरिषा बस, तिन्हहिँ न आदरिये ॥४॥

वेद और पुराण सब का यह सिद्धान्त है कि अत्यंत दृढ़ता पूर्वक सत्संग का आश्रय लेना चाहिये। किन्तु मैं अपने अहंकार, अज्ञान और ईर्ष्या के कारण कभी सत्संग का आदर नहीं करता ॥४॥

सन्तत सोइ प्रिय मोहि सदा जा तँ भव-निधि परिये।
कहउँ अब नाथ कवन बल तैं, संसार-सोक हरिये ॥५॥

मुझे तो सदा सर्वदा वही प्यारा लगता है जिससे मैं संसार-समुद्र में ही पड़ा रहूँ। हे नाथ ! अब किस बल से प्रयत्न करूँ जिससे मेरा संसारी-शोक दूर हो सके ॥५॥

जब कब निज करुना सुभाव तँ, द्रवह तो निस्तरिये।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिँ, कत पचि पचि मरिये ॥६॥

जब कभी आप करुणा स्वभाव से मुझ पर दया करेंगे तो मुझे छुटकारा मिल जायगा । तुलसी दास को किसी दूसरे पर विश्वास नहीं है, फिर वह क्यों कहीं और पूर्ण रूप से तन्मय होकर मरेगा ॥६॥

(१८७)

ताही ते आयउँ सरन सबेरे ।
ज्ञान बिराग भगति साधन किछु, सपनेहुँ नाहिन मेरे ॥ १॥

मैं इसी कारण से पहले ही अर्थात आयु रहते ही आप की शरण आया हूँ। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि कुछ साधन तो सपने में भी मेरे पास नहीं है ॥१॥

लोभ मोह मद क्रोध बोधरिपु, रहत रैन दिन घेरे।
तिन्हहिँ मिले मन भयउ कुपथ-रत, फिरइ तुम्हारेहि फेरे ॥२॥

लोभ, मोह, मद, क्रोध और अज्ञान रातोदिन घेरे रहते हैं । उनसे मिल कर यह मन कुमार्ग में लगा है वह आप ही के फेरने से फिरेगा ॥२॥

दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद, कहत सन्त स्तुति टेरे।
जानतहूँ अनुराग तहाँ अति, सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥३॥

यह विषय दोषों के स्थान और शोक प्रदान करने वाले है, सन्तजन तथा वेद पुकार पुकार कर कहते हैं । यह जानते हुए भी मेरा विषयों से अत्यंत प्रेम है, हे हरि ! यह आप ही की प्रेरणा है अन्यथा मैं ऐसा क्यों करता ॥३॥

बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे।
तुम्ह सम ईस कृपाल परम हित, पुनि न पाइहउँ हेरे ॥४॥

आप विष को अमृत और अग्नि को हिम के समान कर सकते हैं, और बिना जहाज़ के ही समुद्र के पार उतार सकते हैं। आप के समान परम हितैषी और कृपालु स्वामी फिर ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा ॥४॥

अस जिय जानि रहउँ सब तजि, रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यह बिपति बागुरा, तुम्ह साँ बनिहि निबेरे ॥ ५ ॥

हे रघुनाथजी ! इस बात को हृदय में धारण कर हे रघुनाथ जी मैं सब कुछ त्याग कर आपके भरोसे ही रहता हूँ। तुलसीदास का यह विपत्ति का फन्दा केवल आप ही से छुड़ा सकते हैं ॥५॥

(१८८)

मैं तोहि अब जानेउँ संसार ।
बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल, प्रगट कपट प्रागार ॥१॥

अरे संसार ! अब मैं तुझे जान गया कि तू कपट का स्थान प्रसिद्ध है; किन्तु भगवान के बल के कारण तू मुझे बाँध नहीं सकता ॥२॥

देखतही कमनीय कछू नाहिन पुनि किये बिचार ।
ज्याँ कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निसरइ सार ॥२॥

तू मात्र देखने में ही सुन्दर है फिर विचार करने पर तू कुछ नहीं है, जैसे केले के वृक्ष को चीर कर देखने से कभी सार नहीं निकलता ॥२॥

तेरे लिये जनम अनेक मैं ,फिरत न पायउँ पार ।
महा मोह मृग-जल सरिता मह, बोरेउ बारहि बार ॥३॥

तेरे लिये मैं अनेक योनियों में घूमता फिरा परन्तु पार नहीं पाया, महा अज्ञान रूपी मृगजल की नदी में तूने मुझे बार बार डुबोया ॥३॥

सुनु खल छल बल कोटि किये बस, होहिँ न भगत उदार ।
सहित सहाय तहाँ वसु अब जहि, हृदय न नन्दकुमार ॥४॥

अरे दुष्ट ! सुन, करोड़ो प्रकार के छल बल करने से भी श्रेष्ठ भक्त तेरे वश में नहीं हो सकता। तू अब अपने सहायकों के सहित वहाँ निवास करे जिसके हृदय में श्री कृष्ण भगवान् का वास न हो ॥४॥

तासाँ करइ चातुरी जो नहि, जानइ मरम तुम्हार ।
सो परिमरइ डरइः रजु अहि तें, बूझइ नहिँ ब्यवहार ॥५॥

तू उससे चालाकी करे जो तेरा भेद न जानता हो । वही रस्सी रुपी साँप से वही डर कर मरेगा जो उसके व्यवहार को नहीं समझेगा ॥५॥

निज हित सुनु साठ हठ न करहि जौं, चहहि कुसल परिवार ।
तुलसिदास प्रभु के दासन्ह तजि, भजहि जहाँ मद मार ॥६॥

अरे दुष्ट ! सुन, यदि परिवार के सहित अपना कुशल चाहता है तो हठ मत कर, तुलसीदास के स्वामी के दासों को छोड़ कर तू केवल उनकी सेवा कर जहाँ मद और काम हों ॥६॥

(१८९)

राग-गौरी

राम कहत चलु राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहित भव-बेगारि परिहउ पनि, छूटब अति कठिनाई रे ॥१॥

अरे भैया ! राम राम कहते चलो, राम राम कहते चलो, अन्यथा संसार की बेगार में पकडे जाओगे तो फिर छूटना बड़ा कठिन हो जायगा ॥१॥

बाँस पुरान साज सब अटकठ, सरल तिकोन खटोला रे।
हमाह दिहल करि कुटिल करमचंद मन्द मोल बिनु डोला रे ॥२॥

यह शरीर पुराने बाँस से बना हुआ सड़ा हुआ तीन कोन का खटोला है! कुटिल कर्मचन्द बढ़ई ने दगाबाज़ी करके बिना कीमत का यह डोला हमें दिया है ॥२॥

बिषम कहार मार मद माँते, चलहि न पाँव बटोरा रे ।
मन्द बलन्द अभेरा दलकन, पाइय दुख झकझोरा रे ॥३॥

विषम अनमेल छोटे बड़े कहार काम के मद से मतवाले हो रहे हैं अर्थात पैर बचा कर नहीं चलते हैं जिससे डोला के नीचे ऊँचे होने, टकराने, हिलने और धक्का लगने से अत्यंत दुःख होता है ॥३॥

काँट कुराय लपेटन लोटन, ठाँवहिँ ठाँव बझाऊ रे ।
जस जस चलिय दूर तस तस निज-बास न भेंट लगाऊ रे ॥४॥

रास्ते में कांटे बिछे हैं, लपटने वाले झाड़ और जगह जगह फसानेवाली लताएँ हैं । जैसे जैसे चलता हूँ वैसे वैसे त्यो अपना घर मिलने का पता नहीं, दूर सुनने में आता है ॥४॥

मारग अगम सङ्ग नहिँ सम्बल, नाउँ गाउँ कर भूला रे ।
तुलसिदास भव त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

रास्ता अत्यंत दुर्गम है, कोई साथी नहीं है और न ही राहखर्च है, यहाँ तक कि अपने गाँव का नाम ही भूल गया हूँ। तुलसी दासजी कहते हैं-हे रामचन्द्रजी ! प्रसन्न होकर अब मेरा संसारी-भय हर लीजिये ॥५॥

(१९०)

राग-असावरी

सहज सनेही राम सौं, तैं किये न सहज सनेह ।
तातैं भव भाजन भयउ, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥१॥

स्वभाव से स्नेह करनेवाले श्री रामचन्द्रजी से तूने स्वाभाविक प्रीति नहीं की। इसी से तू संसार का पात्र हुआ है अब भी मेरा यह शिक्षा सुन ॥१॥

ज्यौं मुख मुकुर बिलोकिये, अरु चित न रहइ अनुहारि।

त्याँ सेवतह निरापने, ये मातु पिता सुत नारि ॥२॥

जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिंब दिकाही देता है और वह आकृति मन में नहीं रहती, वैसे ही सेवा करते हुए भी माता, पिता, पुत्र, स्त्री यह सभी अपने नहीं हैं ॥२॥

देइ सुमन तिल वासि के, पुनि खरि परिहरि रस लेत ।
स्वारथ हित भूतल भरे, इमि मन मेचक तनु सेत ॥३॥

जैसे सुगन्धित फूल देकर तिल को खुशबूदार करके फिर तेल निकाल लेते हैं और खली को त्याग देते हैं। इसी तरह ऐसे स्वार्थी सम्बन्धी धरती में भरे हैं, उनका मन काला और शरीर श्वेत है ॥३॥

करि बीतेउ अब करत है, करिवे हित मीत अपार ।
कतहुँ न कोउ रघुबीर सोँ, नित नेह निवाहनिहार ॥४॥

अपनी भलाई के लिये ऐसे तूने न जाने कितने मित्र बनाए, कितने बना रहा है और आगे भविष्य में भी बनाना चाहता है । रघुनाथजी के समान नित्य स्नेह निबाहने वाला कहीं भी कोई नहीं है ॥४॥

जासोँ सब नाते फुरइ, तासोँ न करी पहिचानि ।
ता तें कछु समुझ नहीं, मन कहा लाभ कह हानि ॥ ५ ॥

अरे ! जिस भगवान् के नाते प्रतीत होती है उसके साथ तूने पहचान नही की, हे मन ! इसी से तूने कुछ नहीं जाना कि क्या लाभ है और क्या हानि है ॥५॥

साँचो जानेउ झूठ कै, झूठे कह साँचो जानि।
को न गयउ को न जात है, को न जइहै करि हित-हानि ॥६॥

जिन्होंने मिथ्या जगत को सच माना और सत्य परमात्मा को झूठ माना, उनमें ऐसा है जो यथार्थ कल्याण का नाश संसार से नहीं चला गया, नहीं जा रहा और आगे कौन नहीं जाएगा? ॥६॥

बेद कहेउ बुध कहत हैं, अरु हौं हूँ कहत हौं टेरि ।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिय की आँखिन्ह हेरि ॥७॥

वेदों ने कहा है, विद्वान कहते हैं और मैं भी पुकार कर कहता हूँ कि तुलसी के स्वामी श्री राम चन्द्र ही सच्चे हितैषी है, तु जरा अपने हृदय की आँखों से देख ॥७॥

(१९१)

एक सनेही साँचिलो, जग केवल कोसलपालु।
प्रेस कनौड़ों रामसौं, प्रभु नहिँ दूसरो दयाल ॥ १॥

जगत में सच्चे स्नेही केवल एक अयोध्यानरेश है । प्रेम के एहसान से दबनेवाला स्वामी रामचन्द्रजी के समान कोई दूसरा दयालु नहीं है ॥१॥

तनु साथी सब स्वारथी, हैं सुर ब्यवहार सुजान ।
भारत अधम अनाथ को, हित को रघुवीर समान ॥२॥

शरीर के साथी अर्थात सभी इन्द्रियाँ सभी स्वार्थी हैं और उनके देवता विषय व्यापार में चतुर हैं अर्थात जितनी सेवा करोगे उतना ही फल देंगें। दुखी, पापी और अनाथों का हित करने वाला श्री रघुनाथजी के समान उपकारी कौन है ? ॥२॥

नाद निठुर समचर सिखी, तिमि सलिल सनेह न सूर ।
ससि सरोंग दिनकर बड़े, सुठि पयद प्रेमरस कूर ॥ ३॥

नाद ध्वन्यात्मक शब्द-रागनिर्दयी, अग्नि समान आचरणवाले हैं, उसी तरह पानी स्नेह का शूरवीर नहीं है। चन्द्रमा रोग युक्त, सूर्य बड़े कहानेवाले और बादल प्रेमरस में अत्यन्त ही निर्दयी है ॥३॥

नाद-मृग उसे सुन कर मेहित हो कर उसका दास हो जाता है; पर वह अपने प्रेमी की कुछ भी सहायता नहीं करता।अग्नि-जैसे समस्त पदार्थों को भस्म करते उसी तरह अपने प्रेमी पतंगे को भी जला डालते हैं । पानी-बिना मछली शरीर त्याग देती है, परन्तु वह उसकी परवाह नहीं करता। चन्द्रमा रोगी है इस दोष का ख्याल न करके

चकोर उससे प्रेम करता है। सूर्य कहने को बड़े हैं, पर अपने प्रेमी कमल को जला डालते हैं, बादल-से चातक स्नेह रखता है। किन्तु वह प्रेमरस में बड़ा भयावना उस पर ज़रा भी दया नहीं दिखाता। ॥३॥

जाको मन जा साँ बँधो, ता कह सुखदायक सोइ ।
सरल सील साहेब सदा, सीतापति सरिस न कोई ॥४॥

जिसका मन जिससे साथ लग जाता है उसको वही सुखदायक होता है । सीतानाथ श्री रघुनाथजी के समान सरीखा, सरल और सुशील स्वामी दूसरा कोई नहीं है ॥४॥

सुनि सेवा सहि को करइ , परिहरइ को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को, आदर अनुराग विसखि ॥५॥

सेवा सुनते ही उसको सही मानना और देख कर भी दोषों को भूल जाना ऐसा कौन करेगा ? किस दरबार में नित्य दीनों का आदर होता है और उन पर अधिक प्रेम किया जाता है। ॥५॥

खग सबरी पितु मातु ज्याँ, माने कपि को किय मीत ।
केवट भैंटेड भरत ज्याँ, ऐसो को पतित-पुनीत ॥६॥

जटायु और शवरी को किसने पिता-माता की तरह माना और वानर को किसने मित्र बनाया। केवट से भरतजी की तरह मिले, ऐसा कौन पापियों को ऐसा पवित्र करनेवाला है ? ॥६॥

देइ अभागहि भाग को, को राखइ सरन सति ।
बेद विदित बिरदावली, कबि कोबिद गावत गीत ॥७॥

अभागे को कौन भाग्यवान बनाता है और भयभीत हुए को कौन शरण में रखता है? जिनका यश वेदों में विख्यात है और कवि विद्वान किसके यश के गीत गाते हैं ॥७॥

कैसउ पावर पातकी, जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँधेउ राम सो, परखेउ न फेरि खर खोट ॥८॥

कैसा ही नीच पापी हो जिसने श्री राम नाम की ओट लिया, श्री रामचन्द्रजी ने उसे वैसे ही अपना लिया जैसे कोई धन मिलनर पर तुरंत गाँठ में बाँध लिया ॥८॥

मन मलीन कलि किलबिषी, है सुनत जासु कृत काज।
सो तुलसी किय आपनो, रघुवीर गरीब-निवाज ॥९॥

जिसके किये कर्मों को सुनकर ही कलि के पापों से मन मैला होता है, उस को अपना दास बना लिया ! रघुनाथजी ऐसे गरीब निवाज़ हैं ॥९॥

(१९२)

जोपि जानकीनाथ सौँ, भयो नातो नेह न नीच ।
स्वारथ पर मारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥ १॥

अरे नीच ! यदि श्री जानकीनाथ श्री राम चन्द्र जी से तेरा प्रेम और नाता नहीं है, तो तेरे स्वार्थ और परमार्थ कैसे सिद्ध होंगे? कपटी कलिकाल ने तुझे बीच में ही ठग लिया अर्थात लोक परलोक दोनों ही बिगाड़ दिए ॥१॥

धरम बरन आस्लमन्हि के, पइयत पोथिही पुरान ।
करतब बिनु बेष बिलोकिये, ज्यौँ सरीर विनु प्रान ॥२॥

वर्ण और आश्रम के धर्म पुस्तक और पुराणों ही में पाए जाते हैं, उनके अनुसार कर्तव्य कोई नहीं करता। ऐसे कर्तव्य हीन, कोरे वेष वैसे ही हैं जैसे बिना प्राण के शरीर ॥२॥

बेद बिदित साधन सबइ, सुनियत दायक फल चारि ।
राम प्रेम विनु जानिबो, जस सर सरिता बिनु बारि॥३॥

वेदों में प्रसिद्ध साधनों को सुनता हूँ कि सब चारों फल देनेवाले हैं। किन्तु बिना राम चन्द्रजी के प्रेम के उन्हें ऐसा जानना चाहिये जैसे बिना ना जल के तालाव और नदियाँ ॥३॥

नाना पथ निरबान के, नाना विधान बहु भाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे, जपु राम नाम दिन राति ॥४॥

मोक्ष के अनेक मार्ग हैं और बहुत तरह के नाना साधन हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि तू मेरे कहने से दिन रात केवल राम नाम को जप ॥४॥

(१९३)

अजहुँ आपने राम के, करतब समुझत हित होइ ।
कहँ तू कहँ कोसलधनी, तोहि कहा कहत सब कोइ ॥१॥

अब भी यदि तू अपनी और श्री रामचन्द्रजी की दया से पूर्ण करनी को समझ ले, तो तेरा कल्याण हो सकता है। कहाँ तू और कहाँ कौशलराज भगवान् श्री रामचन्द्र जी! तुझ को सब कोई क्या कहते हैं? कि यह राम का भक्त है ॥२॥

रीझी निवाजेउ कहिँ तू, कब खीभि दियेउ तोहि गारि ।
दरपन बदन निहारि के, सुविचारि मानि हिय हारि ॥२॥

अरे, जरा विवेकरुपी दर्पण में अपने मन रुपी मुखको तो देख की कब श्री राम ने प्रसन्न हो कर तुझपर कृपा की है और कब उन्होने अप्रसन्न हो कर तुझ को गाली दी है ? जो कुछ दोष है वह तेरा ही है ऐसा विचार कर हृदय में हार मान ले ॥२॥

बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगइ न आधु ।
पाहि कृपानिधि प्रेम सौं, कहे को न राम किय साधु ॥३॥

अनेक जन्म की बिगड़ी बात सुधरने में उन्हें आधा पल भी न लगता। हे कृपानिधान! मेरी रक्षा कीजिये, प्रेम से ऐसा कहने पर कौन सा ऐसा पापी है जिसे श्री रामचन्द्रजी ने किसको साधु नहीं बना दिया ? ॥३॥

बालमीक केवट कथा, कपि भील भालु सनमान ।
सुनि सनमुख जो न राम सौं, तेहि को उपदेसइ ज्ञान ॥४॥

वाल्मीकि मुनि और गुह केवट को कथा, वानर, शबरी और रीछ का सम्मान सुन कर जो रामचन्द्रजी की शरण नहीं होता उसको कौन ज्ञान का उपदेश कर सकता है? अर्थात् वह मूर्ख उपदेश के योग्य नहीं है ॥४॥

का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति रीति निरबाहु ।
तासु बन्धु बधि ब्याध ज्यों, सो सुनत सोहात न काहु ॥५॥

सुग्रीव ने कौन सी सेवा की और प्रीति की रीति का कौन सा निर्वाह किया, परन्तु उसके कल्याण के लिए उसके भाई बालि को बहेलिये की तरह छिप कर मारा जो सुन कर भी किसी को अच्छा नहीं लगता ॥५॥

भजन बिभीषन को कहा, फल कहा दियेउ रघुराज ।
राम गरीबनेवाज की, बड़ि बाँह बोल की लाज ॥६॥

विभीषण ने कौन सा बड़ा भजन किया था था और रघुनाथजी ने उसका क्या फल दिया। गरीव नवाज श्री रामचन्द्रजी को अपनी शरण और अपने वचन की बड़ी लाज है ॥६॥

जपहि नाम रघुनाथ को, चरचा न दूसरी चालु ।
सुमुख सुखद साहेव सुभी, समरथ कृपाल नतपालु ॥७॥

रघुनाथजी का नाम जप, दूसरी चर्चा मत कर क्योंकि श्री राम चन्द्र प्रसन्न वदन, सुखदायक स्वामी, कल्याण कर्ता, दया के स्थान और दीन जनों का पालन करने वाले हैं ॥७॥

सजल नयन गदगद-गिरा, गहबर मन पुलक सरीर ।
गावत गुन गन राम के, केहि की न मिटी भव-भीर ॥८॥

ऐसा कौन है जिसने आँखों में जल भर कर, गद्गद् वाणी से, प्रेमपूर्ण मन से, रोमाञ्चित शरीर से श्री रामचन्द्रजी के गुणों का गान करने से किसका संसारी पीड़ा नहीं मिटी। अर्थात् सब की दूर हुई है ॥८॥

प्रभु कृतज्ञ सरबज्ञ हैं, परिहरु पाछिली गलानि ।
तुलसी तो साँ राम साँ, कछु नइ न जान पहिचानि ॥९॥

प्रभु रामचन्द्रजी कृतविज्ञ और सर्व ज्ञाता हैं, पिछली ग्लानियों को त्याग दे अर्थात् अपने किये अधर्मों को सोच कर हृदय में हार मत मान। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी से तेरी कोई नई जान-पहचान नहीं है ।

(१९४)

जी अनुराग न राम सनेही सौँ ।
तौ लहेउ लाहु कहा नर देही सौँ ॥१॥

यदि रामचन्द्रजी के समान स्नेह करनेवाले स्वामी से प्रेम न हुआ तो मनुष्य-देह से कौन सा लाभ पाया ? ॥१॥

जो तनु धरि परिहरि सब सुख भय, सुमति राम अनुरागी।
सो तनु पाइ अघाइ कियेउ अघ,-अवगुन अधम अभागी ॥२॥

जो शरीर धारण करके अच्छी बुद्धि वाले लोग सब विषय सुख और संसारी-सुखों को विषवत त्याग कर ईश्वर अनुरागी होते हैं। अरे अभागे पापी ! उस शरीर को पा कर तूने भरपेट पाप और दोष ही किया है ॥२॥

ज्ञान विराग जोग जप तप मख, जग मुद मग नहिँ थोरे।
राम प्रेम बिनु नेम जाय जस, मृगजल-जलधि हिलोरे ॥३॥

जगत में ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप और यज्ञादि आनन्द के मार्ग थोड़े नहीं हैं। बिना श्री राम चन्द्र जी के प्रेम-नेम सब वैसे ही व्यर्थ हैं, जैसे मृगतृष्णा की समुद्र की लहरें ॥३॥

लोक बिलोकि पुरान बेद सुनि, समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।
प्रीति प्रतीति राम-पद-पङ्कज, सकल समङ्गल खानी ॥४॥

संसार को देख कर, वेद-पुराणों को सुन कर और ज्ञानी गुरुओं से समझ बूझ कर मैं यह निश्चय कर चुका हूँ की श्री रामचन्द्रजी के चरण कमलों में प्रीति और विश्वास का होना सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की खान है ॥४॥

अजहुँ जानि जिय मानिहारि हिय, होइ पलक महँ नीको ।
सुमिरु सनेह सहित सीतापति, मानि मतो तुलसी को ॥ ५॥

अब भी मन में समझ कर हृदय में हार मान कर अर्थात अभिमान छोड़कर प्रभु की शरण हो जाए तो क्षण भर में भला हो जाएगा। तुलसी की सलाह मान कर स्नेह के साथ सीतानाथ का स्मरण कर ॥५॥

(१९५)

बलि जाउँ हाँ राम गोसाँई । कीजै कृपा आपनी नॉई ॥१॥

हे मेरे नाथ रामचन्द्रजी ! मैं आप की बलि जाता हूँ, अपनी कृपालु स्वाभाव के समान कृपा कीजिये ॥१॥

परमारथ सुरपुर साधन सब, स्वारथ सुखद भलाई।
कलि सकोप लोपी सुचाल निज,कठिन कुचाल चलाई॥२॥

मोक्ष और स्वर्ग प्राप्ति के सब साधन, स्वार्थ के सुख और कल्याणकारक जितने उपाय है उन सभी उपायों को कलिकाल ने क्रोध करके लुप्त कर दिया है और अपने दुखदायी कुरीति चलाई है ॥२॥

जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित, नव बिषाद अधिकाई ।
रुचि भावती भभरि भागहि, समुहाहिँ अमित अनभाई ॥३॥

जहाँ जहाँ यह मन अपना हित देखता है वहाँ नित्य नए दुःख बढ़ते ही जाते है। रुचि को अच्छी लगनेवाली श्रेष्ठ बातें डर कर भागी जा रहा है और न सुहानेवाली असंख्य बुराइयाँ सामने आ जाती हैं ॥३॥

आधि मगन मन व्याधि विकल तन, बचन मलीन झुठाई।
एतेहु पर तुम्ह साँ तुलसी की, सकल सनेह सगाई॥४॥

मन चिन्ता में डूबा हुआ है, शरीर रोग से व्याकुल है और वाणी झूठ बोलने से अपवित्र हो गयी है। इतने पर भी हे नाथ ! आपके साथ इस तुलसीदास का स्नेह स्थायी बना हुआ है ॥४॥

(१९६)

काहे को फिरत मन करत जतन बहु,
दुख न मिटै बिमुख रघकुल वीर ।
कीजै जौँ कोटि उपाइ त्रिविध ताप न जाइ,
कहेउ भुजा उठाइ मुनिवर कीर ॥१॥

अरे मन ! तू किसलिए बहुत से प्रयत्न करता है, जब तक तू श्री रघुकुल शिरोमणि राम जी से प्रतिकूल है तब तक दुसरे साधनों से सुख नागी मिलेगा! भगवत विमुख चाहे करोड़ों उपाय क्यों ना कर ले, पर उसके त्रिताप नष्ट नहीं हो सकते इसको मुनिवर शुकदेवजी ने भुजा उठा कर कहा है ॥१॥

सहज टेव बिसारि तुही धौ देखै बिचारि,
मिले न मथत बारि घृत बिन छीर ।
समुझि तजहिं भ्रम भजहि पद जुगम,
सेवत सुगम गुन गहन गंभीर ॥२॥

अपनी स्वाभाविक अर्थात विषयासक्ति की आदत भुला कर तू ही विचार कर देख कि कहीं पानी के मथने से बिना दूध के घी मिल सकता है। ऐसा समझ कर भ्रम त्याग दे और श्री रामचन्द्रजी के युगल चरणों की सेवा कर जिनकी उपासना सहज है और फल अथाह गहरा है ॥२॥

आगम निगम ग्रन्थ रिषि मुनि सुर सन्त,
सबही को एक मत सुनु मतिधीर ।
तुलसीदास पियास मरै पसु बिनु प्रभु,
जदपि रहै निकट सुरसरि- तीर ॥३॥

हे धीरबुद्धि ! सुन, शास्त्र वेदादि ग्रन्थ, ऋषि, मुनि, देवता और सज्जन सब का एक यही सिद्धान्त है। तुलसीदासजी कहते हैं कि चाहे पशु गंगा जी के तट के समीप रहे, किन्तु बिना स्वामी के वह प्यासा ही मरता है ॥३॥

(१९७)

नाहिन चरन रति ताही तें सहौं विपति,
कहत सकल सुति मान मतिधीर ।
वसै जो ससि उछङ्ग स्वादित सुधा कुरङ्ग
ताहि की निरखि थम रविकर नीर ॥१॥

हरि चरणों में प्रीति नहीं है इसी से मैं विपत्तियां सहता हूँ, समस्त वेद और धीरबुद्धि मुनि यही कहते हैं। जो मृग चन्द्रमा की गोदी में बैठा हुआ अमृत का स्वाद लेता है, क्या उसको सूर्य की किरणों से उत्पन्न मृग तृष्णा रुपी झूठा जल देख कर भ्रम होगा ?

सुनिय नाना पुरान मिटत नहाँ अज्ञान,

पढ़िय नसमुझिय जिमि खग कीर ।
बझत बिनहिं पास सेमर सुमन भास,
करत चरित तेइ फल बिनु हीर ॥२॥

अनेकों पुराण सुनता हूँ किन्तु मेरा अज्ञान वैसे ही नहीं मिटता जैसे तोता पक्षी बोलता तो है पर समझता नहीं। मूर्ख तोता सेमर के फूलों की आशा में बिना बन्धन के ही फँस जाता है परन्तु जैसे ही उसमे चोंच मारता है उसे बिना गीदे का सार रहित फल मिलता है परन्तु वह धोखा खाने पर भी संभलता वही चरित बार बार करता है ॥२॥

कछु न साधन सिधि जानो न निगम बिधि,
नहिं जप तप बस मन न समीर ।
दासतुलसी भरोस परम करुना कोस,
प्रभु हरि हैं विषम तव भव-भीर ॥३॥

न तो मैं कुछ सिद्धियों का साधन जानता हूँ न वेदों की व्याख्या का ही मिझे ज्ञान है, न जप तप है और न मन रूपी पवन ही वश में है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझे तो केवल अत्यन्त करुणा के भण्डार प्रभु श्री रामचन्द्रजी का भरोसा है यही मेरे भयंकर संसारी-भय का हरण करेंगे ॥३॥

(१९८)

मन पछितइहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु, करम बचन अरु ही ते ॥१॥

हे मन ! अवसर बीतने पर तू पछतायेगा । यदि तूने दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त किया है यो कर्म, वचन और मन से श्री हरि के चरणों का भजन कर ॥१॥

सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारेउ, अन्त चले उठि रीते ॥२॥

सहस्रार्जुन और रावण आदि राजा भी बलवान काल से नहीं बचे । जिन्होंने हम हम करके सम्पत्ति से घर सजाया, किन्तु अन्त में खाली हाथ उठ कर चले गये ॥२॥

सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सबही ते ।
अन्तहु तोहि तजहिंगे पाँवर, तू न तजइ अबही ते ॥३॥

पुत्र और स्त्री आदि को स्वार्थी समझ कर इन सब से स्नेह मत कर । अरे नीच ! जब अन्त में तुझे यह त्याग कर जायेंगे तो फिर तू अभी से इनको क्यों नहीं त्याग देता ? ॥३॥

अब नाथहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जीते।

बुझइ न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु धी ते ॥४॥

अरे मूर्ख ! अब भी सचेत होकर स्वामी से प्रेम कर और दुष्ट कामनाओं को मन से त्याग दे। तुलसीदासजी कहते हैं कि विषयभोग रूपी बहुत से घृत द्वारा कामाग्नि बुझती नहीं है ॥४॥

(१९९)

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरि-चरन-सरोज सुधा-रस, रवि-कर-जल लय लायो ॥ १ ॥

अरे मूर्ख मन ! तू भगवान के चरण कमली के प्रेम रूपी अमृत रस को छोड़ कर सर्य के किरण रूपी मृगतृष्णा के झूठे जल में लय लगा कर काहे को दौड़ता फिरता है? ॥१॥

त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह वनिता सुत वन्धु भये बहु, मातु पिता जिन्ह जायो ॥२॥

तीनों लोकों में देवता, मनुष्य, दैत्यों के अतिरिक्त संसार की समस्त दूसरी योनियों में मैं घूम आया हूँ। इन सभी योनियों में घर, स्त्री, पुत्र और भाई बहुत हुए तथा माता-पिता जिन्होंने उत्पन्न किया वह भी असंख्य मिले ॥२॥

जा तँ निरय-निकाय निरन्तर, सो इन्ह तोहि सिखायो।

तब हित होइ कटइ भव-वन्धन, सो मग तो न बतायो ॥३॥

जिससे अपार नरक हो वही इन्होंने सदा तुझको सिखाया। संसार-बन्धन कट कर तेरी भलाई हो, वह मार्ग इन्होने कभी नहीं बतलाया ॥३॥

अजहुँ विषय कहँ जतन करत जद्यपि बहु विधि डहकायो ।
पावक-काम भोग घृत तँ सठ, कैसे परत वुझायो ॥४॥

इस प्रकार यद्यपि तू अनेकों प्रकार से छला जा चुका है फिर भी अब तक तू उन्ही विषयों के लिए जतन कर रहा है। अरे मूर्ख! काम रूपी अग्नि विषयभोग रूपी घी के बुझाने से कैसे बुझ सकती है ? ॥४॥

विषय हीन दुख मिलइ विपति अति, सुख सपनेहुँ नहिँ पायो।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्याँ, धन दुख प्रद स्रुति गायो॥५॥

विषय-भोग न मिलने पर दुःख और मिलने से बड़ी विपत्ति है, उसमें सपने में भी सुख नहीं मिलता। इसलिए वेदों ने इस विषयी रुपी धन को दोनों प्रकार से प्रेताग्नि की आग तरह दुःख प्रद बतलाया है ॥५॥

छिन छिन छीन होत जीवन दुरलभ तनु उथा गँवायो ।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि, काल-उरग जग खायो ॥६॥

अरे ! तेरा जीवन क्षण क्षण में कम होता जाता है, इस दुर्लभ शरीर को तू व्यर्थ ही खो रहा है । तुलसी दास जी कहते हैं कि विषयों की आशा छोड़ कर रामचन्द्रजी का भजन कर, देख-काल रूपी सर्प जगत को खाये जा रहा है ॥६॥

(२००)

ताँबे सौँ पीटिमनहुँतन पायो ।
नीच मीच जानत न सीस पर, ईस निपट विसरायो ॥१॥

अरे जीव ! ऐसा मालूम होता है मानों ताँबे से मढ़ा हुआ शरीर तूने पाया है अर्थात इस नश्वर शरीर को अजर अमर मान कर भोगों में लीन हो रहा है। अरे नीच ! नहीं जानता कि मृत्यु तेरे सिर पर नाच रही है और तूने ईश्वर को बिलकुल भुला दिया है ॥१॥

अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत, को न इन्हहिँ अपनायो।
काके भये गये सँग काके, सब सनेह छल छायो॥२॥

धरती, स्त्री, सम्पत्ति, घर, मित्र और पुत्र इनको किसने नहीं अपना बनाया? परन्तु यह किसके हुए और किसके साथ गये, इन सब की प्रीति छल से ढकी है ॥२॥

जिन्ह भूपन्ह जग जीति बाँधि जम, अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हे, तू गिनती कब आयो ॥३॥

जिन राजाओं ने जगत को जीत लिया और यमराज को बंधुआ बना कर अपने अधीन कर लिया। जब उनको भी काल ने निगल लिया, तब तू किस गिनती में आया - अर्थात् तेरी क्या बिसात है ॥३॥

देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो।
भजहिन अजहुँ समुझि तुलसी तेहि, जेहि महेस मन लायो ॥४॥

विचार कर देख कि सच्चा तत्व क्या है और वेद ने किसको यथार्थ कहा है। हे तुलसी! अब भी समझ कर तू उनका भजन नहीं करता जिनमें शिवजी ने अपना मन लगाया है ॥४॥

(२०१)

लाभ कहा मानुष तनु पाये ।
काय बचन मन सपनेहुँ कबहुँक, घटत न काज पराये ॥१॥

मनुष्य शरीर पाने का कौन सा लाभ मिला ? यदि देह, वचन और मन से सपने में भी दुसरे के काम नहीं आया ॥१॥

जो सुख सुरपुर नरक गेह वन, आवत बिनहिं वोलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुभत नहिँ समुझाये ॥२॥

जो विषय-सुख स्वर्ग, नरक, घर और वन में भी बिना बुलाये ही आता है, उस सुख के लिये मन से बहुत यत्न करता है और समझाने से भी नहीं समझता ॥२॥

पर-दारा पर-द्रोह मोह बस, किये मूढ़ मनभाये ।
गरभवास दुख रासि जातना, तीब्र बिपति बिसराये ॥३॥

पराई स्त्री और पराया द्रोह, अरे मूर्ख ! तूने अज्ञान वश मनमाना किया । गर्भवास के दुःखों की दुःख, दुर्दशा-पूर्ण न सहने योग्य विपत्तियों को भुला दिया ? ॥३॥

भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाये ।
सुर-दुर्लभ तनु धरिन भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥४॥

जगत में उत्पन्न सब जीवों को डर, नींद, स्त्री-प्रसंग और भोजन बरावर होता है । देवताओं को भी दुर्लभ इस मनुष्य शरीर को धारण कर तूने भगवान का भजन नहीं किया और मस्ती तथा अहंकार में उसे खो दिया ॥४॥

गई न निज पर बुद्धि सुद्धि होइ, रहे न राम लय लाये।
तुलसिदास बीते एहि अवसर, का पुनि के पछिताये ॥५॥

न तो मेरी तेरी की बुद्धि ही दूर हुई और न शुद्ध होकर तूने रामचन्द्रजी से प्रेम किया । तुलसी दासजी कहते हैं कि समय बीत

जाने पर फिर पीछे पछताने से क्या होगा? इसलिए अभी भी चेत कर भगवन के भजन में लग जान चाहिए ॥५॥

(२०२)

काज कहा नर तनु धरि सारयो ।
पर उपकार सार स्रुति को सो, धोखेहु मैं न बिचारयों ॥१॥

तूने मनुष्य का शरीर धारण करके कौन सा काम पूरा किया? वेदों का सिद्धान्त परोपकार है, वह तूने भूलकर भी नहीं समझा ॥१॥

द्वैतमूल भय सूल सोक फल, भव-तरु टरइ न टारयों ।
राम-भजन तीछन कुठार लेइ, सो नहि काटि निवारयो ॥२॥

अज्ञान की जड़ रूपी यह संसार वृक्ष भय, शूल और शोक रूपी फल फलनेवाला हैं जो हटाने से भी नहीं हटता, उसको रामभजन रूपी तेज कुल्हाड़ा ही कट सकता है किन्तु तूने भजन करके उसे नहीं काट कर नहीं हटाया ॥२॥

संसय-सिन्धु नाम बोहित भजि, निज प्रातमा न तारयो ।
जनम अनेक बिबेक-हीन बहु,-जोनि भ्रमत नहिं हारयो ॥३॥

राम नाम रूपी जहाज़ पर चढ़ कर संसार रूपी समुद्र से अपनी आत्मा को पार नहीं फिया । ज्ञान से रहित अनेक जन्म पर्यन्त बहुत सी योनियों में घूमते हुए भी थका नहीं ॥३॥

देखि आन की सहज सम्पदा, द्वेष अनल मन जारयो ।
सम दम दया दीनपालन सीतल हिय हरि न सँभारयो ॥४॥

दूसरे की सहज सम्पत्ति देख कर ईर्ष्या रुपी अग्नि में मन को जलाया, किन्तु शान्त हृदय से भगवान का स्मरण, करके सौम्यता, इन्द्रियदमन, दया और दीनों की रक्षा नहीं की ॥४॥

प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति मैं, मन क्रम बचन बिसारयो ।
तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो ॥ ५ ॥

स्वामी, गुरु, पिता और मित्र रघुनाथजी को मैंने मन, कर्म और वचन से भुला दिया। तुलसीदास की अब तो केवल यही आशा है कि जिन्हों ने गिद्ध का उद्धार किय, वही तेरी इस डर से रक्षा करके अपनी शरण में रखेंगे ॥५॥

(२०३)

श्रीहरि गुरु पद-कमल भजहि मन तजि अभिमान ।
जेहि सेवत पाइय हरि, सुख-निधान भगवान ॥ १॥

हे मन ! अभिमान त्याग कर लक्ष्मी नारायण रूपी गुरुजी के चरण-कमलों की सेवा कर। जिनकी सेवा करने से सुख के स्थान श्री हरि की प्राप्ति होती है ॥१॥

परिवा प्रथम प्रेम बिनु, राम मिलन अति दूर ।
जद्यपि निकट हृदय निज, रहे सकल भरपूर ॥२॥

जैसे फाल्गुण शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा सर्वप्रथम है उसी प्रकार समस्त साधनों में प्रेम है, बिना प्रेम के श्री रामचन्द्रजी का मिलना अत्यन्त दूर है । यद्यपि वह समीप हैं और सबके हृदय में निवास करते हैं ॥२॥

दुइज द्वैत-मत छाड़ि चरहि महिमंडल धीर ।
विगत मोह माया मद, हृदय सदा रघुवीर ॥३॥

द्वितीया रुपी दूसरा साधन यह है कि भेदभाव का सिद्धान्त छोड़ कर सन्तोष के साथ पृथ्वीतल पर विचरण कर । अज्ञान, छल और गर्व से रहित हृदय में सदा रघुनाथजी निवास करते हैं ॥३॥

तीज त्रिगुन पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुन्द ।
गुन सुभाव त्यागे बिना, दुरलभ परमानन्द ॥४॥

तृतीया रुपी तीसरा उपाय है कि तीनों गुणों से परे परम-पुरुप लक्ष्मीकान्त मुकुन्द भगवान के चरणों के तीनो गुणों को त्याग कर दे । गुणों का स्वभाव त्यागे बिना परमानन्द की प्राप्ति दुर्लभ है ॥४॥

चौथ चारि परिहरहु,बुद्धि मन चित. अहंकार।
बिमल बिचार परमपद, निज सुख सहज उदार ॥५॥

चतुर्थी रुपी चौथा उपाय है कि मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार चारों की आज्ञाकारिता का त्यागकर देना चाहिए। ऐसा करने से निर्मल विचारों का उदय होगा तथा मोक्ष और स्वाभाविक श्रेष्ठ आत्मानन्द प्राप्त होगा ॥५॥

पाँचइ पाँच परस रस, सब्द गन्ध अरुरूप ।
इन्ह कर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव-कूप ॥६॥

पञ्चमी रुपी पांचवां उपाय है कि -स्पर्श, रस, शब्द, गन्ध और रूप इन पाँचों विषयों की का कहना मत मानो, अन्यथा संसार रूपी गहरा अँधेरे कुँए में गिरना पड़ेगा ॥६॥

छठि षड़बरग करिय जय, जनकसुता-पति लागि ।
रघुपति कृपा बारि बिनु, नहिँ बुझाइ लोभागि ॥७॥

षष्ठी रुपी छठा उपाय है कि जानकीनाथ की परापती के लिए षड़वर्ग-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रुपी शत्रुओं को जीत लो। रघुनाथजी की कृपा रूपी जल के निबा लोभ रूपी अग्नि नहीं बुझती ॥७॥

सातइँ सप्तधातु निरमित तनु, करिय बिचार ।
तेहि तनु केर एक फल, कीजिय पर उपकार ॥८॥

सप्तमी रुपी सातवाँ उपाय है कि -सातों धातु - रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य से बने हुए शरीर पर विचार कर यह निश्चित करना चाहिए कि इस या देह का एक ही फल है कि परोपकार कीजिये ॥८॥

आठ आठ प्रकृति पर, निरबिकार श्रीराम ।
केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिँ बहु काम ॥ ९ ॥

अष्टमी रुपी आठवाँ उपाय है कि आठों प्रकृति - भूमि, जल, अग्नि, पवन, श्राकाश, मन, बुद्धि, अहंकार से परे विकार रहित श्रीरामचन्द्रजी हैं। अत: जब तक हृदय में अनेकों काम वसते हैं तब तक श्री हरि की प्राप्ति किस प्रकार होगी? ॥९॥

नवमी नवद्वार-पुर, बसि न आप भल कीन ।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख दीन ॥ १०॥

नवमी रुपी नौवां उपाय है कि – जिसने इस नव दरवाजे (आँख, कान, नाक के दो दो छेद तथा मुख, गूदा, लिङ्ग के एक एक छेद) वाले के नगर में रह कर अपनी आत्मा का कल्याण नहीं किया, वह मनुष्य भीषण दुःख से दुखी होकर नाना प्रकार की योनियों में भटकते फिरते हैं ॥१०॥

दसई दसह कर सञ्जम, जौँ न करिय जिय जानि ।
साधन था होइ सब, मिलहिँ न सारंग- पानि ॥ ११ ॥

दशमी रुपी दसवां उपाय है कि -दस इन्द्रियों को वश में रख कर इनके विषयों से संयम नही किया, उसके समस्त साधन व्यर्थ हो जाते हैं तथा विष्णु भगवान की प्राप्ति नहीं होती ॥११॥

एकादसी एक मन, बस कैसहुँ करि जाइ ।
सो ब्रत कर फल पावइ, आवागमन नसाइ ॥१२॥

एकादशी रुपी ग्यारहवां उपाय है कि - मन को किसी तरह वश में करके श्री हरि की ही सेवा करने चाहिए, इससे एकादशी व्रत फल रुपी मोक्ष प्राप्त होता है तह और जन्म-मृत्यु का आवागमन नष्ट हो जाता है ॥१२॥

द्वादसि दान देहु अस, अभय होइत्रय लोक।
परहित-निरत सुपारन बहुरि न ब्यापइ सोक ॥ १३ ॥

द्वादशी रुपी बारहवां उपाय है कि -ऐसा दान देनो जिससे तीनों लोकों में निर्भय हो जाओ और परोपकार में तत्पर होना ही इसका सुन्दर पारण है, इससे फिर शोक नहीं व्यापता ॥१३॥

तेरसि तीनि अवस्था, तजहु भजहु भगवन्त ।

मन क्रम बचन अगोचर, ब्यापक ब्याप्य अनन्त ॥१४॥

त्रयोदशी रुपी तेरहवां उपाय है कि -तीनों अवस्थाओं जागृत, स्वप्न , सुषुप्ति को त्याग कर उन सर्व समर्थ भगवान का भजन करना चाहिए जो मन, कर्म और वचन से अप्राप्य, सर्वव्यापी, समीम तथा अनंत हैं ॥१४॥

चौदसि चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल ।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहि जग-जाल ॥ १५ ॥

चतुर्दशी रुपी चौदहवाँ उपाय है कि - भगवान हषीकेश चौदह लोकों में व्याप्त जड़ चेतन रूप हैं। परन्तु जब तक जीव की सर्वथा भेद बुद्धि दूर नहीं होती रघुनाथजी इस संसारी जाल नहीं काटते अर्थात जीव को जन्म मरण से नहीं छुडाते ॥१५॥

पूनो प्रेम-भगति-रस हरि रस जानहि दास ।
सम सीतल गत-मान ज्ञान-रत बिषय-उदास ॥ १६॥

पूर्णिमा के समान व्हाग्वत प्राप्ति का नौवां उपाय यह है कि - प्रेमलक्षणा भक्ति के आनन्द में मग्न होकर भगवान् के दासों को भगवत्प्रेम तत्व जानना चाहिए, वह शान्त, शीतल, निरभिमान, ज्ञान में तत्पर और विषयों से विरक्त रहते हैं ॥१६॥

त्रिविध सूल होली जारिय खेलिय अस फागु ।
जाँ जिय चहसि परम सुख, तौ एहि मारग लागु ॥ १७॥

तीनों प्रकार के तापो की होली जला कर, भागवत प्रेम धारण कर आनंद पूर्वक फाग खेलनी चाहिए, यदि तू परम आनन्द की प्राप्ति चाहता है तो इसी मार्ग पर चल ॥१७॥

सुति पुरान बुध सम्मत, चाँचरि चरित मुरारि ।
करि विचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥ १८ ॥

वेद, पुराण और विद्वानों का मत है कि भगवान का चरित्र चञ्चरी राग (जिसके अन्तर्गत होली फाग आदि माने जाते हैं)। इन साधनों पर विचार कर संसार सागर से पार होना चाहिये, इससे कभी भी यमदूतों के वश में नहीं पड़ोगे ॥१८॥

संसय समन दमन दुख, सुखनिधान हरि एक ।
साधु कृपा विनु मिलहि नहि, करिय उपाय अनेक ॥ १९॥

संदेह के नाशक, दुःख को दूर करने वाले, सुख के स्थान भगवान एक ही हैं। बिना सन्तों की कृपा से वह नहीं मिलते चाहे अनेक प्रयत्न करते रहो ॥१९॥

भव-सागर कहँ नाव सुद्ध सन्तन्ह के चरन ।

तुलसीदास प्रयास बिनु, मिलहिँ राम दुख हरन ॥२०॥

संसार-समुद्र से पार करनेवाले सन्तों के पवित्र चरण नौका रूपी हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि संतो के चरणों की सेवा करने से दुःखों का नाश करनेवाले श्री रामचन्द्रजी बिना परिश्रम ही मिलते हैं ॥२०॥

(२०४)

जौँ मन लागइ राम-चरन अस ।
देहगेंह सुत बित कलत्र मह, मगन होत बिनु जतन किये जस ॥१॥

यदि यां मन श्री रामचन्द्र जी के चरणों में मन इस तरह से लगे जैसे बिना प्रयत्न किये यह शरीर, घर, पुत्र, धन और स्त्री के प्रेम में मग्न होता है ॥१॥

द्वन्द-रहित गत-मान ज्ञान-रत, विषय-विरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति, होइ प्रसन्न कहु. क्यों न होहिं बस ॥२॥

तो सांसारिक झगड़ों से रहित, निरभिमान, ज्ञान में तत्पर और विषयों से विरक्त होकर ज्ञान में मग्न होकर विरक्त हो जाय जैसे कि पीतल अथवा तांबा मिली हुई धातु के बर्तन में रखे हुए अनेक प्रकार के खट्टे पदार्थ कडवे हो जाने के कारण उनसे मन हट जाता है । फिर ऐसे

सिद्ध भक्त पर आनदघन चतुर शिरोमणि कौशलनाथ श्री राम चन्द्रजी प्रसन्न होकर अवश्य वशीभूत क्यों नहीं होंगे ? ॥२॥

सर्व भूत हित नियंलीक चित, भक्ति प्रेम दृढ़ नेम एकरस।
तुलसिदास यह होइ तबहिँ जब, द्रवइ ईसजेहि हते सीसदस ॥३॥

ऐसा महापुरुष, समस्त जीवों का हितकारी और कपट रहित चित्त से एकरस भक्तिप्रेम के नियम और भगवदीय नियमों में दृढ होता है। परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा तभी होता है जब दशानन का वध करने वाले ईश्वर श्री रामचन्द्रजी उस जीव पर प्रसन्न होकर दया करते हैं ॥३॥

(२०५)

जो मन भजेउ चहइ हरि सुरतरु ।
तौ तजि बिषय विकार, सार भज, अजहूँ जो मैं कहौं सोई कर

हे मन । यदि तू कल्पवृक्ष रूपी भगवान को भजना चाहता है तो विषय के विकारों को त्याग कर अब भी तत्व रूप श्री राम नाम का भजन और जो मैं कहता हूँ वही कर ॥१॥

सम सन्तोष विचार बिमल अति, सतसङ्गति चारिहु दृढ़ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद, राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥२॥

समता, सन्तोष, अत्यन्त निर्मल विचार और सत्संगति चारों को दृढ़तापूर्वक धारण कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ममता और द्रोह को शेष रहित करके त्याग दे ॥२॥

स्रवन कथा मुख नाम हृदय-हरि, सिरप्रनाम सेवा कर अनुसरु ।
नयनन्हि निरखि कृपा-समुद्र हरि,अग जगरूप भूप सीताबरु ॥३॥

कानों से हरिकथा, मुख से राम नाम जप, हृदय में श्री हरि का ध्यान कर, उनको हाथो से सिर से प्रणाम कर उनकी सेवा किया कर। नेत्रों से रुप के सागर सीतानाथ राजा रामचन्द्रजी के जड़ चेतन मय रूप को देखा कर ॥३॥

इहइ भगति बैराग ज्ञान यह, हरितोषन यह सुभ ब्रत आचरु ।
तुलसिदास सिव मत मारग यह, चलत सदा संपनहुँ नाहिंन डरु ॥४॥

यही भक्ति और वैराग्य है, यही ज्ञान है और यही भगवान को प्रसन्न करने का श्रेष्ठ व्रत है । अत: तू इसी शुभ व्रत का आचरण कर। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह शिवजी का बताया हुआ सिद्धान्त का मार्ग है, इसमें सदा चलने से सपने में भी भय नहीं रहता ॥४॥

(२०६)

नाहिंन और सरन लायक कोउ, श्रीरघुपति सम बिपति निवारन ।

काको सहज सुभाव दास बस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥

शरणागतों को विपत्ति छुड़ानेवाला श्रीरघुनाथजी के समान दूसरा कोई समर्थ नहीं है । ऐसा किस का सहज स्वभाव है जो सेवकों के वश में रहता हो और अकारण उनसे प्रेम करता हो? ॥१॥

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि समूह बिसारन।
परम कृपाल भगत-चिन्तामनि, बिरद पुनीत पतित जन तारन ॥२॥

श्री राम जी दासों के थोड़े गुण को भी सुमेरु के समान बड़ा मानते हैं और करोड़ों अवगुणों को देख कर भी भूल जाते हैं। अत्यन्त कृपालु, भक्तों के चिन्तामणि और, पापीजनों को पवित्र कर उद्धार करने वाले हैं ॥२॥

सुमिरत सुलभ दास दुख सुनि हरि, चलत तुरत पटपीत सँभार न।
साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपदसता अरु बारन ॥३॥

जिनका स्मरण करने पर सहजता से पारपत होते हैं और भगवान दासों का दुःख सुन कर पीताम्बर को सँभालना भूल कर भी अतिशीघ्र चल पड़ते हैं। इसके साक्षी पुराण, वेद, शास्त्र हैं तथा द्रौपदी और गजराज का हाल तो सब जानते ही हैं ॥३॥

जाको जस गावत कबि कोबिद, जिनके लोभ मोह मद मार न ।

तुलसिदास तजि अ्ास सकल भजु, कोसलपति मुनिबधू उधारन ॥४॥

जिनका यश कवि विद्वान गाते हैं जिनके हृदय में लोभ, मोह, मद और काम नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सारी आशाओं को त्याग कर मुनिपत्नी को उबारने वाले कौशलनाथ रामचन्द्रजी का भजन कर ॥४॥

(२०७)

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद नाहिन ।
ऑनदभवन दवन दुख दोषन्हि, रमारमन गुन गनत सिराहिँ न ॥१॥

भजन के योग्य श्ररी रघुनाथजी के समान शरणार्थियों को सुख देनेवाला कोई नहीं है। आनन्द के मन्दिर, दुःख और दोषों के दमन करनेवाले लक्ष्मीकान्त के गुण कहने से नहीं समाप्त हो सकते ॥१॥

भारत अधम कुजाति कुटिल खल,
पतित सभीत कहूँ जे समाहि न।
सुमिरत नाम बिबसह बारक,
पावत सो पद जह सुर.जाहिँ न ॥२॥

जो दुखी, पापी, कुजाति, छली, दुष्ट, अधर्मी और भयभीत जिन्हें कहीं भी आश्रय नहीं मिलता। वह विवश होकर भी एक बार नाम स्मरण

करने से उस पद को प्राप्त होते हैं जिसे देवता भी प्राप्त नहीं कर सकते ॥२॥

जेहि पद-कमल लुब्ध मुनि मधुकर,
बिरति जे परम सुगतिहु लोभाहिँ न ।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस,
कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥३॥

जिनके चरण-कमलों में मुनि रूपी भ्रमर लुभाए रहते हैं, जो परम वैराग्यवान मुनि मोक्ष के लिये भी नहीं लुभाते। तुलसीदासजी कहते हैं कि-अरे मूर्ख! जो अनाथों के दीन दयाल हैं तू उनको भजन क्यों नहीं करता? ॥३॥

(२०८)

राग-कल्याण

नाथ सोँ कवन बिनती कहि सुनावौँ ।
त्रिविध अनगनित अवलोकि अब आपने,
सरनसनमुख होत सकुचि सिर नावौँ ॥१॥

हे नाथ ! मैं आप से कौन सी विनती कह कर सुनाऊँ ! अपने मन, कर्म, वचन तीनो प्रकार के अनगिनत पापों को देख कर मैं आपके सामने शरण होते हुए भी सकुचा कर सिर नीचे कर लेता हूँ ॥१॥

विरचि हरिभगत को बेष बर टाटिका,
कपट दल हरित पल्लवनि छावाँ,
नाम लागे लाइ लासा ललित बचन कहि,
ब्याध ज्याँ विषय. विहँगनि बझावाँ ॥२॥

हरिभक्तों का श्रेष्ठ वेष रूप बना कर उसको कपट रूपी हरे पत्तों से छाया करता हूँ । नाम रूपी लग्गी में सुन्दर वचन कह कर उसे लासारूप लगाता हूँ और फिर पहेलिये की तरह विषय रूपी पक्षियों को फँसाता हूँ ॥२॥

कुटिल सतकोटि मम रोम पर वारियहि,
साधु गनती मैं पहिलेहि गनावौं ।
परम वर्बर खर्ब-गर्व-पर्वत चढ़ो,
अज्ञ सरवज्ञ जन-मनि जनावों ॥३॥

मैं इतना पापी हूँ की असंख्य पापी मेरे एक रोम पर न्योछावर हैं; किन्तु साधुओं की गिनती में अपने आप को सबसे पहले रखता हूँ। मैं बड़ा ही असभ्य, नीच, अहंकार के पर्वत पर चढ़ा हुआ मूर्ख हूँ, परन्तु फिर भी अपने आप को सर्वज्ञ और भक्त शिरो मणि प्रसिद्ध करता हूँ ॥३॥

साँच किधौं झूठ मोहि कहत कोउ कोउ राम,
रावरो हाँह तुम्हरो कहावौं ।

विरद की लाज करि दासतुलसिहि देव,
लेहु अपनाइ जनि देहु वावा ॥४॥

भगवान् जाने सच है झूठ पर कोई कोई मुझको आप का दास कहते हैं, हे रामचन्द्रजी ! मैं भी आप का सेवक कहाता हूँ। हे देव ! अपने यश की लाज रख कर इस तुलसीदास को अपना लीजिये, अब टाल मटोल मत कीजिए ॥४॥

(२०६)

नाहिनै नाथ अवलम्ब मोहि आन की।
करम मन वचन पन सत्य करुनानिधे,
एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥ १ ॥

हे नाथ ! मुझे दूसरे का सहारा नहीं है, करुणानिधे ! कर्म, मन और वचन से मेरी सच्ची प्रतिज्ञा है कि मुझे केवल आप के ही खड़ाउओं का सहारा है ॥१॥

कोह मद मोह ममतायतन जानि मन,
वात नहिं जात कहि ज्ञान विज्ञान की ।
काम सङ्कल्प उर निरखि बहु वासनहिं,
श्रासनहि एकह आँक निरवान की ॥२॥

क्रोध, मद, अज्ञान और ममता का स्थान मन को जान कर ज्ञान विज्ञान की बात नहीं कही जाती है । हृदय में बहुत से मनोरथों के विचार की इच्छाओं को देख कर मोक्ष की आशा का एक भी दृढ़ निश्चय नहीं है ॥२॥

वेद बोधित करम धरम बिनु अगम अति,
जदपि जिय लालसा अमरपुर जान की ।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन,
द्रवाह हठजोग दिय भोग बलि प्रान की ॥३॥

यद्यपि मरे मन में लालसा देवलोक जाने की है, पर वह वेदों द्वारा बतलाया गया मार्ग कर्म, धर्म के बिना अत्यन्त दुर्गम है। इसके अतिरिक्त सिद्ध, देवता, मनुष्य और दैत्यादिकों की सेवा करना भी कठिन है, यह तभी दया करते हैं जब हठयोगसे प्राणों का नैवेद्य चढ़ा कर उनकी पूजा की जाए ॥३॥

भगति दुरलभ परम सम्भु सुक मुनि मधुप,
प्यास पद-कञ्ज मकरन्द मधु पान की ।
पतितपावन सुनत नाम बिस्राम कृत,
भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रन्थि अभिमान की ॥४॥

भक्ति मुझ जैसे के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, क्योकि शिवजी और शुकदेव मुनि रूपी भ्रमर चरण रूपी कमल के रस रूपी अमृत पान के प्यासे रहते हैं तब वह मुझे कसे प्राप्त हो सकते हैं। हाँ विश्राम

सम्पादित करनेवाला आपका पतित-पावन नाम शान्ति प्रदान करने वाला सुना जाता है परन्तु चित्त में अभिमान की गाँठ होने के कारण अन्य साधनो की ओर भ्रम से घूमता फिरता हूँ॥४॥

नरक अधिकार मम घोर संसार तम,
कूप कहि भूप मोहि सक्ति अपान की
दासतुलसी सोउ त्रास नहिँ गनत मन,
समुझि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की ॥५॥

हे महाराज ! मैं नरक में पड़े रहने का ही अधिकारी हूँ, मेरे कर्म तो मुझे इस संसार रुपी कुँए में ही पड़े रहने का अधिकार है परन्तु मुझे केवल आपका ही बल है। गुह, गिद्ध, गजराज और हनूमान की जाति याद करके तुलसीदास मन में उस जन्म मरण रुपी भय को भी नहीं गिनता है अर्थात गुह, गिद्धादि की जाति जान कर मुझे भय नहीं है, क्योंकि जब आपने ऐसे नीचों को आपने अपनाया तो पतित तुलसी को भी अवश्य अपनाएंगे ॥५॥

(२१०)

और कहँ ठौर रघुबंस-मनि मेरे।
पतितपावन प्रनतपाल असरन सरन,
बांकुरे बिरंद बिरदैत केहि केरे ॥१॥

हे रघुवंशमणि ! मेरे लिये आपके सिवा और कहाँ ठिकाना है ? पतितो को पवित्र करना, शरणागतों की रक्षा करना और असहाय को शरण में रखने का इतना यश और किसका है ? ॥१॥

समुझि जिय दोष अतिरोष करि राम जहि,
करत नहिँ कान बिनती बदन फेरे ।
तदपि हौं निडर होइ कहउँ करुनासिन्धु,
क्यों बरहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥२॥

हे रामचन्द्रजी ! मेरा ऐसा कौन सा दोष है जिसे आप मन में समझ कर और क्रोधित होकर मुँह फेरे हुए हैं और मेरी विनती पर ध्यान नहीं देते। हे दयासिन्धु! तब भी मैं निडर होकर कहता हूँ, मेरी प्रार्थना सुन कर भी आप मेरी ओर देखे बिना कैसे रह सकते हैं ॥२॥

मुख्य रुचि होत बसबे को पुर रावरे,
राम तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे।
अगम अपवर्ग अरु स्वर्ग सुकृतैक फल,
नाम बल क्यों बसउँ जमनगर नेरे ॥३॥

हे रामचन्द्रजी ! मेरी मुख्य अभिलाषा तो आप के परम धाम में निवास करने की है, परन्तु रुचि को काम क्रोध आदि की मण्डली ने घेर रखा है। फिर मोक्ष और स्वर्ग दुर्गम है जो केवल पुण्यों फल से ही मिलता है, किन्तु नाम के बल से यमपुरी के समीप भी नहीं बस सकता? ॥३॥

कतहुँ नहिँ ठाउँ कहँ जाउँ कोसलनाथ,
दीन बित-हीन हौं बिकल बिनु डेरे ।
दासतुलसिहि बास देहु अब करि कृपा,
बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

हे कौशलनाथ ! कहीं कोई जगह नहीं है मैं कहाँ जाऊँ, मैं गरीब धनहीन बिना निवासस्थान के व्याकुल हूँ। अव कृपा करके तुलसीदास को जिस गाँव में हाथी, गिद्ध, व्याध आदि रहते हैं उसमें रहने के जगह दीजिये ॥४॥

(२११)

कबहुँ रघुबंस-मनि सो कृपा करहुगे ।
जेहि कृपा ब्याध गज बिन खल तरु तरे,
तिन्हहि सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे॥१॥

हे स्वामी ! हे रघुवंशमणि, कभी आप मुझपर वही कृपा करेंगे, जिस अनुग्रह से व्याध, हाथी, दुष्ट ब्राह्मण अजामिल और वृक्ष यमलार्जुन भी तरे हैं उनके समान मुझे मान कर उद्धार कीजियेगा ॥१॥

जोनि बहु जनमि किय करम खल त्रिबिध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहिँ धरहुगे ।
दीन हित अजित सरबज्ञ समरथ प्रनत,

पाल चित मृदुल निज गुनन्हि अनुसरहुगे ॥२॥

अनेकों योनियों में जन्म लेकर मैंने अनेजों प्रकार के दुष्ट कर्म और अधम आचरण किये हैं, कृपया उनको कुछ हृदय में धारण मत कीजिएगा। आप दीन हितकारी, अजेय, सर्वज्ञ, समर्थ, शरणागत पालक और कोमल चित्त हैं, अपने गुणों के अनुसार कीजियेगा ॥२॥

मोह मद मान कामादि खलमंडली,
सकुल निर्मूल करि दुसह दुख हरहुगे ।
जोग जप ज्ञान विज्ञान तँ अधिक अति, अमल ।
दृढ़ भक्ति दै परम सुख भरहुगे ॥३॥

मेरे मन में जो अज्ञान, मद, अभिमान और काम आदि खलों की मण्डली बसी ही है की आप उसका कुल सहित नाश करके दुस्सह दुःख हारेंगे। और क्या आप योग, जप, ज्ञान और विज्ञान से बढ़ कर अत्यन्त निर्मल अपनी अटल भक्ति देकर मुझे परमानन्द से परिपूर्ण करेंगे ॥३॥

मन्द जन मौलि मनि सकल साधन हीन,
कुटिल मन मलिन जिय जानि जाँ डरहुगे।
दासतुलसी बेद बिदित बिरदावली,
बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे ॥४॥

मैं नीचजनों का शिरोमणि समस्त शुभ साधनों से रहित कपटी और मलिन मन वाला हूँ, यदि यह समझ कर मन में डरेंगे तो हे नाथ ! तव वेद में विख्यात आपके यश और निर्मल कीर्ति का आप किस प्रकार संसार में विस्तार करेंगे ॥४॥

(२१२)

राग-केदारा

रघुपति विपति दवन।
परम कृपाल प्रनत प्रतिपालक, पतित पवन ॥१॥

श्री रघुनाथजी विपत्तियों का नाश करने वाले, अत्यन्त कृपालु, दीनों के रक्षक और पतितो को पवित्र करनेवाले हैं ॥१॥

कूर कुटिल कुल हीन दीन अति, मलिन जवन।
सुमिरत नाम राम पठये सब, अपने भवन ॥२॥

जो निर्दय, दुष्ट, अकुलीन, दुःखी और अत्यन्त पापी थे, नाम स्मरण करते ही रामचन्द्रजी ने सब को अपने धाम वैकुण्ठ भेज दिया ॥२॥

गज पिङ्गला अजामिल से खल, गनइ कवन ।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्ह गति, सीय-रवन ॥३॥

हाथी, पिंगला वेश्या और अजामिल सरीखे दुष्टों की गिनती कौन कर सकता है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि सीतारमण प्रभु रामचन्द्रजी ने किसे मोक्ष प्रदान नहीं किया ॥३॥

(२१३)

हरि सम आपदा हरन ।
नहिं कोउ सहज कृपाल दुसंह दुख सागर तरन ॥१॥

भगवान श्री हरि के समान विपत्तियों को हरनेवाला और असहनीय दुःखसागर से पार करने वाला स्वाभाविक कृपालु कोई नहीं है ॥१॥

गज निज बल अवलोंकि कमल गहि, गयउ सरन ।
दीन बचन सुनि चलेउ गरुड़ तजि सुनाभधरन ॥२॥

गजराज अपना बल देख कर सूंड से कमल पकड़ कर आपकी शरण में गया तब दीन वचन सुन कर चक्रधारी भगवान गरुड़ को छोड़ कर तुरंत पैदल ही दौड़ पड़े ॥२॥

द्रुपदसुता को लगेउ दुसासन, नगन करन ।
हा हरि पाहि कहत पूरे पट, विविध बरन ॥३॥

जब भरी सभा में द्रौपदी को दुःशासन नग्न करने लगा, तब उसके हे हरे ! मेरी रक्षा कीजिये कहते ही अनेकों रंग के वस्त्रों का ढेर लग गया ॥३॥

इहइ जानि सुर नर मुनिकोबिद, सेवत चरन ।
तुलसिदास प्रभु को न अभय किय, नृग उद्धरन ॥४॥

यही जान कर देवता, मनुष्य, मुनि और विद्वान चरणों की सेवा करते हैं। तुलसी दासजी कहते हैं कि राजा मृग को उबारनेवाले प्रभु रामचन्द्रजी ने किसको निर्भय नहीं किया ? अर्थात् जो शरण में आया सब को अभय दे दिया ॥४॥

(२१४)

राग-कल्याण

ऐसी कौन प्रभु की रीति ।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि, पाँवरन्हि पर प्रीति ॥१॥

प्रभो! आप की यह कौन सी रीति है कि आप अपने यश के लिए पुण्यात्माओं को छोड़ कर पापियों ही पर प्रेम करते हैं ॥१॥

गई मारन पूतना कुच, कालकूट लगाइ ।
मातु की गति दई ताहि, कृपाल जादवराइ ॥२॥

पूतना अपने पयोधरों में विष लगा कर मारने के लिये गई; किन्तु कृपालु यदुकुल के स्वामी ने उसको माता की गति प्रदान की अर्थात् वैकुण्ठ में स्थान दिया ॥२॥

काम मोहित गोपिकन्ह पर, कृपा अतुलित कीन्ह ।
जगतपिता बिरचि जिन्ह के, चरन की रज लीन्ह ॥ ३॥

आपने कामभाव से मोहित गोपिकाओं पर भी ऐसी महती कृपा की कि जगत्पिता ब्रह्माजी ने भी उनके चरणों की धूलि अपने मस्तक पर चढाई? ॥३॥

नेमते सिसुपाल दिनप्रति, देत गनि गनि गारि।
कियो लीन सो आपु मैं हरि, राजसभा मँझारि ॥४॥

जो शिशुपाल नियम से प्रतिदिन गिन गिन कर गाली देता था, उसको राजदरबार में भगवान ने अपने में ही लीन कर लिया ॥२॥

ब्याध चित देइ चरन मारेउ, मूढ़मति मृग जानि ।
सो सदेह स्वलोक पठयेउ, प्रगट करि निज बानि ॥ ५॥

मूढ़ बुद्धि व्याध ने तो आपके चरणों पर निशाना लगा कर और आपको मृग समझ कर बाण मारा, आपने उसको सशरीर अपने लोक को भेज कर अपन यश प्रकट किया ॥५॥

कवन तिन्ह की कहइ जिन्ह के, सुकत अरु अघ दोउ ।
प्रगट पातक रूप तुलसी, सरन राखेउ सोउ ॥६॥

उनकी कौन कहे जिनके पुण्य और पाप दोनों अपार हैं । प्रत्यक्ष में पाप रूप तुलसी, उसको भी शरण में रख लिया है ॥६॥

(२१५)

श्रीरघुबीर की यह बानि ।
नीचहू सौं करत नेह, सुप्रीति मन अनुमानि ॥१॥

श्रीरघुनाथजी का यह स्वभाव है कि वह मन में विशुद्ध और सुन्दर प्रेम विचार कर नीच से भी स्नेह करते हैं ॥१॥

परम अधम निषाद पाँवर, कवन ताकी कानि ।
लियेउ सो उर लाइ सुत ज्यौं, प्रेम की पहिचानि ॥२॥

अत्यन्त अधम नीच मल्लाह उसकी कौन सी मर्यादा थी। परन्तु आपने उसका विशुद्ध प्रेम पहचान कर उसे पुत्र की तरह छाती से लगा लिये ॥२॥

गिद्ध कवन दयाल जो बिधि रचेउ हिंसा सानि ।
जनक ज्यौं रघुनाथ ताको, दियेउ जल निज पानि ॥३॥

गिद्ध कौन सा दयालु था ? जिसको विधाता ने हिंसा का रूप बनाया था। उसको रघुनाथ जी ने पिता की भाँति अपने हाथ से जलांजलि दी ॥३॥

प्रकृति मलिन कुजाति सबरी, सकल अवगुन खानि ।
खात ताके दिये फल अतिरुचि वखानि बखानि ॥४॥

स्वभाव से ही मैली कुचैली, नीच जाति की शवरी जो समस्त अवगुणों की खान थी परन्तु उसके दिये फल को अत्यन्त चाह से स्वाद बखान बखान कर खाया था। ॥४॥

रजनिचर अरु रिपु बिभीषन, सरन आयेउ जानि ।
भरत ज्यौं उठि ताहि भैंटत, देह दसा भुलानि ॥५॥

राक्षस और शत्रु विभीषण को शरण में आया जान कर आपने उससे उठ कर भरतजी की तरह इस तरह मिले और कि अपने शरीर की दशा को ही भूल गए ॥५॥

कवन सुभग सुसील बानर, जिन्हहिँ सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा पूजे, भवन अपने पानि ॥६॥

वानर कौन से सुन्दर अच्छे आचरणवाले थे ? जिन्हे स्मरण करने से भी हानि होती है । आपने उन सब को मित्र बनाया और अपने घर में लाकर सम्मान दिया ॥६॥

राम सहज कृपाल कोमल, दनि हित दिनदानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलेसी, कुटिल कपट न ठानि ॥७॥

रामचन्द्रजी सहज ही कृपालु, कोमल चित्त, दीन हितकारी और नित्य दान देनेवाले हैं। अरे पापी तुलसी ! तू कुटिलता और कपट छोड़ कर, ऐसे स्वामी का भजन कर ॥७॥

(२१६)

हरि तजि और भजिये काहि ।
नाहिने कोउ राम सॉं, ममता प्रनत पर जाहि॥१॥

भगवान श्री हरि को छोड़ कर और किसका भजन करूँ। रामचन्द्रजी के समान ऐसा कोई स्वामी नहीं है जिसमें शरणागतों पर ममत्त्व हो ॥१॥

कनककसिपु बिरञ्चि को जन, करम मन अरु बात ।
सुतहि दुखवत बिधि न बरजेउ, काल के घर जात ॥२॥

हिरण्यकशिपु कर्म, मन और वचन से ब्रह्माजी का सेवक था। परन्तु अपने पुत्र प्रह्लाद को दुःख देते हुए उसको काल के गाल में समाते हुए भी विधाता ने मना नहीं किया ॥२॥

सम्भु सेवक जान जग बहु,-बार दिय दससीस ।
करत राम बिरोध सो सपनेहुँ न हटकेउ ईस ॥३॥

जगत जानता है कि रावण शंकरजी का दास था, उसने अनेक बार अपना दसों सिर काट कर चढ़ा दिया; परन्तु रामचन्द्रजी से बैर लेते समय सपने में भी शिवजी ने उसको नहीं रोका ॥३॥

और देवन्ह की कहउँ कहा, स्वारथहि के मीत।
कबहुँ काहु न राखि लियेउ कोउ सरन गये सभीत ॥४॥

और देवताओं की क्या कहूँ, वह तो अपने मतलब ही के मित्र हैं। भयभीत शरण में गये की कभी किसी ने भी एअक्षा नहीं की ॥४॥

को न सेक्त देत सम्पति, लोकहू यह रीति ।
दासतुलसी दीन पर एक रामही की प्रीति ॥५॥

यह संसार की रीति ही है कि सेवा करने से कौन नहीं धन देता ? तुलसीदासजी कहते हैं कि दीनों पर केवलपर एक रामचन्द्रजी की ही प्रीति रहती है ॥५॥

(२१७)

जो दूसरो कोउ होय ।
तो हौं वारहि वार प्रभु कत. दुख सुनावउँ रोय ॥१॥

यदि दूसरा कोई होता तो हे नाथ ! मैं बार बार काहे को रोकर दुःख सुनाता ॥१॥

काहि ममता दीन पर केहि,पतित पावन नाम ।
पाप-मल अजामिलहि को, दियेउ अपनो धाम ॥२॥

किसकी दीनों पर प्रीति है और किसका पतितपावन नाम है ? पापमूल अजामिल को भी किसने अपने धाम वैकुण्ठ में स्थान दिया ? ॥२॥

रहे सम्भु विरञ्चि सुरपति, लोकपाल अनेक ।
सोक-सरि वूड़त करीसहि, दई काहु न टेक ॥३॥

शिवजी, ब्राह्मण, इन्द्र आदि अनेकों लोकपाल आदि देवता थे, शोक रूपी नदी में गजेन्द्र को डूबते हुए किसी ने सहारा नहीं दिया ॥३॥

विपुल भूपति सदसि महँ नर-नारि कहि प्रभु पाहि ।
सकल समरथ रहे काहु न, वसन दीन्हाँ ताहि ॥४॥

बहुत से राजा सभा में थे, अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ने कहा हे प्रभो मेरी रक्षा कीजिये। सब समर्थ ही थे; किन्तु किसी ने उसको वस्त्र नहीं दिया था ॥४॥

एक मुख क्याँ कहाँ करुनासिन्धु के गुन गाथ ।
भगत हित धरि देह काह न, कियेउ कोसलनाथ ॥५॥

हे कृपासिन्धु! आपके गुणों की कथा का एक मुख से मैं किस प्रकार वर्णन करूँ। हे कौशलनाथ! भक्तों के लिये देह धारण कर आपने क्या क्या नहीं किया ॥५॥

आपु से कहुँ सौंपिये मोहि, जोपै अधिक धिनात ।
दास तुलसी और विधि क्यों, चरन परिहरि जात ॥६॥

यदि आप मुझे पापी समझ कर मुझसे अधिक घृणा करते हैं तो अपनी ओर से आप मुझे किसी और को सौंप दीजिए जो आपके ही जैसा हो अन्यथा तुलसीदास आप के चरणों को छोड़ कर कैसे जा सकता है? ॥६॥

(२१८)

कबहुँ दिखाइहाँ हरि चरन ।
समन सकल कलेस कलिमल, सकल मङ्गल करन ॥ १ ॥

हे भगवन् ! क्या कभी आप अपने उन चरण कमलों का दर्शन कराएँगे, जो समस्त क्लेश और पाप के नाशक तथा सम्पूर्ण मंगलों के करनेवाले हैं ॥१॥

सरद भव सुन्दर तरुन तर, अरुन बारिज बरन ।
लच्छि लालित ललित करतल, छबि अनूपम धरन ॥२॥

शरदऋतु में उत्पन्न अत्यन्त सुन्दर खिले हुए लाल कमल के रंग के जो लक्ष्मीजी के मनोहर हाथों से प्यार किये जानेवाले और अपूर्व शोभाधारी हैं ॥२॥

गङ्‌जनक अनङ्गरि प्रिय, कपट बटु बलि छरन।
बिप्रतिय नृग बधिक के दुख, दोष दारुन दरन ॥३॥

जो गंगाजी के पिता हैं, शिवजी के प्यारे और छल से ब्रह्मचारी रूप में बली को छलनेवाले है। ब्राह्मण की स्त्री, अहल्या, राजा नृग और व्याध के भीषण दुःख-दोषों का नाश करने वाले हैं ॥३॥

सिद्ध सुर मुनिरन्द बन्दित, सुखद सब कह सरन।
सकृत उर आनत जिन्हहिँ जन, होत तारन तरन ॥४॥

जो सिद्ध, देवता और मुनिवृन्द से प्रणाम किये जानेवाले तथा सब को शरण देने में सुखदायक हैं। जिन्हें एक बार भी हृदय में ध्यान करने

से मनुष्य स्वयं तर जाते हैं अर्थात् स्वयम् संसार से पार हो जाते हैं और दूसरों को पार कराने वाले होते हैं ॥४॥

कृपासिन्धु सुजान रघुपति, प्रनत आरति हरन ।
दरस पास पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥५॥

हे कृपासिन्धु सुजान रघुनाथजी! आप दोनों के दुःख हरनेवाले हैं, तुलसीदास आपके चरण कमलों के दर्शन की आशा रूपी प्यास से मरना चाहता है कृपा करके उसकी प्यास बुझा कर इसकी रक्षा कीजिये ॥५॥

(२१६)

द्वारे भोरही को आज ।
रटत ररिहा आरि और न कौरही के काज ॥१॥

हे भगवान् ! आज आज सवेरे से ही मैं आपके का दरवाजे पर अड़ कर रें – रें रट कर गिडगिडा रहा हूँ, मुझे और कुछ नहीं चाहिए, केवल एक कौर से ही मेरा काम बन जाएगा ॥१॥

कलि कराल दुकाल दारुन, सब कुभाँति कुसाज ।
नीच जन मन ऊँच जैसे, कोढहू की खाज ॥२॥

कलिकाल रूपी भयानक विकट दुर्भिक्ष सब कुरीति और बुरे उपाय और साधनों से भरा पड़ा है। मन रूपी नीच मनुष्य की ऊँची चाह

ऐसी है जैसे कोढ़ में खुजलाहट अर्थात जैसे दुर्भिक्ष पीड़ित जन उत्तम भोजन की इच्छा करते है किन्तु उसके न मिलने से इस तरह दुखी होते हैं जैसे काढ़ के खुजाने से सुख तो मिलता है पर वाद में कष्ट होता है।॥२॥

हहरि हिय मैं सदय वूझेउँ, जाइ साधु-समाज ।
मोहु से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह, कहेउ कोसलराज ॥३॥

मैंने हृदय में डर कर दयायुक्त साधुमण्डली से जाकर पूछा कि मुझ जैसे अकाल पीडित के लिये कहीं किसी जगह कोई और ठिकाना है ! उन्होंने एक स्वर से कहा कौशल नरेश हैं ॥ ३॥

दीनता दारिद दलन को, कृपा वारिद बाज ।
दानि दसरथ राय के, वानइत में सिरताज ॥४॥

हे कृपा के समुद्र ! आपको छोड़ कर दीनता और दरिद्र का नाश करने वाला और कौन कृपा रूपी मेघ और बाज हैं। हे महाराज दशरथजी के प्यारे आप दानियों के शिरोमणि है॥४॥

जनम को भूखो भिखारी,
हाँ गरीव-निवाजापेट भरि तुलसिहि जवाइय,
भगति सुधा सुनाज ॥५॥

हे गरीब नवाज ! मैं जन्म का भूखा गरीब भिखमंगा हूँ, बस इस तुलसी को भक्तिरुपी अमृत के समान पेटभर मधुर अन्न का भोजन कराइए ॥५॥

(२२०)

करिय सँभार कोसलराय ।
और ठौरन और गति, अवलम्ब नाम बिहाय ॥१॥

हे कौशलराज ! मेरी रक्षा कीजिये, मुझे आप के नाम का आधार छोड़ कर न कोई दूसरी जगह है और न की कोई सहारा है ॥२॥

बूझि अपनी आपनो हित आप बाप न माय ।
राम राउर नाम गुरु सुर, स्वामि सखा सहाय ॥२॥

मेरी समझ में आप स्वयं अपने सेवकों का ऐसे हित कर देते हैं हैं, जैसे माता-पिता भी नहीं करते। हे रामचन्द्रजी ! आप का नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहायक बंधू है ॥२॥

राम राज न चलइ मानस-मलिन के छलछाय ।
कोपि तेहि कलिकाल कायर, मुयेहि घालत घाय ॥३॥

हे रामचन्द्रजी आपके राज्यकाल में मैले मनवाले कलिकाल की छलवाज़ी तो चली नहीं, इसलिए डरपोक कलिकाल क्रोध करके मुझ मुर्दे समान को ही अपनी चोटों से घायल करता है ॥३॥

लेत केहरि को बयर ज्याँ, मेक हति गोमाय ।
त्याँ हि राम गुलाम जानि, निकाम देत कुदाय ॥४॥

जैसे सियार मेढक को मार कर सिंह से बैर लेता हो, उसी तरह यह कलिकाल मुझ को रामचन्द्रजी का गुलाम मान कर अत्यन्त दुःख देता है ॥४॥

अकनि या के कपट करतब, अमित अनय अपाय।
सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहि पछिताय ॥ ५ ॥

इसके असंख्यों अन्याय, उपद्रव और कपट के कामों को सुन कर सुख-पूर्वक वैकुंठ में वसते हुए राजा परीक्षित को भी पछतावा होता होगा कि इस दुराचारी को हमने बिना मारे व्यर्थ ही छोड़ दिया ॥५॥

कृपासिन्धु बिलोकिये जन मन की सासर्ति साय ।
सरन आयउ देव दीन, दयाल देखन पाय ॥६॥

हे कृपासिन्धु दीनदयाल देव ! मैं आपके चरणों का दर्शन करने के लिये ही आप की शरण आया हूँ, दास की ओर निहारिये ताकि मेरे मन की दुर्दशा का नाश हो ॥६॥

निकट बोलि नबरजिये बलिजाउँ हनिय नहाया
देखिहँ हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ॥७॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, यदि आप दयावश कलियुग को पास बुला कर रोकना नहीं चाहते अथवा उसकी हाय हाय का ख्याल करके मारना भी नहीं चाहते क्योंकि आप स्वयं शीलसागर हैं तो हनुमानजी को कह दीजिए वह उसको ऐसे ही देखेंगे जैसे सिंह गाय के मुख की और देखता है ॥७॥

अरुन मुख भ्रू विकट पिङ्गल नयन रोष कषाय ।
बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥८॥

उनके लाल मुख, टेढ़ी भौंह और पीले नेत्र जो क्रोध से गेरुए रंग के हो जायेंगे। वीर पवनकुमार की याद करके उसके चित्त की तेजी और उत्साह अपने आप ही घट जाएगा। ॥८॥

बिनय सुनि विहँसे अनुज सौं, बचन के कहि भाय।
भलि कही कहे लखनहूँ हँसि, बने सकल बनाय ॥९॥

मेरी यह विनती सुन कर श्री रघुनाथ जी हँसे और छोटे भाई लक्ष्मण जी से मेरे वचनों के अभिप्राय कहा, तब लक्ष्मणजी ने हँस कर कहा ठीक ही तो कहता है, इस प्रकार मेरा सारा काम बन गया ॥९॥

दई दीनहि दाद सो सुनि, सुजन सदन बधाय ।
मिटे सङ्कट सोच पोच प्रपञ्च पाप निकाय ॥१०॥

श्री रामचन्द्र जी स्वामी ने इस गरीब का न्याय कर दिया, यह सुन कर सज्जनों के घर आनन्द की बधाई बजती है । संकट, सोच, अधमता, दुनिया का जंजाल और पाप-समूह सब नष्ट हो गये॥१०॥

पेखि प्रीति प्रतीति जन पर, अगुन अनघ अमाय ।
दासतुलसी कहत मुनिगन, जयति जय उरुगाय ॥ ११॥

श्री राम का अपने दास पर निर्गुण, निर्दोष और निष्कपट प्रेम देख कर तुलसीदासजी कहते हैं कि मुनिवृन्द विष्णु भगवान की जय जयकार करने लगे ॥१९॥

(२२१)

कृपाही को पन्थ चितवत, दीनहाँ दिन राति ।
होइ धौ केहि काल दीनदयाल जानि न जाति ॥१॥

मैं दीन होकर दिन रात आपकी कृपा की ही राह देखता हूँ। हे दीनदयाल ! नहीं जानता कि वह मुझ पर कब होगी?॥२॥

सगुन ज्ञान विराग भगति, सुसाधनन्हि की पाँति ।
भजी विकल बिलोकि कलि अघ, अवगनन्हि की थाति ॥२॥

गुणों के सहित ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि सुन्दर साधनों के समूह कलियुग के पाप और दोषों की धरोहर देख फर व्याकुल होकर भाग गई ॥२॥

अति अनीति कुरीति भइ भुइँ, तरनिहूँ तँ ताति ।
जाउँ कहँ बलिजाउँ कहुँ नहिँ ठाउँ मति अकुलाति ॥ ३ ॥

अत्यन्त अत्याचार और अनाचार से धरती सूर्य से भी बढ़ कर गरम हो गई है। बलिहारी जाता हूँ, मैं कहाँ जाऊँ मुझे कहीं जगह नहीं मिलती, मेरी बुद्धि घबराती है ॥३॥

आपु सहित न आपनो कोउ, बाप कठिन कुभाँति।
स्याम घन साँचिये तुलसी, सालि सफल सुखाति ॥४॥

हे पितृ तुल्य ! अपने शरीर के सहित अपना कोई नहीं, सबकी कठोर और कुरीति से तुलसी फले हुए धान की तरह सूख रहा है । आप श्याम मेघ हैं, कृपा रूपी जल से सींच कर इसको हराभरा कर कीजिये ॥४॥

(२२२)

बलिजाउँ और का सौं कहौं ।
सदगुन सिन्धु स्वामि सेवक हित,
कहुँ न कृपानिधि साँ लहौं ॥१॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, और किससे कहूँ ? सद्‌गुणों के सागर, सेवकों के हितकारी, स्वामी कृपानिधान के समान अन्यत्र कहीं नहीं पाता हूँ ॥१॥

जहँ जहँ लोभ लोल लालच बस, निज हित चित चाहनि चहाँ ।
तह तह तरनि तकत उलक ज्यौं, भटकि कुतरु कोटर गहाँ ॥२॥

जहाँ जहाँ लोभ से चञ्चल तृषणा के अधीन होकर मन में अपनी भलाई की इच्छा रखता हूँ, वहाँ वहाँ जैसे उल्लू सूर्य को देखते ही भ्रम में पड़ कर बुरे वृक्ष के कोटर में घुसता है उसी तरह मैं निराश होकर वापस लौट जाता हूँ ॥२॥

काल सुभाउ करम बिचित्र फल, दायक सुनि सिर धुनि रहौं ।
मो कह सकल सदा एकहि रस, दुसह दाह दारुन दहाँ ॥३॥

काल, स्वभाव और कर्म विलक्षण फल देनेवाले सुन कर सिर पीट कर रह जाता हूँ । क्योंकि मेरे लिए तो सदा सदा सभी एक समान ही असहनीय हैं, मैं तो सदा दुसह दुःख और भीपण ज्वाला ले जल करता हूँ ॥३॥

उचित अनाथ होइ दुख भाजन, भयउँ नाथ किङ्कर न हौं।
अब रावरो कहाइ न बूझिय, सरनपाल सासति सहाँ ॥४॥

हे नाथ ! मैं आप का दास नहीं हुआ था तो अपने आप को अनाथ समझ कर दुःख का पात्र होना उचित ही था; परन्तु अब आप का सेवक कहलाता हूँ, हे शरणागतों के रक्षक ! यह नहीं समझ आता कि तब क्यों मैं दुर्दशा सह रहा हूँ ॥४॥

महाराज राजीव विलोचन, मगन पाप सन्ताप अहाँ ।
तुलसी प्रभु जब कब जेहि तेहि बिधि, राम निवाहे निरवहाँ ॥५॥

है कमल नयन महाराज ! मैं पाप और दुःख में डूबा हुआ हूँ। हे रामचन्द्रजी ! जब कभी जिस किसी तरह से आप निर्वाह कराएँगे उसी तरह से तुलसी का निर्वाह होगा ॥५॥

(२२३)

आपनो कबहुँ करि जानिहीं ।
राम गरीबनिवाज राजमनि,
बिरद लाज उर आनिहीं ॥१॥

हे नाथ क्या आप कभी मुझे अपना समझेंगे । हे ग़रीबनिवाज ! हे राजाओं के शिरोमणि रामचन्द्रजी ! क्या आप अपने यश का मन में विचार करेंगे? ॥१॥

सीलसिन्धु सुन्दर सब लायक, समरथ सदगुन खान हो।
पाले हो पालत पालहुगे, प्रनत प्रेम पहिचानही ॥२॥

आप शील के सागर, सुन्दर, सर्व समर्थ और उत्तम गुणों की खान हो। आप शरणागतों के प्रेम को पहचानते हो, आपने सदैव उनका पालन किया है, पालन कर करे हो और सदैव पालन करते रहोगे ॥२॥

बेद पुरान कहत जग जानत, दीनदयाल दिनदानि हो।
कहि श्रावत बलिजाउँ मनहुँ मम, बार बिसारे बानि हो॥३॥

वेद पुराण कहते हैं और दुनियाँ जानती है कि आप दीनदयालु नित्य ही दान देनेवाले हैं । बलिहारी जाता हूँ, बाध्य हो कर कहना ही पड़ता है की मानों मेरी बारी आप अपना स्वभाव भूल गये हैं ॥३॥

भारत दीन अनाथन्ह के हित, मानत लौकिक कानि हो।
है परिनाम भलो तुलसी को, सरनागत भय भानिहीं ॥४॥

आप दुखी, गरीब और अनाथों का भला करने में भी लोक की लाज मानते हो। जो भी हो, तुलसीदास का तो अंत में कल्याण ही होगा, क्योंकि आप शरणागत तुलसीदास के भय को नष्ट करने वाले हैं ॥४॥

(२२४)

रघुबरहि कबहुँ मन लागिहै ।
कुपथ कुचाल कुमति कुम नोरथ,

कुटिल कपट कब त्यागिहै ॥१॥

अरे मन ! क्या तू कभी रघुनाथजी से भी कभी लगेगा और कुमार्ग, कुटिलता, दुर्बुद्धि, कुचाल, बुरी कामनाएं तथा छल कब छोड़ेगा ? ॥१॥

जानत गरल अमिय बिमोह बस, अमिय गनत करि आगि है।
उलटी रीति प्रीति अपने की, तजि प्रभु पद अनुरागि है ॥२॥

अज्ञानता वश विष को अमृत जानता है और अमृत को आग के समान दुखदायी समझता है । इस उलटी रीति की अपनी प्रीति को त्याग कर तू प्रभु रामचन्द्रजी के चरणों से कब प्रेम करेगा ॥२॥

आखर अरथ मन्जु मृद्ध मोदक, राम प्रेम पगि पागिहै।
अस गुन गाइ रिझाइ स्वामि साँ, पइहै जो मुँह माँगिहै ॥३॥

तू कब श्री राम नाम के सुन्दर अक्षर और अर्थ रूपी मुलायम लड्डू को अपने प्रेम रुपी चाशनी में डुबायेगा जो तू इस प्रकार गुण गान कर उनको प्रसन्न करेगा तो स्वामी से तुझे मुंह माँगा पदार्थ मिल जायेगा ॥३॥

तू एहि बिधि सुख-सेज सोइहै, जरनि जीव की भागिहै।
राम प्रसाद दासतुलसी उर, रामभगति जुग जागिहै ॥४॥

हे मन ! तू इस तरह सुख की सेज पर सोयेगा और तेरे मन की जलन दूर हो जायेगी। रामचन्द्रजी की कृपा से तुलसीदास के हृदय में रामभक्ति का युग फैलेगा ॥४॥

(२२५)

भरोसो और आइहै उर ताके ।
के कहुँ लहइ राम सो साहिब, के अपनो वल जाके ॥१॥

दूसरे का भरोसा उसी के हृदय में आएगा जिसको या तो रामचन्द्रजी के समान कहीं स्वामी मिले या फिर अपने साधन आदि की ही शक्ति हो ॥२॥

कै कलिकाल कराल नसूझत, मोह मार मद छाके ।
के सुनि स्वामि सुभाव न रह चित, जो हित सब अँग थाके ॥२॥

अथवा जिसे अज्ञानता और काम के नशे में मस्त हो जाने के कारण भीषण कलिकाल नहीं सूझता है । अथवा जिसके मन में स्वामी का स्वभाव जान कर, जो समस्त अंगों के थक जाने पर भी जीव का कल्याण करते हैं, भी विश्वास न रहे वही दूसरे का भरोसा करेगा ॥२॥

हौं जानत सब भाँति अपनपौ, प्रभु सौं सुनेउँ न साके।
उपल भील खग मृग रजनीचर, भल भये करतब काके ॥३॥

मैं अपने क्षुद्र पुरुषार्थ को सब तरह से जानता हूँ और प्रभु रामचन्द्रजी के समान सामर्थ्यवान किसी को भी कहीं जानता। पत्थर-अहिल्या, भील वनवासी, पक्षी-जटायु, मृग-हाथी और राक्षस-विभीषण इनमें किसके कर्म शुभ थे? ॥३॥

मो को भयेउ नाम सुरतरु सौं, राम कृपाल कृपा के ।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्याँ, बालक माय बबा के ॥४॥

कृपालु रामचन्द्रजी की कृपा से मेरे लिए राम नाम कल्पवृक्ष के समान हुआ है। अब तुलसी इस अनुग्रह के कारण ऐसा सुखी और निश्चिन्त है, जैसे कोई बालक अपने माता पिता के राज्य में होता है ॥४॥

(२२६)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मो को राम को नाम काम तरु, कलि कल्यान फरो ॥१॥

जिसको दूसरे का भरोसा हो वह करे, मेरे लिए तो इस कलिकाल में केवल श्री रामचन्द्रजी के नाम रुपी कल्पवृक्ष का सहारा है जो इस कलिकाल में कल्याण का फल प्रदान करता है ॥१॥

करम उपासन ज्ञान बेद मत, सब सब भाँति खरो ।
मोहि तो सावन के अन्धहि ज्यौं, सूझत रङ्गहरो ॥२॥

कर्म, उपासना और ज्ञान सब वेदमतानुसार सभी प्रकार से सच्चे हैं; किन्तु मुझे तो सावन के अन्धे की तरह हरा ही हरा रंग सूझता है ॥२॥

चाटत रहेउँ स्वान पातरि ज्यौं, कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम सुधा रस, पेखत परसि धरो ॥३॥

मैं कुत्ते की तरह पत्तल चाटता फिरता था परन्तु कभी पेट नहीं भरा। अब मैं नाम स्मरण करने से देखता हूँ कि मेरे लिए अमृत रस परोस कर रखा हुआ है ॥३॥

स्वारथ औ परमारथह को, नहिँ कुञ्जरोनरो ।
सुनियत सेतु पयोधि पखानन्हि, करि कपि कटक तरो ॥४॥

मेरे लिए तो राम नाम स्वार्थ और परमार्थ दोनों का ही साधक है, यह नरो वा कुंजरों वा अर्थात मनुष्य है या हाथी जैसा दुविधा भरा नहीं है। क्योंकि मैंने सुना है कि समुद्र में पत्थरों का पुल बना कर वानरों का दल समुद्र पार कर गया था ॥४॥

प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ, ताको काज सरो।
मेरे माय बाप दोउ आखर, हौं सिमु अरनि अरो ॥५॥

जिसकी जहाँ प्रीति और विश्वास है उसका काम वहीँ होता है। दोनों अक्षर 'रा' और 'म' मेरे माता-पिता हैं और मैं अबोध बालक की तरह हठ करके अड़ा हुआ हूँ ॥५॥

सङ्कर साखि जो राखि कहउँ कछु, तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम नामहि तँ, तुलसिहि समुझि परो ॥६॥

यदि कुछ भी छिपा कर कहता हूँ तो भगवान शंकर जी साक्षी हैं, मेरी जीभ गल कर गिर जायगी। तुलसी को यही समझ में आया है की मेरा कल्याण केवल राम नाम से ही हो सकता है ॥६॥

(२९७)

नाम राम रावरो हित मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह साँ, भुज उठाइ कहउँ टेरे ॥१॥

हे रामचन्द्र जी ! आप का नाम मेरा हितकारी है, यह मैं स्वार्थ और परमार्थ के साथियों से भुजा उठा कर और पुकार कर कहता हूँ ॥१॥

जननि जनक तजे जनमि करम बिनु, विधि सिरजेउ अवडेरे ।
मोह से कोउ कोड कहत राम को, सो प्रसङ्ग केहि करे ॥२॥ ।

माता-पिता ने मुझे जन्म कर कर्म हीन जान त्याग दिया, विधाता ने मुझे अभागा बनाया। फिर भी मुझ बदकिस्मत को कोई कोई रामचन्द्रजी का दास कहते हैं वह किसके सम्बन्ध से कहते हैं? अर्थात् नाम के ही प्रभाव से मैं रामभक्त कहता हूँ ॥२॥

फिरे ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखहु दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल-फल, अब हौं बबर बहरे ॥३॥

बिना नाम स्मरण के मैं पेट के लिये तरसता फिरा, मुझे देख कर दुःख भी दुखी होता था। श्री राम नाम के अनुग्रह से अब मेरे लिए बबूर और बहेड़े के पेड़ भी आम का फल देने वाले होते हैं ॥३॥

साधत साधु लोक परलोकहि, सुनियत जतन घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम को, एक गाँठि कइफेरे ॥४॥

सुनता हूँ की अनेकों यज्ञ करके अनेकों साधुजन लोक और परलोक नाम ही से सुधार लेते हैं। तुलसी को नाम ही का सहारा है, यही कई फेरे की एक गाँठ है ॥४॥

(२२८)

प्रिय राम नाम तें जाहि न रामौ।
ताको भलो कठिन कलि कालहु, आदि मध्य परिनामौ ॥१॥

जिनको राम नाम से बढ़ कर रामचन्द्रजी भी प्यारे नहीं हैं, उनका इस कठिन कलिकाल में भी आदि मध्य और अन्त में कल्याण है ॥१॥

सकुचत समुझि नाम महिमा मद, मोह लोभ कोह कामौ।

राम नाम जप निरत सुजन पर, करत छाँह घोर घामौ ॥२॥

नाम की महिमा समझ कर मद, मोह, लोभ, क्रोध और काम लज्जित हो जाते हैं। राम नाम के जप में तत्पर सज्जनों पर कड़ी धूप भी छाया कर देती है अर्थात रामनाम के जपनेवालों पर भीषण तापकारी संसार भी शीतल और सुखद हो जाता है। ॥२॥

नाम प्रभाव सही जो कहइ कोउ, सिला सरोरुह जामौ ।
जो सुनि सुमिरि भाग्य भाजन भइ, सुकृत सील भील-भामौ ॥३॥

राम नाम के प्रभाव से यदि कोई कहे कि पत्थर पर कमल उत्पन्न हो गया है तो उसको सत्य समझना चाहिए। जिसको सुन कर और स्मरण करके भीलनी पुण्य की सीमा और भाग्य की पात्र हो गई ॥३॥

बालमीकर अजामिल के कछु, हुतो न साधन सामौ ।
उलटे पलटे नाम महातम, गुञ्जनि जितो ललामौ ॥४॥

वाल्मीकि और अजामिल के पास कुछ भी साधन की सामग्री नहीं थी। उलटे पुल्टे राम नाम के माहात्म्य के बल पर उन्होंने से घुघुंचियों के बदले रत्न को जीत लिया ॥४॥

राम तौं अधिक नाम करतब जेहि, किये नगर गत गामौ ।
भयउ बजाइ दाहिनो जो जपि, तुलासदास से बामौ ॥ ५॥

नाम की करनी रामचन्द्रजी से बढ़ कर है जिसने गये गुज़रे गाँवों को नगर बना दिया। जिसको जप कर तुलसीदास के समानबुरे जीव भी डंके की चोट पर सीधा हो गया ॥५॥

(२२९)

गरेगी जीह जो कहउँ और को हौँ ।
जानकिजीवन जनम जनम जग, ज्यायो तिहारेहि कौर को हौँ ॥१॥

जो मैं कहूँ कि श्री राम जी तो छोड़ कर मैं किसी दूसरे का दास हूँ तो मेरी यह जीभ गल कर गिर जाए। हे जानकीरमण ! मैं तो जन्म जन्मांतर से जगत में आप के दिए टुकड़े पर ही पला हूँ ॥१॥

तीनि लोक तिहुँ काल न देखत, सुहृद रावरे जोर को हौं।
तुम्ह सौं छल करि जनम जनम कृमि, होइहाँ नरक घोर को हौँ ॥२॥

मैं तीनों लोक और तीनो काल में आप की बराबरी का मित्र नहीं देखता हूँ। आप से छल करके जन्म जन्म भयानक नरक का कीड़ा होऊँगा ॥२॥

कहा भयउ मन मिलि कलिकालहि, कियेउ भौतुवा भौंर को हौँ।
तुलसिदास सतिल नित एहि बल, बड़े ठिकाने ठौर को हौँ ॥३॥

क्या हुआ जो कलिकाल ने मेरे मन तो से मिल कर मुझे भवसागर के भँवर का चक्कर खाने वाला बना रक्खा है। तुलसीदास आपके बल से सदा शान्त और उद्वेग रहित है कि मैं बड़े प्रामाणिक स्थान का हूँ ॥३॥

(२३०)

अकारन को हित और को है ।
विरद गरीवनिवाज कोन को, भौह जासु जन जोहै ॥१॥

बिना अपने मतलब के दूसरे का हितकारी कौन है ? दीनों पर दया करने में किसका यश है जिसकी यह दास भृकुटी निहारे? अर्थात् आप के सिवा ऐसा कोई नहीं है ॥१॥

छोटे बड़े चहत सब स्वारथ, जो बिरश्चि बिंरचो है।
कोल कुटिल कपि भालु पालिबो, कौन कृपालहि सोहै ॥२॥

छोटे से बड़े पर्यंत जिन्हें ब्रह्मा ने बनाया है सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं । भला भील, बन्दर और भालुओं का पालन करना किस दयालु को सुहाता है । ॥२॥

काको नाम अनख आलस कहे, अघ अवगुनन्हि विछोहे।
किय तुलसी से सेवक संग्रह, सठ सब दिन साँइदोहै ॥३॥

क्रोध और आलस्य से भी किसका नाम लेने से पाप और दुर्गुणों का वियोग होता है। सदैव स्वामिद्रोही तुलसी के समान दुष्ट सेवक जो भी जिन्होंने अपना लिया ॥३॥

(२३१)

और मेरे को है काहि कहिहौँ ।
रत राज ज्याँ मन को मनोरथ, जेहि सुनाइ सुख लहिहौँ ॥१॥

मेरे और कौन है किससे कहूँगा? मेरे मन का मनोरथ तो रंक से राजा बनने की है, वह मनोरथ किसे सुना कर सुख पाऊँगा ॥१॥

मन कङ्गाल की इच्छा राज पाने की है। अभिलापा सुन कर सारा जगत हँसेगा । श्राप दयालु हैं, मनोरथ कहने में श्रानन्द मिलता है कि कमी रुपा करेंगे तो श्राशा पूरी हो जायगी। यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

जमजातना जोनि सङ्कट सत्र, सहे दुसह अरु सहिहौँ ।
मो को अगम सुगम तुम्हको प्रभु, तउ फल चारिन चहिहौँ ॥२॥

मैंने यमपुरी की दुर्दशा और सब योनियों के असहनीय संकट को सहा है और सदा सहूँगा। यद्यपि चारों फल मुझको मिलना दुर्गम है

और आपके लिए उनको देना सहज है, तो भी मैं उन्हें नहीं चाहता ॥२॥

खेलन को खग मृग तरु किङ्कर, होइ राउर हाँ रहिहौँ ।
एहि नाते नरकहु सचु या विनु, परमपदह दुख दहिहौँ ॥ ३ ॥

मैं तो आपके हाथ के खिलौने रुपी पक्षी, मृग, वृक्ष और कंकर पत्थर होकर रहूँगा । इस नाते से नरक में भी आनन्द पाऊँगा और इसके बिना मोक्ष पाने पर भी दुःख से जलूँगा ॥३॥

इतनी जिय लालसा दास के, कहत पानही गहि हौँ।
दीजै बचन कि हृदय आनिये, तुलसी पन निरवहिहौँ ॥४॥

दास के मन जी में इतनी लालला है उसको मैं आप के चरण कमल को पकड़ कर पड़ा रहूँ। आप या तो वचन दीजिये अथवा मन में निश्चय कर लीजिए कि तुलसी की इस प्रतिज्ञा को मैं पूरी करुंगा ॥४॥

(२३२)

दीनबन्धु दूसरो कह पावौँ ।
को तुम्ह बिनु पर पीर पाइहै, केहि दीनता सुनावौँ ॥१॥

आप के समान दीनबन्धु दूसरा कहाँ पाऊँ, आप के बिना पराई पीड़ा कौन समझ सकता है। किसे दीनता सुनाऊँ ॥१॥

प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक, जहँ जहँ चितहि डोलावौं ।
इहाइ समुझि सुनि रहउँ मौनही, कहि भ्रम कहा गँवावौं ॥२॥

हे कृपालु ! जहाँ जहाँ चित्त दौड़ाता हूँ सब स्वामी दया हीन और अयोग्य देखता हूँ। यही समझ कर और सुन कर चुप ही रहता हूँ कह कर मैं अपना भरम क्यों खोऊँ अर्थात मुझे अयोग्य स्वामियों से भलाई की आशा नहीं है ॥२॥

गोपद बुड़िये जोग करम करि, बातन्हि जलधि थहावौं ।
अति लालची काम किङ्कर मन, मुख रावरों कहावौं ॥३॥

गाय के खुर में डूबने योग्य कर्म करके बातों से समुद्र की थहा लेता हूँ । मन काम की टहल करने का अत्यन्त लालची है और मुख से आप का दास कहाता हूँ ॥३॥

तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावौं ।
सोइ कीजै जेहि भाँति छाडि छल, द्वार परो गुन गावौं ॥४॥

है नाथ! आप तुलसी के मन की सभी बातें जानते हैं मैं अपना कुछ कह कर जनाता हूँ। वहीँ कीजिये जिस प्रकार छल छोड़ कर दरवाजे पर पड़ा आप का गुण गान कर सकूं ॥४॥

(२३३)

मनोरथ मन को एकहि भाँति ।
चाहत मुनि मन अगम सकृत फल, मनसा अघ न अघाति ॥१॥

मेरे मन का मनोरथ भी कुछ विलक्षण ही है, यह पुण्य फल तो ऐसा चाहता है जो मुनियों के मन में दुर्गम है, किन्तु इच्छा पापों से तृप्त नहीं होती है ॥१॥

करम भूमि कलि जनम कुसङ्गट, मति बिमोह मद भाँति ।
करत कुजोग कोटि क्यॉँ पइयत, परमारथ पथ साँति ॥२॥
कर्मभूमि में जन्म और कलियुग का नीच साथ पाकर बुद्धि, अज्ञान के नशे में मतवाली करोड़ो कुसंग करती है, फिर मैं ज्ञान-मार्ग का आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ॥२॥

सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुति, बूझेउँ राग बजे ताँति ।
तुलसी प्रभु सुभाव सुरतरु साँ, ज्यॉँ दरपन मुख काँति ॥३॥

साधु और गुरु की सेवा करके वेद-पुराणों को सुन कर परम शांति का ऐसा अनुभव हो जाता है जैसे सारंगी बजते ही राग समझ लिया जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्री रामचन्द्रजी का स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है परन्तु वह ऐसा है जैसे आइने में मुख की कान्ति झलकती हैं ॥३॥

(२३४)

जनम गयो बादिहि बर बीति ।
परमारथ पाले न परेयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥ १ ॥

उत्तम जन्म व्यर्थ ही बीत गया, जरा भी परमार्थ पल्ले नहीं पड़ा। दिनोदिन अत्याचार ही बढ़ता जाता है ॥२॥

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जुवा जुबति लियो जीति।
रोग, बियोग सोग स्त्रम सङ्कल, बड़ि बय बथहि अतीति ॥ २॥

खाने और खेलने में लड़कपन चला गया और युवावस्था को युवती ने जीत लिया । कठिन रोग, वियोग, शोक और परिश्रम में मध्या अवस्था व्यर्थ ही वीत गई ॥२॥

राग रोष इरिषा बिमोह बस, रुचीन साधु समीति ।
कहे न सुने गुन गन रघुबर के, भइ न राम-पद प्रीति ॥३॥

ममत्व, क्रोध, ईर्ष्या और अज्ञान के वश साधु-मण्डली अच्छी नहीं लगी। रघुनाथजी के गुणगण न कहे न सुने और न ही रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति हुई ॥३॥

हृदय दहत पछितात अनल इव, सुनत दुसह भव-भीति ।
तुलसी प्रभु तँ होइ सो कीजिय, समुझि विरद की रीति ॥४॥

असहनीय संसारी भय सुन फर पछताने से हृदय अग्नि के समान जलता है। हे प्रभो। अपने यश की रीति समझ कर तुलसी के लिये जो आप से जो हो सके वह कीजिये ॥४॥

(२३५)

ऐसहि जनम समूह सिराने ।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि, सेवत पाय बिराने ॥१॥

इसी तरह असंख्यो जन्म बीत गये, प्राणनाथ रघुनाथजी के समान स्वामी को छोड़ कर दूसरों के चरणों की सेवा करते फिरे ॥३॥

जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलिमल साने।
सखत बदन प्रसंसत तिन्ह कह, हरि तँ अधिक करि माने ॥२॥

जो मूर्ख जीव कपटी, कायर, दुष्ट, केवल पाप में लिपटे हुए हैं उनकी प्रशंसा करते मुख खुलता था उन्हें भगवान
से बढ़ कर माना ॥२॥

सुख हित कोटि उपाय निरन्तर, करत न पाय पिराने।
सदा मलीन पन्थ के जल ज्याँ, कबहुँ न हृदय थिराने ॥३॥

सुख के लिये निरन्तर करोड़ों उपाय करते हुए पाँव कभी भी पीड़ित नहीं हुए, तो भी हृदय रास्ते के पानी की तरह सदा मलिन बना रहा, कभी स्थिर होकर स्वच्छ नहीं हुआ ॥३॥

यह दीनता दूरि करिबे कहँ, अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिन्ता न मिटइ बिनु, चिन्तामनि पहिचाने॥४॥

यह दीनता दूर करने के लिये असंख्यों यत्न मन में सोचे; किन्तु फल कुछ भी नहीं मिला । तुलसीदासजी कहते हैं कि विना चिन्तामणि श्री रामचन्द्रजी को पहचाने चित्त की चिन्ता नहीं मिटती ॥४॥

(२३६)

जौं जिय जानकीनाथ न जाने।
तो सब करम धरम समदायक,
ऐसहि कहत सयाने ॥ १॥

यदि जीव ने जानकीनाथ को नहीं जाना तो सब कर्म धर्म थकावट देनेवाले हैं, बुद्धिमान लोग ऐसा ही कहते है ॥ १ ॥

जे सुर सिद्ध मुनीस जोगविद, बेद पुरान बखाने।
पूजा लेत देत पलटे सुख, हानि लाभ अनुमाने ॥२॥

वेद और पुराणों में जिनका बखान किया गया है ऐसे देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और योग के जाननेवाले योगी हैं, वह पूजा लेते फिर उसके बदले में सांसारिक सुख देते हैं और ऐसा भी वह अपने हानि लाभ का विचार करके करते हैं ॥२॥

काको नाम धोखे हूँसुमिरत,पातक पुञ्ज सिराने ।
विप्र बधिक गज गीध कोटि खल, कवन के पेट समाने ॥३॥

किसका नाम धोखे से भी स्मरण करने से पाप की राशि घट गई और ब्राह्मण अजामिल, व्याध, हाथी, गिद्ध आदि करोड़ों दुष्ट किसके अन्दर समां गए ॥३॥

मेरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से 'गुन उर आने।
तुलसिदास तेहि सकल पास तजि,भजहि न अजहुँ अजाने ॥४॥

जो अपने दासों के सुमेरु पर्वत के समान दोष को दूर करके धूलि के बराबर गुण को हृदय में लाते हैं। तुलसदासजी कहते हैं-अरे मूर्ख ! अब भी सारी आशाओं को छोड़ कर तू उनका भजन नहीं करता ॥४॥

(२३७)

काहे न रसना रामहि गावहि।
निसि दिन पर अपवाद दथा कत, रटि रटि राग बढ़ावहि ॥१॥

हे जिह्वा! तू रामचन्द्रजी का गुण क्यों नहीं गाती ? रातोदिन पराई निन्दा रट रट कर क्यों व्यर्थ उसमें प्रीति बढ़ाती है ॥ १॥

नर-मुख सुन्दर मन्दिर पावन, बसि जनि ताहि लजावहि ।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत, रबि-कर-जल कहँ धावहि ॥२॥

मनुष्य का मुख सुन्दर पवित्र मन्दिर है उसमें बस कर उसको क्यों लज्जित कर रही है? चन्द्रमा के समीप रह कर अमृत को छोड़ सूर्य के किरणों से उत्पन्न मृग तृष्णा के जल के लिये दौड़ रही है ? ॥२॥

काम-कथा कलि-कैरव चन्दिनि, सुनत स्रवन दै भावहि ।
तिन्हहिं हटकि कहि हरि कल कीरति, करन कलङ्क नसावहि ॥३॥
संसार के भोगों की बातें कलियुग रुपी कुमुद के लिये चाँदनी के सदृश्य हैं, उसको भी प्रेमपूर्वक कान लगा कर सुनती है। अरी जीभ ! उस विषय चर्चा को रोक कर श्री हरि की सुन्दर कीर्ति को कह कर कानों के कलंक का नाश कर ॥३॥

जातरूप मति युक्ति रुचिर मनि, रचि रचि हार बनावहि।
सरन सुखद रविकुल-सरोज-रबि, राम नृपहि पहिरावहि ॥४॥

बुद्धि रूपी सुवर्ण और युक्ति रूपी सुन्दर मणियों के रच रच कर हार बना। और इस प्रकार छन्दों की माला शरणागतों के सुखदायी सूर्यकुल रूपी सूर्य राजा रामचन्द्रजी को पहना ॥४॥

बाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि, सरस चरित चित लावहि ।
तुलसिदास भव तरहि तिहूँ पुर, तू पुनीत जस पावहि ॥ ५ ॥

वाद विवाद का स्वाद छोड़ कर श्री हरि का भजन करके उनकी रसीली लीला में लौ लगा । इससे तुलसीदास संसार सागर से पार हो जायगा और तू तीनों लोकों में पवित्र कीर्ति को प्राप्त करेगी ॥५॥

(२३८)

आपनो हित रावरे सों जो सूझे।
तौ जन तन पर अवत सीस सुधि, क्यों कबन्ध ज्यों जूझै ॥१॥

हे नाथ ! इस जीव यो यदि यह समझ आ जाए की इसका कल्याण केवल आप से ही हो सकता है तो यह शरीर पर सिर विद्यमान रहते हुए भी बिना सिर के कबंध की तरह क्यों लड़ता मरे ? ॥१॥

निज अवगुन गुन राम रावरे, लखि सुनि मति मन रूझै।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की, को कृपाल बिनु बूझे ॥२॥

हे रामचन्द्रजी ! अपना अवगुण और आप का गुण देख सुन कर तुलसीदास की बुद्धि स्थिर हो जाए तो सारी संसारी विपत्ति दूर हो जाए । हे कृपालु ! तुलसी का स्वभाव, कथन और रहस्य आप के बिना कौन समझेगा ? ॥२॥

(२३६)

जाको हरि दृढ़ करि अङ्ग करयों ।
सोइ सम सील पुनीत बेद बिद, विद्या गुनन्हि भरयो ॥१॥
जिसको श्री हरि ने दृढ़ता पूर्वक अपना बना कर हृदय से लगा लिया वही शान्त, शीलवान, पवित्र, वेदज्ञ, विद्या और गुणों से भरा है ॥१॥

उतपति पंडु-सुतन्ह की करनी, सुनि सतपन्थ डरयो ।
ते त्रयलोक पूज्य पावन जस, सुनि सुनि लोक तरयो॥२॥

पाण्डु पुत्रों की उत्पत्ति और करनी सुनकर सन्मार्ग तक डर गया था परन्तु श्री हरि की कृपा से वह तीनों लोकों में पूजनीय हुए और उनका पवित्र यश सुन सुन कर लोग संसार-समुद्र से पार होते हैं ॥२॥

जो निज धरम बेद बोधित सो, करत न कछु बिसस्यो ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जत कर गहि उधरयो ॥३॥

जिस राजा नृग ने वेदों द्वारा विदित अपना धर्म करने में कुछ नहीं कसर नहीं छोड़ी, वह बिना अपराध गिरगिट हो कर कुएँ में गिर पड़े और भगवान ने हाथ पकड़ कर उनका उद्धार किया ॥३॥

ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड दहन छम, गरभ न नृपति जरयो ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिन वध, सो पुनि फेन मरयो॥४॥

जो अश्वत्थामा ब्रह्माण्ड के जलाने में समर्थ था, वह राजा परीक्षित को ब्रह्मास्त्र से भी गर्भ में नहीं भस्म कर पाया। और जन्म मरण से रहित, वज्र से भी नहीं मरनेवाला नमुचि दैत्य केवल समुद्र के फेन से मर गया ॥४॥

विप्र अजामिल अरु सुरपति तँ, कहा जो नहिं बिगरयो।
उनको कियेउ सहाय बहुत उर, को सन्ताप हरयो ॥५॥

ब्राह्मण अजामिल और इन्द्र के आचरण में ऐसी कौन सी बात थी जो नहीं बिगडी हो? किन्तु आपने उनकी सहायता करके उनके हृदय का सन्ताप हर लिया ॥५॥

गनिका अरु कदरज तँ जग महँ, अघ न करत उबरयो।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि, निज हृदि भवन धरयो॥६॥

वेश्या और कामदेव ने जगत में ऐसा कौन सा पाप है जो नहीं किया हो, किन्तु भगवान ने उनके चरित्र को पवित्र मान कर अपने हृदय मन्दिर में स्थान दिया ॥६॥

केहि आचरन भलो मानहु प्रभु, सो नहिँ समुझि परयो।
तुलसिदास रघुनाथ कृपा को, जोवत पन्थ खरयो ॥७॥

हे प्रभो ! वह नहीं समझ आता कि किस आचरण से आप प्रसन्न होते हैं। इसी कारण तुलसीदास तो केवल खड़ा हुआ रघुनाथजी की कृपा का मार्ग निहार रहा है। ॥७॥

(२४०)

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम्हरीझे।
गनिका गीध बधिक हरिपुर गये, लेइ करसी प्रयाग का सीझे॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! जिस पर आप प्रसन्न हुए वही पुण्यात्मा, पवित्र और सच्चा है। वेश्या, गिद्ध और व्याध जो वैकुंठधाम को चले गए उन्होंने कब प्रयाग में जा कर ताप किया कब वह और कंडों की आँच में तपे थे ॥१॥

कबहुँ न डगेउ निगम-मग तँ पग, नग जगजान जिते दुख पाये ।
गज धौ कवन दिछित जेहि सुमिरत, लेइ सुनाभ वाहन तजिधाये
॥२॥

जिसका कभी वेदमार्ग से पाँव नहीं डिगा किन्तु संसार जानता है ऐसे राजा नृग ने कितना दुःख प्राप्त किया। न जाने उस हाथी ने कौन सी शिक्षा प्राप्त की थी जिसके स्मरण करते ही आप सुदर्शन चक्र लेकर और वाहन (गरुड़) को छोड़ कर पैदल ही दौड़ पड़े थे ॥२॥

सुर मुनि विप्र बिहाइ बड़े कुल,गोकुल जनम गोप ग्रह लीन्हाँ।
बाँऔं दियेउ बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हाँ
॥३॥

आपने देवता, मुनि और ब्राह्मणों के बड़े कुल को छोड़ कर गोकुल में अहीर के घर जन्म लिया। दुर्योधन के ऐश्वर्य को ठुकरा कर आपने विदुर के घर जाकर भोजन किया ॥३॥

मानत भलो भाव भगतिहि तँ, कछुक रीति पारथहि जनाई।
तुलसीसहज सनेह राम-बस, और सबइ जल की चिकनाई॥ ४॥

भगवान् अपने अनन्य बह्क्तो की भक्ति ही से अच्छी प्रीति मानते हैं, उसकी रीति कुछ अर्जुन को प्रकट दिखाई अर्थात् भक्तिवश उनके सारथी बने। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी स्वाभाविक स्नेह के वश में हैं और सब साधन ऐसे हैं जैसे पानी पर चिकनाई होती है ॥४॥

(२४१)

तब तुम्ह मोहू से सठन्हि हठि गति देते।
कैसहुँ नाम लियेउ कोउ पाँवर, सुनि सादर आगे होइ लेते ॥१॥

जब आपने अनेकों दुष्टों को परम गति प्रदान की है तो आप मुझ जैसे दुष्टों को भी हठपूर्वक मोक्ष क्यों नहीं देते? कोई भी अधम कैसे भी आपका नाम लेता हो, आप उसको सुन कर आदर के साथ आगे होकर उसे लेते हो अर्थात उसे अपना लेते हो ॥१॥

पाय खानि जियजानि अजामिल, जमगन तमकि त तेहि मे ते।
लियेउ छड़ाइ चले कर मीजत, पीसत दाँतं गये रिस रेते ॥२॥

यमदूतों ने मन में अजामिल को पाप की खान जान कर क्रोध से उसको कष्ट पहुँचा कर भयभीत किया परन्तु जैसे ही उसने अपने पुत्र का नाम नारायण पुकारा, आपने तुरंत ही उसे छुड़ा लिया। यमदूत हाथ मलते, दाँत पीसते, क्रोधित हो खाली हाथ ही लौट गये ॥२॥

गौतमतिय गज गीध बिटप कपि, है नाथहि निक मालुम ते ते।
जिन्ह जिन्ह काज समाज साधु तजि, कृपासिन्धु तब उठि तहँ गे ते ॥३॥

गौतममुनि की स्त्री, हाथी, गिद्ध, यमलार्जुन वृक्ष और सुग्रीव वानर इन सब की करनी स्वामी को अच्छी तरह मालूम है। परन्तु जब जिसका काम पड़ा तब हे कृपासिन्धु ! आप साधु समाज छोड़ कर, वहां से तुरंत चल दिए थे ॥३॥

अजहुँ अधिक आदर एहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते।
मेरे पासङ्गहु न पूजिहइँ, होइ गये हैं होनेहुँ खल जेते ॥४॥

अब भी इस दरवाजे परपापियों का बड़ा आदर है, न जाने कितने अधम पवित्र होते हैं। वह जितने दुष्ट हो गये, वर्तमान में हैं और आगे होने वाले हैं उनका मेरे बराबर होना तो दूर रहा, मेरे आप पास भी नहीं हैं ॥६॥

हाँ अबला करतूति तिहारी, चितवत हुतो न रावरे चेते।
अव तुलसी पूतरो बाँधिहै, सहिन जात मोपै परिहास एते ॥५॥

अब तक मैं आप की करनी देख रहा था आप ख्याल नहीं करते हैं तो अब तुलसी आप का पुतला बांधेगा, मुझ से इतनी बड़ी निन्दा नहीं सही जाती है ॥५॥

(२४२)

तुम्ह सम दीनबन्धु न दीन कोउ, मो सम सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिलमौलिमनि नहिं जग, तुम्ह सम हरि न हरन कुटिलाई ॥१॥

हे महाराज रघुनाथजी ! सुनिये, आप के समान दीनबन्धु और मेरे बराबर दीन कोई नहीं है। हरे ! मेरे बराबर संसार में कोई पापियों का शिरोमणि नहीं है और आप के समान कोई कुटिलता का नाश करने वाला पाप हारी नहीं है ॥१॥

हौँ मन बचन करम पातकरत, तुम्ह कृपाल पतितन्ह गतिदाई।
हौँ अनाथ तुम्ह प्रभु अनाथ-हित, चित यह सुरति कबहुँ नहिँ जाई ॥२॥

मैं मन वचन और कर्म से पाप में तत्पर हूँ और आप कृपा के स्थान पापियों को मोक्ष देनेवाले हैं । हे प्रभो ! आप अनाथों के हितकारी हैं और मैं अनाथ हूँ, यह स्मरण मेरे मन से कभी नहीं जाता अर्थात् इसकी सुधि मुझे आठों पहर बनी रहती है ॥२॥

हौं भारत प्रारति नासन तुम्ह, कीरति निगम पुरानन्हि गाई।
हौं सभीत तुम्ह हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई ॥३॥

मैं दुखी हूँ आप दुःखों का नाश करने वाले हैं, आप की यह कीर्ति वेद पुराणों ने गाई है। मैं भयभीत हूँ और आप समस्त भय को हरनेवाले हैं, क्या कारण है जो आपने मुझ पर कृपा भुला दी है ? ॥२॥

तुम्ह सुखधाम राम स्त्रम भजन, हाँ अति दुखित विविध स्रम पाई ।
यह जिय जानि दासतुलसी कह, राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥४॥

हे रामचन्द्रजी ! आप सुख के मन्दिर और श्रम का नाश करनेवाले हैं, मैं संसार के तीनों श्रमों से थक कर अत्यन्त दुःखित हूँ। यह अपने मन में विचार कर तथा अपनी प्रभुता को समझ कर तुलसीदास को शरण में रखिये ॥४॥

(२४३)

इहइ जानि चरनन्हि चित लायो ।
नाहिंन नाथ अकारन को हित, तुम्ह समान पुरान स्रुति गायो॥१॥

यही जान कर मैंने आपके चरणों में चित लगाया कि आप के समान बिना कारण ही भलाई करनेवाला स्वामी नहीं है, ऐसा वेद और पुराणों ने गाया है ॥१॥

जननि जनक सुत दार बन्धु जन, भये बहुत जहँ जह हाँ जायो।
सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहि हरिभजन सिखायो॥२॥

जहाँ जहाँ मैंने जन्म लिया वहां वहां मेरे अनेकों माता, पिता, पुत्र, स्त्री, भाई और कुटुम्बी जन हुए परन्तु वह सब केवल अपने स्वार्थ साधन के लिए छल पूर्वक मुझसे प्रेम करते रहे की प्रीति की, किसी ने हरिभजन नहीं सिखाया ॥२॥

सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर,
मैं तनु धरि सिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रयताप पापबस,
काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ॥३॥

मैंने शरीर धारण करके देवता, मुनि, मनुष्य, दानव, नाग और किन्नर किस किसके सामने सिर नहीं झुकाया। किन्तु मैंसदैव पापों के ताप से जलता फिरा, किसी ने उसे कृपा करके शीतल नहीं किया ॥३॥

जातां अनेक किए सुख कारन हरि-पद, विमुख सदा दुख पायो ।
अब थाकेउँ जलहीन नाव ज्यौं, देखत विपतिजाल जग छायों ।।४॥

मैंने सुख के लिये अनेकों उपाय किये किन्तु भगवान के चरणों से विमुख रह कर सदा दुख ही पाया। संसार को विपत्तियों के जाल से

घिरा हुआ देख कर अब मैं वैसे ही थक कर रुक गया हूँ जैसे बिना पानी के नाव रुक जाती है ॥४॥

मो कहँ नाथ बूझिये यह गति, सुखनिधान निज पति विसरायो ।
अब ताज रोष करहु करुना हरि, तुलसिदास सरनागत आयो ॥५॥

हे नाथ! मेरी यह दशा इसलिए हुई है क्योंकि मैंने अपने सुख के स्थान स्वामी को भुला दिया। हे हरे! अब कोध त्याग कर दया कीजिये, तुलसीदास आपकी शरण आया है ॥५॥

(२४४)

ऐहि तँ मैं हरिज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय-कमल रधुनाथहि,
बाहेर फिरत बिकल भय धायो ॥१॥

हे हरे ! मैंने इसी कारन ज्ञान खो दिया क्योंकि मैं हृदय कमल में स्थित रघुनाथजी को छोड़ कर भय से व्याकुल होकर बाहर अनेक साधनों के लिए दौड़ता फिरता हूँ ॥१॥

ज्यौँ कुरङ्ग निज अङ्ग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिँ पायो।
खोजत गिरि तरुलता भूमि बिल, परम सुगन्ध कहाँ तँ प्रायो॥२॥

जैसे अत्यन्त बुद्धिहीन हिरन अपने शरीर के मनोहर कस्तुरी का भेद नहीं जानकर पर्वत, वृक्ष, लता, धरती और बिलों में ढूँढ़ता रहता है कि यह अत्युत्तम सुगन्ध कहाँ से आ रही है ॥२॥

ज्यौं सर बिमल बारि परिपूरन, ऊपर कछुसेवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहाँ सठ, चाहत एहि बिधि तृषा बुझायो॥३॥

जैसे तालाब निर्मल जल से परिपूर्ण है; किन्तु ऊपर कुछ काई और घास से ढका हो। मैं मूर्ख उसको छोड़ कर हृदय जलाता हूँ और इसी तरह बिना जल के प्यास बुझाना चाहता हूँ ॥२॥

ब्यापित त्रिविध तापतन दारुन,ता पर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो॥४॥

शरीर में तीनों तापों की भीषणता फैली है उस पर यह असहनीय दरिद्र सताता है। अपने घर में राम नाम रूपी कल्पवृक्ष त्याग कर मन रूपी भूमि पर विपय रूपी बबूल का बाग़ लगा रहा है ॥४॥

तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो ।
तुलसिदास प्रभु यह बिचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो ॥५॥

आपके समान होई ज्ञान-निधान नहीं है और मेरे समान मूर्ख नहीं है, यह पुराणों ने कहा है । इस बात को विचार कर हे नाथ ! आपको जो उचित प्रतीत हो इस तुलसीदास के लिए वही काजिये ॥५॥

(२४५)

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
या के लिये सुनह करुनानिधि, मैं जग जनम जनम दुख रोयो॥१॥

मूर्ख मन ने मुझे बहुत ही नष्टभ्रष्ट किया, हे दयानिधी! सुनिये, इसके लिये मैं जन्म जन्मान्तर संसार में दुःख से रोता फिरा ॥३॥

सीतल मधुर पियूष सहज सुख, निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन्ह सम करत मोह बस,बथहि मन्दमति वारि बिलोयो॥२॥

शीतल, मधुर, अमृत रूपी सहजानन्द समीप ही रहता है परन्तु ऐसा मालूम होता है मानों उसको दूर खो दिया हो । अज्ञानता के अधीन यह मन्दबुद्धि पानी को मथने में बहुत परिश्रम करता है ॥२॥

करम कीच जिय जानि सानि चित,
चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावन्त सुरसरि बिहाइ सठ,
फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो॥३॥

कर्म रूपी कीचड़ को मन में पहचान कर उसी में चित्त को उसी में मिला कर कुटिल मैले से मैला को ही धोना चाहता हूँ। प्यासा होने पर भी गंगा जी को छोड़ मैं मूर्ख बार चार व्याकुलता से आकाश निचोड़ता हूँ ॥३॥

तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिँ गोयो ।
डासतही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो॥४॥

प्रभो! मैंने अपना दोष आपसे कुछ नहीं छिपाया अत: अब इस तुलसीदास पर कृपा कीजिये। मेरी सारी रात बिछौना बिछाते ही बीत गई: परन्तु हे नाथ ! नींद भर कभी नहीं आई ॥

(२४६)

लोक बेदह बिदित बात सुनि समुझिय,
मोह तँ बिकल मति थिति न लहति ।
छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबर राम,
रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥ १॥

लोक और वेदों में भी प्रसिद्ध बात सुन कर यह समझ आटा है कि अज्ञान से व्याकुल हुई बुद्धि विश्राम का स्थान नहीं पाती। हे रामचन्द्रजी ! छोटे, बड़े, बुरे, भले, मोटे और दुबले सभी की आप ही के निवाहने से निभती है ॥ १॥

होती जो अपने बस रहती एक ही रस,
दूनी न हरष-सोक साँसति सहति ।
चहति जो जोई जोई लहति सो सोई सोई, केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥२॥

यदि यह बुद्धि मेरे वश में होती तो एक ही रस रहती, दुनियाँ के हर्ष और शोक की दुर्दशा को नहीं सहती। जिस वस्तु की इच्छा करती, वही प्राप्त करती, किसी तरह कोई प्रकार की कोई अभिलाषा बाकी न रहती ॥२॥

करम सुभाव काल गुन दोष जीव जग,
मायाते सो सभै भौंह चकित चहति ।
ईसनि दिगीसनि जोंगीसनि मुनीसनिहूँ,
छोड़ति छोड़ाये तँ गहाये तँ गहति ॥ ३ ॥

कर्म, स्वभाव, काल, गुण, दोष, जीव, और जगत यह सभी माया से डरते हैं और वह माया चौकन्नी होकर आप की भृकुटी को देखती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिग्पालों, योगेश्वरों और मुनीश्वरों को आप के छुड़ाने से छोड़ती तथा आप के ही पकड़ाने से पकड़ ले है ॥३॥

सतरज को सो साज काठ को सबै समाज,
महाराज बाजी रची प्रथम न हति ।
तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ,
बहु बेष बहु मुख सारदा कहति ॥४॥

इस माया का सारा सामान शतरंज के समाज जैसा काठ का (जड़) है, महाराज ! इस खेल को आप ने ही रचा है, पहले नहीं थी ।तुलसीदास जी कहते हैं हे नाथ ! इस खेल की हार जीत आप ही

के आठ में है यह वचन सरस्वती जी ने अनेक वेष धारण कर अनेक मुखों से कही है ॥ ४॥

(२४७)

राम जपु जीह जानि प्रीति सौं प्रतीति मानि,
राम नाम जपे जइहै जिय की जरनि ।
राम नाम सौं रहनि राम नाम की कहनि,
कुलि कलिमल सोक सङ्कट हरनि ॥ १॥

अरी जिह्वा! तू प्रेम से विश्वास कर राम नाम जप, राम नाम जपने से तेरे हृदय के तीनों ताप शांत हो जायेंगे । राम नाम से सम्बन्ध और राम नाम का जप, कलियुग के समस्त पाप, शोक और संकटों को हरनेवाला है ॥१॥

राम नाम के प्रभाउ पूजियत गनराउ,
किये न दुराउ कही आपनी करनि ।
सेतु भवसागर को कासिह सुगति हेतु,
जपत सादर सम्भु सहित घरनि ॥२॥

राम नाम के प्रताप से गणेशजी प्रथम पूजनीय हुए, उन्होंने अपनी करनी का वर्णन स्वयं किया है, कुछ छिपाया नहीं। संसार-समुद्र के लिये पुल रूप, काशी में भी जिसको पार्वतीजी के सहित शंकरजी

मोक्ष को प्रदान करने वाले राम नाम का आदर के साथ जप करते हैं ॥२॥

बालमीक व्याध होइ अगाध अपराध निधि,
मरा मरा जपे पूजें मुनि अमरनि ।
रोकेउ बिन्ध्य सोखेउ सिन्धु घटजह नाम बल,
हारेउ हिय खारों भयेउ भूसुर डरनि ॥ ३ ॥

वाल्मीकि बहेलिया होकर पाप के अथाह समुद्र थे, उनके द्वारा उलटा नाम मरा मरा का जप करने के कारण वह मुनि और देवताओं से भी पूजनीय हो गए। राम नाम के बल से अगस्त्य मुनि ने विन्ध्याचल को रोक दिया और समुद्र को सोख लिया, इसी कारण वह समुद्र हृदय में हार कर ब्राह्मण के अपार भय से खारा हो गया ॥३॥

नाम महिमा अपार सेष सुक बार बार,
मति अनुसार बुध बेदह बरनि ।
नाम रति कामधेनु तुलसी को कामतरु,
राम नाम है विमोह तिमिर तरनि ॥४॥

नाम की अनन्त महिमा का बार बार बुद्धि के अनुसार शेषजी, शुकदेव मुनि, विद्वान और वेदों ने भी वर्णन किया है। तुलसी के लिये राम नाम से प्रेम कामधेनु और कल्प वृक्ष के समान है, अज्ञान रूपी अंधकार के लिये राम नाम सूर्य रूप है।॥ ४॥

(२४८)

पाहि पाहि राम पाहि रामभद्र रामचन्द्र,
सुजस स्त्रवन सुनि आयेउँ हाँ सरन ।
दीनबन्धु दीनता दरिद्र दाह दोष दुख,
दारुन दुसह दुर दुरित दरन ॥१॥

हे कल्याण मूर्ति रामचन्द्रजी ! मैं कानों से आप का सुयश सुन कर आपकी शरण आया हूँ, आप तीनों लोकों को रमानेवाले हैं मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, मुझे बचाइये। आप दीनों के सहायक बंधु, अभाव, दरिद्रता की ज्वाला, भीषण दोष, दुःख और कठिन निषिद्ध पापों का नाश करनेवाले हैं ॥१॥

जब जब जग जाल ब्याकुल करम काल,
सब खल भूप भये भूतल भरन ।
तब तब तनु धरि भूमि भार दूर करि,
थापे सुर मुनि साधु शास्त्रम बरन॥२॥

जब जब जगत में पृथ्वी के पालनेवाले राजा दुराचारी हुए और उनके राज्यकाल में कुकर्म तथा छल से सारी प्रजा व्याकुल हुई, तब तब शरीर धारण करके आपने धरती का भर दूर किया तथा देवता, मुनि, साधुओं को स्थापित कर वर्ण आश्रम धर्म की स्थापना की ॥२॥

बेद लोक सब साखी काहू की रती न राखी,

रावन की बन्दि लागे अमर मरन।
ओक देइ बिसोंक किये लोकपति लोकनाथ,
राम राज भयेउ धर्म चारिहू चरन ॥३॥

वेद और लोक सभी साक्षी है कि रावण ने किसी की प्रतिष्ठा नहीं रक्खी, उसकी कैद में देवता मरने लगे। लोकनाथ ! लोकपालों को शोक रहित करके आपने उन्हें पुन: उनके पद पर स्थापित किया, रामराज्य में धर्म चारों चरण-सत्य, शौच, दया तथा दान से परिपूर्ण हुआ ॥३॥

सिला गुह गीध कपि भील भालु रातिचर,
ख्यालही कृपाल कीन्हे तारन तरन ।
पील उद्धरन सीलसिन्धु ढील देखियत,
तुलसी पै चाहत गलानिही गरन ॥४॥

पत्थर, गुहा, गिद्ध, बन्दर, भील, भालु और राक्षसों को कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने खेल में ही तारण तरण बना दिया। हे शील सिन्धु ! हे हाथी का उद्धार करनेवाले ! इस तुलसी पर आपकी और से ढिलाई देख कर मन स्ताप के कारण वह गलना चाहता है। अत: अब कृपापूर्वक इसका भी शीघ्र उद्धार कीजिए ॥४॥

(२४९)

भली भाँति पहिचाने साहेब जहाँ लौं जग,

जूड़े होत थोरेही औ थोरेही गरम ।
प्रीति न प्रतीति नीतिहीन रीति के मलीन,
मायाधीन सब किये कालहू करम ॥ १ ॥

जहाँ तक संसार में स्वामी हैं मैंने अच्छी तरह उनको पहचान लिया है कि वह थोड़े में ही शीतल और थोड़े में ही में गरम होते हैं। उनमें प्रेम और विश्वास नहीं है, वह सभी नीति से रहित तथा व्यवहार के मैले हैं और सभी को माया, काल और कर्म ही ने अपने अधीन कर रखा है ॥२॥

दानव दनज बढ़े महामढ़ मूड़ चढ़े,
जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम ।
रीझिरीझि दिये बर खीभि खीभि घाले घर,
आपने निवाजे की न काहू के सरम ॥२॥

हे नाथ! महामुर्ख दानव और राक्षस बढ़े और वह लोकपालों को जीत कर, अपने बल के धोखे सिर पर चढ़ गये अर्थात् अपने बराबर किसी को शूरवीर नहीं समझा। देवताओं ने पहले तो प्रसन्न हो होकर वर दिए और फिर क्रोध कर करके उनके घरों का नाश किया, किसी को अपनी कृपा पर शरम नहीं आई ॥२॥

सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो,
सदगुन धाम राम पावन परम ।
सुमुख सुरुख एकरस एकरूप तोहि,

बिदित बिसेष घट घट के मरम ॥३॥

हे रामचन्द्रजी! आप सेवा करनेवाले की ओर से सावधान अर्थात् कृपा करके फिर क्रोध नहीं करते, क्योंकि आप ही सच्चे समर्थ, सत्यप्रतिज्ञ, अच्छे गुणों के स्थान और अत्यन्त पवित्र हैं। आप सब पर कृपा करने वाले, सुन्दर मुख, सदा एक रस और एक ही रूपवाले हैं। आप को घट घट प्राणी का हाल विशेष रूप से पता है ॥३॥

तो सौं नतपाल न कृपाल न कँगाल मो सौं,
दया मैं बसत देव सकल धरम ।
राम कामतरु छाँह चाहइ रुचि मन माँह,
तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम ॥४॥

हे देव ! आप के समान कृपालु दीनपालक कोई नहीं है और मेरे समान कोई कंगाल नहीं है, सम्पूर्ण धर्म दया में बसते हैं अत: दया कीजिए। हे रामचन्द्रजी! बलिहारी जाता हूँ, कलि की अधर्म रूपी धूप से तलसी व्याकुल हो रहा है, आप साक्षात् कल्पवृक्ष रूप हैं इसलिये मन में अमिलषा सदैव आपकी छाँह के रहने की है ॥४॥

(२५०)

बार बार प्रभुहि पुकारि के खिझावतो न,
जोपै मो को होतो कहूँ ठाकुर ठहर।
आलसी अभागे मो से तैं कृपाल पाले पोसे,

राजा मेरे राजाराम अवध सहर ॥ १ ॥

हे प्रभो ! यदि मुझको कहीं और ठिकाना मिल जाता अथवा मेरा कोई अन्य स्वामी लिक होता तो बार बार मैं आप को पुकार कर अप्रसन्न नहीं करता। हे कृपालु ! मुझ जैसे आलसियों और अभागों का पालन पोपण तो आप ने ही किया है, अत: हे कृपालु ! आप ही मेरे तो राजा रामचन्द्रजी हैं और मैं अयोध्या नगरी का निवासी हूँ ॥१॥

सेये न दिगीस न दिनस न गनेस गौरि,
हित के न माने बिधि हरिह न हर ।
राम नामही सौँ जोग छम नेम प्रेम पन,
सुधा साँ भरोसो हु दूसरो जहर ॥२॥

मैंने न तो इन्द्रादि दिकपाल, न सूर्य, न गणेश, न पार्वती की सेवा की है और न ही प्रेम पूर्वक ब्रह्और विष्णु को ही माना है। मैं तो राम नाम ही से सम्बन्ध, कल्याण, नेम और प्रेम की प्रतिज्ञा निबाहता हूँ, राम नाम का ही भरोसा अमृत के समान है और दूसरा सब साधन विष हैं ॥२॥

समाचार साथ के अनाथ नाथ का साँ कहउँ,
नाथही के हाथ सब चोरऊ पहर ।
निज काज सुरकाज भारत के काज राम,
बझिये बिलम्ब कहा करत गहर ॥ ३ ॥

हे अनाथों के नाथ! साथियों का हाल किससे कहूँ, चोर भी और पहरेदार भी सभी स्वामी ही के हाथ में हैं। हे रामचन्द्रजी! अपने भक्तों के कार्य में, देवताओं के काम में और दुखीजनों के कार्य में आपने कभी देरी नहीं की, फिर मेरे लिए ही क्यों विलम्ब करते हो ॥३॥

रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सौं,
डरत हाँ देखि कलिकाल को कहर ।
कहेही बनेगी के कहाये बलिजाउँ राम,
तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहर ॥४॥

आप की रीति सुन कर मेरी प्रीति और विश्वास आप से ही है; किन्तु कलिकाल का अत्याचार देख कर मैं डरता हूँ , मेरी तो आप के कहने से ही बनेगी यदि आप स्वयम् नहीं कहते तो हनूमानजी के द्वारा ही कहला दीजिये कि 'हे तुलसी ! तू मेरा है, हृदय में हार मान कर भयभीत मत हो' ॥४॥

(२५१)

रावरो सुभाव गुन सील महिमा प्रभाव,
जानेउ हर हनूमान लखन भरत ।
जिनके हिये सुथल रामप्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥१॥

आप के स्वभाव, गुण, शील, महिमा और प्रताप को शिवजी, हनूमानजी, लक्ष्मणजी तथा भरतजी ने जाना, जिनके हृदय रूपी सुन्दर भूमि पर रामप्रेम रूपी कल्पवृक्ष शोभायमान हो रहा है, जिसमें परम सुखरुपी सरस फल-फूल फूलते और फलते हैं ॥१॥

आपुमाने स्वामी कै सखा सुभाय भाय पति,
ते सनेह सावधान रहत डरत ।
साहेब सेवक रीति प्रीति परमिति नीति,
नेम को निबाह एक टेक न तरह ॥२॥

आप अपने स्वाभाव के अनुसार शिवजी को स्वामी, हनुमान जी को मित्र और लक्ष्मण तथा भरतजी को भाई मानते हैं और वह सभी स्वाभाविक भाव से आपको अपना स्वामी मान कर स्नेह में सचेत रहकर डरते रहते हैं। यदि स्वामी और सेवक इस रीति से प्रेम करते रहें और दोनों अपनी मर्यादा निबाहते रहें, तो उनके प्रेम की निश्चित टेक नहीं टलती ॥२॥

सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं,
राम की भगति बड़ी बिरति निरत ।
जाने बिनु भगति न जानिबो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ पगनि परत ॥३॥

शुकदेव, सनकादिक, प्रहलाद और नारद आदि कहते हैं कि रामचन्द्रजी की भक्ति बड़े ही वैराग्यवान को प्राप्त होती है। बिना

त्याग के भक्ति प्राप्त नहीं होती और उसका ज्ञान आपके हाथ में है ॥३॥

छमत बिमत न पुरान मत एक पथ,
नेति नेति नेति नित निगम करत ।
औरन की कहा चली एकइ बात भले भली,
राम नाम लिये तुलसीह से तरत ॥४॥

छह शास्त्रों के सिद्धान्त भिन्न भिन्न हैं, पुराणों के मत से भी एक रास्ता नहीं है और वेद नित्य नेति नेति करते रहते हैं। फिर दूसरों की तो बात ही क्या है, परन्तु एक ही बात अच्छी है कि राम नाम लेने से तुलसी के समान पतित भी तर जाते हैं ॥४॥

(२५२)

बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई।
लालची लबार की सुधारिये बारक बलि,
रावरी भलाई सबही की भली भई॥१॥

हे पितृतुल्य! अपने ही कर्मों से मेरी बड़ी अवनति हुई है। बलिहारी जाता हूँ, इस लोभी और झूठे की बात एक बार सुधारिये, आप की भलाई से सभी का भला हुआ है ॥१॥

रोग बस तनु कुमनोरथ मलिन मन,

पर अपबाद मिथ्यावाद बानी हई।
साधन की ऐसी बिधि साधन बिना न सिधि,
विगरी बनावइ कृपानिधि की कृपा नई ॥२॥

शरीर रोग के वश और मन बुरे मनोरथों के कारण मैला हा रहा है, पराई निन्दा और झूठ बोलने से वाणी नष्ट हो गई। साधन की ऐसी विधि है की बिना साधन के सिद्धि नहीं होती, हे! कृपानिधान ! अब आप की कृपा ही मेरी बिगड़ी बात को बना सकती है ॥२॥

पतित पावन हित भारत अनाथनि को,
निराधार को अधार दीनबन्धु दई ।
इनमें एकउ न भयो बूझिन जूझे न जयो,
ताही ते त्रिताप तयो लुनियत बई ॥३॥

आप पापियों की पवित्र करने वाले, दुखियों और अनाथों के हित रक्षक, निराधारों के आधार और दीनों के सहायक और ईश्वर है। किन्तु मैं तो इनमें एक भी नहीं हुआ, न विचार से लड़ कर प्राण खोया और न ही कामादि शत्रुओं को ही जीता इसी से तीनों तापों से जल रहा हूँ, मैंने जो बोया था वही काट रहा हूँ ॥ ३ ॥

स्वाँग सूधो साधु को कुचाल कलि तँ अधिक,
परलोक फीकी मति लोक रङ्ग रई ।
बड़े कुसमाज राज आज लौं जो पाये दिन,
महाराज केहू भाँति नाम श्रोट लई ॥४॥

मेरा वेष तो सीधे साधु का है और कुचाल करने मैं कलियुग से भी बढ़ कर हूँ, पारलौकिक कामों में मेरी बुद्धि नीरस रहती और संसारी रंग में रंगी हुई है। हे महाराज! इस बुरे कलि समाज के राज्य में जितने दिन बीते सभी व्यर्थ हो गए, अब किसी तरह बचाव के लिए आपके नाम का सहारा लिया है ॥४॥

दूसरी न बिधि निरमई ।
खीझबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझबे लायक तुलसी की निलजई ॥५॥

राम नाम के प्रताप को आप अच्छी तरह जानते हैं, मेरे लिए ब्रह्मा ने कोई दूसरा सहारा नहीं बनाया । आपके अप्रसन्न होने योग्य मेरे अनिष्ट कर्म कोटि कोटि हैं और प्रसन्न होने लायक एक तुलसी की निर्लज्जता है ॥५॥

(२५३)

राम राखिये सरन राखि आये सब दिन ।
बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयाल दूजो,
भारत प्रनतपाल को है प्रभु बिन॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! मुझे आप अपनी शरण में रखिये, आप सदैव दीनों को शरण में रखते आये हैं। तीनों लोक और तीनों काल में आप के सिवा दुखी शरणागतों का पालनेवाला दूसरा दयालु कौन है ?॥१॥

लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी,
नाथ पै अनाथनि सौँ भयें न उरिन ।
स्वामी समरथ ऐसो तिहारो जैसो तैसो,
काल चाल हेरि होत हिये घनी घिन ॥२॥

हे नाथ! आपने ही आलसी, भाग्य हीन और पापियों का स्नेह से पालन पोपण कर उन्हें सन्तुष्ट किया है, परन्तु अप्प कभी भी अनाथों से उऋण नहीं हुए । आप जैसे समर्थ स्वामी का चाहे मैं जैसा हूँ वैसा आप का दास हूँ, कलिकाल की रीति देख कर मेरे हृदय में बड़ी घृणा होती है ॥२॥

रीझि खीभि बिहसि अनख क्याँ हूँ एक बार,
तुलसी तू मेरो बलि कहियत किन ।
जाहि सूल निर्मूल होहिं सुख अनुकूल,
महाराज राम रावरी साँ तेही छिन ॥ ३ ॥

बलिहारी जाता हूँ, प्रसन्न अथवा अप्रसन्न होकर किसी तरह एक बार क्यों नहीं कहते कि तुलसी तू मेरा है। हे महाराज रामचन्द्रजी ! आप की सौगन्ध खा कर कहता हूँ इससे उसी क्षण शूल निर्मूल हो जायेंगे और सुख की अनुकूलता होगी ॥३॥

(२५४)

राम रावरो नाम मेरों मातु पितु है ।
सुजन सनेही गुरु साहेब सखा सुहृद,
राम नाम प्रेम पन अबिचल बितु है ॥ १॥

हे रामचन्द्रजी! आप का नाम मेरा माता, पिता, सज्जन, स्नेही, गुरु, स्वामी, मित्र और हितैषी है। राम नाम से प्रेम की प्रतिज्ञा ही मेरा अचल धन है ॥१॥

सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि,
लियेउ काढ़ि बामदेव नाम तु है ।
नाम को भरोसो बल चारिह फल को फल,
सुमिरिय छाडि छल भलो कृतु है ॥२॥

अनन्त चरित रूपी अपार दधिसागर को मथ कर शिवजी ने राम नाम रूपी घृत निकाला है। नाम का भरोसा और फल चारों फलों का भी फल है, उसको सभी छल छोड़ कर स्मरण करना उत्तम कार्य है ॥२॥

स्वारथ साधक परमारथ दायक नाम,
राम नाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाय कही साँचियै परैगी सही,
सीतानाथ नाम चितह को चितु है ॥३॥

स्वार्थ साधनेवाला और परमार्थ देनेवाला यह राम नाम ही है, राम नाम के समान अन्य कोई उपकारी नहीं है। तुलसी ने स्वाभाविक सत्य ही कही है वह सही पड़ेगी, सीतानाथ का नाम चित्त का भी चित्त है अर्थात् चेतन को भी चैतन्य करनेवाला है ॥३॥

(२५५)

राम रावरो नाम साधु सुरतरु है।
सुमिरे त्रिबिध घाम हरत पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिजहू को सरु है ॥ १॥

हे रामचन्द्रजी! आप का नाम सच्चा कल्पवृक्ष है जो स्मरण करने से तीनो तापों का हरण कर लेता है और कामना पूरी कर देता है, यह समस्त पुण्य रूपी कमलों के लिये सरोवर है ॥१॥

लाभह को लाभ सुखहू को सुख सरबस,
पतित पावन डरह को डर है।
नीचह को ऊँचहू को रङ्कहू को रायहू को,
सुलभ सुखद आपनो सो घर है ॥२॥

राम नाम लाभ का भी लाभ है, सुख का भी सर्वस्व सुख है, पापियों को पवित्र करनेवाला और डर का भी डर है। नीचे को भी, ऊँचे को

भी, दरिद्र को भी और राजा को भी सहज-सुख दायक अपने घर के समान है ॥२॥

बेदह पुरानहू पुरारिहू पुकारि कहेउ,
नाम प्रेम चारि फलह को फरु है।
ऐसे राम नाम सौँ न प्रीति न प्रतीति मन,
मेरे जान जानिबों सो नर खरु है ॥३॥

वेद भी, पुराण भी और शिवजी भी पुकार कर कहते हैं कि राम नाम से प्रेम होना चारों फल का भी फल है। ऐसे राम नाम से जिसके मन में न प्रीति और न विश्वास है, मेरी समझ में उस मनुष्य को गधा समझना चाहिये ॥३॥

नाम साँ न मातु पितु मीत हित बन्धु गुरु,
साहेब सभी सुसील सुधाकर है।
नाम साँ निबाह नेहु दीन को दयाल देह,
दासतुलसी को बलि बड़ो बरु है॥४॥

राम नाम के समान चन्द्रमा रूपी सुन्दर शीलवान, कल्याण कर्ता, उपकारी स्वामी न तो माता पिता, न मित्र, भाई और गुरु ही हैं। हे दीनदयाल ! मैं आप की बलि जाता हूँ, तुलसीदास को यही बड़ा वरदान है कि उसका राम नाम से स्नेह के कारण ही निर्वाह होता है ॥४॥

(२५६)

कहे बिनु रहेउ न परत कहे राम रस न रहत।
तुम्ह से सुसाहेब की ओट जन खोटो खरो,
काल की करम की कुसासति सहत ॥१॥

हे रामचन्द्रजी! कहे बिना रहा भी नहीं जाता और कहने से कुछ स्वाद भी नहीं रहता । आप के समान सुन्दर स्वामी की आड़ में बुरा या भला दास काल की और कर्म की बुरी दुर्दशा सहता है और आप ध्यान नहीं देते हैं ॥१॥

करत बिचार सार पइयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ तँ लहत ।
नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर,
हेरि हारि के हहरि हृदय दहत ॥२॥

विचार करता हूँ तो कहीं कुछ तत्व नहीं मिलता कि सारा बड़प्पन यह सब कहाँ से पाते हैं ? अर्थात् बड़प्पन देनेवाले एकमात्र आप ही हैं । स्वामी की महिमा सुन समझ कर और अपनी ओर निहार कर डर से हृदय में हार कर जलता हूँ ॥२॥

सखा न सुसेवक नसुतिय सुप्रभु आपु,
माय बाप तुहीँ साँचो तुलसी कहत ।
मेरी तो थोरी है सुधरैगी बिगरियो बलि,

राम रावरी सौँ रही रावरी चहत ॥३॥

मेरे न तो मित्र हैं, न सुन्दर सेवक, न अच्छी स्त्री, न श्रेष्ठ स्वामी है, तुलसी सच कहता है इसके माता-पिता केवल आप ही हैं। हे रामन्द्रजी ! मैं आप की बलि जाता हूँ, मेरी तो थोड़ी सी बिगड़ी है वह सुधर जायगी; किन्तु आप की सौगन्ध कर कहता हूँ कि आप की जैसा यश विख्यात है वह वैसा ही बना रहे ॥३॥

(२५७)

दीनबन्धु दूरि किये दीन को न दूसरो सरन ।
आप को भलों है सब आपने को कोऊ कहूँ,
सब को भलो है राम रावरे चरन ॥१॥

दे दीनबन्धु ! यदि इस दीं को आपने दूर हटा दिया तो फिर इसको कहाँ जगह मिलेगी। अपना भला सभी चाहते हैं पर अपने आश्रितों की भलाई करनेवाले कोई एक ही होते हैं, किन्तु हे रामचन्द्रजी ! आप के चरण सभी के लिये कल्याणकारी हैं ॥१॥

पाहन पतङ्ग पसु कोल भील निसिचर,
काँच तँ कृपानिधान किये सुबरन ।
दंडक पुहुमि पाय परसि पुनीत भई,
उकठे बिटप लागे फूलन फरन ॥२॥

पत्थर, पक्षी, पशु, कोल, भील और राक्षस को हे कृपानिधान आपने काँच से सुवर्ण वना दिया। दण्डक-भूमि चरण के छू जाने से पवित्र हो गई और सूखे हुए वृक्ष उस धरती पर पुन: फूलने फलने लगे ॥२॥

पतित पावन नाम बामहू दाहिनो देव,
दुनी न दुसह दुख दूषन दरन ।
सीलसिन्धु तो साँ ऊँची नीचियो कहत सोभा,
तो सौं तुहीं तुलसी की आरति हरन ॥३॥

हे देव! आप का नाम पतितो को पवित्र करनेवाला और टेढ़े को भी सीधा है, राम नाम के बराबर कठिन दु:ख दोषों को नष्ट करने वाला दूसरा कोई नहीं है। हे शीलसिन्धु ! आप से ऊंची नीची कहने में भी शोभा है, तुलसी की दीनता हरने में आप के समान केवल आप ही हैं ॥३॥

(२५८)

जानि पहिचानि मैं बिसारे हाँ कृपानिधान,
एते मान ढीठ हाँ उलटि देत खोरि हाँ।
करत जतन जा साँ जोरिबे को जोगीजन,
ता साँ क्याँ हूँ जुरी सो अभागो बैठो तोरि हाँ ॥१॥

हे कृपानिधान ! मैंने आपको जान पहचान कर भूला हूँ, और अहंकार वश इतना ढीठ हूँ कि उलटे आप को दोष देता हूँ। जिससे नाता जोड़ने को योगी लोग उपाय करते हैं उससे किसी तरह सेवक स्वामी का नाता जुदा भी तो मैं अभागा उस नाते को भी तोड़ कर बैठा हूँ ॥१॥

मो से दोस कोस कोऊ भूमिकोस दूसरो न,
आपनी समुझि सूझि आयेउँ टकटोरि हौँ।
गाड़ी के स्वान की नाँई माया मोह की बड़ाई,
छिनहिँ तजत छिन भजत बहोरि हौँ ॥२॥

मेरे समान अवगुणों का भण्डार दुनियाँ में दूसरा कोई अन्य नहीं है अपनी समझ और सूझबूझ से मैं सर्वत्र टटोल आया हूँ । जैसे मञ्जिल में बैलगाड़ी के साथ जानेवाला कुत्ता इधर उधर दौड़ता है उसका साथ नहीं छोड़ता, उसी तरह मैं भी क्षण भर के लिये माया-मोह त्यागता हूँ और अगले क्षण ही में उनकी सेवा करने लगता हूँ॥२॥

बड़ो साँइदोही न बराबरी मेरी को कोऊ,
नाथ की सपथ किये कहत करोरि हौँ।
दूर कीजै द्वार तैँ लबार लालची प्रपञ्ची,
सुधा सौ सलिल सूकरी ज्यौँ गहड़ोरिहौँ ॥३॥

हे नाथ ! मैं आप की करोड़ों सौगन्ध खा के कहता हूँ मेरे समान स्वामिद्रोही कोई अन्य नहीं है । इसलिए मुझ जैसे झूठे, लालची और धोखेबाज़ को अपने दरवाजे से दूर कर दीजिये नहीं अमृत के समान जल को मैं सुवरी की तरह गदला कर दूंगा ॥३॥

राखिये नीके सुधारि नीच के डारिये मारि,
दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खांची,
ढील किए नाम महिमा की नाव बोरिहौं ॥४॥

हे नाथ ! या तो आप मुझे अच्छी तरह सुधार कर शरण में रखिए अथवा इस नीच को मार डालिये, दोनों ओर की ऊँचाई निचाई को विचार कर अव निहोरा नहीं करूंगा। तुलसी ने बार बार रेखा खींच कर यह सच्ची बात कही है, यदि आप भी भी देरी करेंगे तो मैं आपके नाम रुपी महिमा को डुबो दूंगा ॥४॥

(२५९)

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहउँ बलि बेद की न लोक कहा कहैगो।
प्रभु को उदास भाव जन को पाप प्रभाव,
दुहूँ भाँति दीनबन्धु दीन दुख दहैगो ॥१॥

आप की सुधारी बात जो मेरे बिगाड़ने से बिगड़ेगी तो बलिहारी जाता हूँ, फिर तो वेद की बात ही क्या है चाहे वह कुछ भी कहते रहें परन्तु दुनियाँ क्या कहेगी। हे दीनबन्धु ! आप के निरपेक्ष भाव और दास के पापो के प्रभाव से दोनों तरह यह दीन दुःख से जलेगा अर्थात मैं तो महापापी हूँ ही, यदि आप भी मेरी ओर से उदासीन हो जायेंगे तो फिर फिर मेरी अत्यंत बुरी गति होगी ॥१॥

मैं तो दियेउँ छाती पबि लियेउ कलिकाल दबि,
सासति सहत परबस को न सहैगो ।
बाँकी बिरदावली बनेगी पालेही कृपाल,
अन्त मेरो हाल हेरि याँ न मन रहैगो॥२॥

कलिकाल ने मुझे दबोच लिया परन्तु मैं तो छाती पर वज्र रख लिया है और दुर्दशा सहता हूँ, पराधीनता में कौन दुखी नहीं होगा? हे कृपालु ! अपने अपूर्व यश की रक्षा आप को करते ही बनेगी और अन्त में मेरा हाल देख कर आपसे रहा नहीं जायगा अर्थात् भक्त वत्सलता उमड़ पड़ेगी ॥२॥

करमी धरमी साधु सेवक बिरति रत,
आपनी भलाई थल कहा को न लहेगो ।
तेरे मुँह फेरे मो से कायर कपूत कूर,
लटे लटपटेनि को कौन परिगहेगो ॥३॥

कर्मी, धर्मात्मा, साधु, सेवक और वैराग्य में तत्पर प्राणी अपनी भलाई का स्थान प्राप्त कर ही लेंगे? अर्थात् अपनी श्रेष्ठ करनी से सभी सुन्दर स्थान पायेंगे; परन्तु आप के मुख फेरने से मेरे समान कायर, कुपुत्र, कुमार्गी, दुर्बल और गवारों को दृढ़ता से पकड़ कर कौन आश्रय देगा? ॥३॥

काल पाइ फिरत दसा दयाल सवही की,
तोहि विन मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो ।
बचन करम हिये कहउँ राम सौह किये,
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहँगो ॥४॥

हे दयालु ! समय पाकर सभी की दशा फिरती है। किन्तु आप के बिना मुझे कमी कोई न चाहेगा। वचन, कर्म और मन से हे रामचन्द्रजी ! मैं आप की सौगंध खा कर कहता हूँ, तुलसी का निर्वाह निश्चय ही स्वामी के निबाहने से होगा ॥४॥

(२६०)

साहिब उदास भये दास ख़ास ख़ीस होत,
मेरी कहा चली? हौ बजे जाय रह्यो हौं ।
लोक में न ठाऊँ परलोक को भरोसो कौन,
हौं तो बलिजाउँ राम नामही तँ लहेउ हौं ॥१॥

स्वामी के अनमने होने से खास सेवक बर्बाद हो जाते हैं, फिर मेरी तो बात ही क्या है ? मैं तो डंके की चोट पर दुखों में बहा चला जा रहा हूँ। जब मेरे लिए लोक में जगह नहीं है तब परलोक का क्या भरोसा है, हे राम चन्द्रजी ! बलिहारी जाता हूँ, मैं तो केवल आपकी नाम ही से ठिकाना पाता हूँ ॥१॥

करम स्वभाव काल काम कोह लोभ मोह,
ग्राह अति गहनि गरीव गाढ़े गहेड हाँ।
छोरिबे को महाराज वाँधिबे को कोटि भट, पाहि प्रभु !
पाहि, तिहुँ ताप-पाप दह्यों हौं ॥२॥

कर्म, स्वभाव, काल, काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी मगरों ने और साधन हीनता रुपी घोर दरिद्रता ने मुझ गरीव को बहुत जोर से पकड़ रखा है। हे महाराज! छुड़ाने के लिये केवल आप है और बाँधने के लिये करोड़ों योद्धा हैं, हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये, मुझे बचाइये में तीनों ताप और पाप रूपी आग से जल रहा हूँ ॥२॥

रीमि बूझि सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार,
दूध को जरो पियत पूँकि कि महेउ हौं ।
रटत रटत लटेउ जाति पाँति भाँति घटेड,
जूठन को लालची चह न दूध नहेड हाँ॥३॥

मैं किसके द्वार पर जाऊं, सभी की प्रसन्नता, समझ, विश्वास और प्रीति आपके ही द्वार पर है, मैं दूध का जला मट्ठा भी फूंक फूँक कर पीता

हूँ। मैं सुख के लिए देवताओं को पुकारते पुकारते दुबला हो गया हूँ और जाति पाँति तथा चाल चलन से सब तरह घट गया हूँ, मैं केवल आप के जूठन का लालची हूँ , दूध-मलाई नहीं चाहता हूँ ॥३॥

अनत चहे न भलो सुपथ सुचाल चलो,
नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचहउँ हौँ।
तुलसी समुझि समझायो मन बार बार,
आपनो सो नाथहू साँ कहि निरबहेड हौँ ॥४॥

मैंने कभी दूसरी जगह भलाई नहीं चाही और न ही कभी सुमार्ग में अच्छी चाल चला; किन्तु मैं आपके यहाँ आदर न पाकर भी अच्छी तरह से हूँ क्योंकि यहाँ अनचहे भी भला होता है। यह समझ कर तुलसी ने बार बार अपने मन को समझाया है कि चिन्ता का कुछ भी कारण नहीं है, क्योंकि उसका निर्वाह आप ही के हाथ में है ॥४॥

(२६१)

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं,
राम रावरें बनाये बने पल पाउ मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान कहा कहउँ,
लिये बेर बदलि अमोल मनि आउ मैं ॥१॥

हे रामचन्द्रजी! मेरी सद्गति तो मेरे बनाये करोड़ों कल्प पर्यन्त भी नहीं बनेगी और आप के बनाने से चौथाई पल में बन जायगी । हे

कृपानिधान ! आप सब प्रकार से चतुर हो, अपनी मूर्खता मैं स्वयं क्या कहूँ, आयु रूपी अमूल्य रत्न के बदले में मैंने बेर का सौदा कर लिया है ॥१॥

मानस मलीन करतब कलिमल पीन,
जीहहू न जपेउ नाम बकेउ पाउबाउ मैं ।
कुपथ कुचाल चलो भयेउ न भूलिहू भलो,
बालदसाहू न खेलेउ खेलत सुदाउ मैं ॥२॥

जिससे मेरा मन मैला हो गया, कलियुग के प्रभाव से कुकर्म और भी पुष्ट हो गए, जीभ से भी मैंने आपका नाम न लेकर केवल इधर उधर की बकवास को ही किया। कुपन्थ और कुचालें ही चलता रहा, भूल कर भी किसी की भलाई नहीं की और न बालपन में ही मैंने अच्छी बाजी भगवत कथा इत्यादि खेल ही खेला ॥२॥

देखीदेखा दम्भ तँ की सङ्ग तँ भई भलाई,
प्रगट जनाइ कियेड दुरित दुराउ मैं ।
राग रोष दोष पोषे गोगन समेत मन,
इन्हकी भगति कीन्ही इन्हहाँ को भाउ मैं ॥३॥

हाँ यदि देखीदेखा, घमण्ड से अथवा सत्संग के प्रभाव से जो परोपकार हुआ उसे कह कर प्रगट किया और पाप को मैंने छिपाया । ममता, क्रोध और दोष की रक्षा मन इन्द्रियों के वश में ही रहा तथा मैंने इन्हीं की भक्ति की और इन्हीं का सत्कार किया ॥३॥

आगिली पाछिली अबहूँ की अनुमानही तँ,
बूझियत गति कछु कीन्हे तौ न काउ मैं ।
जग कहइ राम को प्रतीति प्रीति तुलसीहू,
झूठे साँचे आसरो साहेब रघुराउ मैं ॥४॥

आगे की, पीछे की और इस समय के समस्त कर्मों का अनुमान करके मैं अपनी दशा विचारता हूँ कि मैंने तो कभी भी कुछ उत्तम साधन नहीं किया। परन्तु यह जगत मुझे रामचन्द्रजी का दास कहता है, तुलसी को भी विश्वास और प्रेम है कि चाहे झूठ हो या सच हे स्वामी रघुनाथजी ! मैं तो आपके ही भरोसे से पड़ा हूँ ॥४॥

(२६२)

कह्यो न परत बिनु कहे न रहेउ परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सौं बलि दीनता ।
प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप पीनता ॥ १ ॥

कहते भी नहीं बनता और बिना कहे भी नहीं रहा जाता; बलिहारी जाता हूँ, बड़े से दीनता कहने में बड़ा आनन्द आता है । कहाँ प्रभु की बड़ी बड़ाई और अपनी क्षुद्रता, कहाँ स्वामी की पवित्रता और अपने पापों की पुष्टता ॥१॥

दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता ।
नाथ गुन गाथ गाये हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ नेवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता ॥२॥

इन दोनों ओर की बड़ाई छोटाई समझ कर लाज से मन सहम जाता है, किन्तु स्वामी की श्रेष्ठता सुन कर पुनः सम्मुख होता है। स्वामी के गुणों की कथा 'गाने से और हाथ जोड़ कर मस्तक नवाने से आप नीचों पर भी दयालु होते हैं, प्रीति की रीति में ऐसी कुशलता है ॥२॥

एही दरबार है गरब तँ सरब हानि,
लाभ जोग छैम को गरीबी मिसकीनता।
मोटो दसकन्ध साँ न दूबरो बिभीषन साँ,
बझि परी रावरे की प्रेम पराधीनता ॥३॥

यही दरबार है जहाँ गर्व से सर्वस्व की हानि होती है, गरीबी और दीनता से कल्याण के लाभ का संयोग होता है । रावण के समान कोई प्रतापी नहीं था और विभीषण के समान कोई दीन दुर्बल नहीं था, परन्तु इस प्रसंग में आपके प्रेम से परवश होने की बात ही समझ आती है ॥३॥

इहाँ की सयानप अयानप सहस सम,
सूधी सतिभाय कहे मिटति मलीनता ।
गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किये,

होयगी न साँई सौँ सनह हित हीनता ॥४॥

यहाँ अर्थात आपके दरबार में की गई चतुरता हजारों मूर्खता के समान है, यहाँ तो सीधे सरल भाव से कहने पर ही मलिनता मिट जाती है। यदि तू गिद्ध, शिला और शवरी की सुधि को याद करता रहेगा तो स्वामी के प्रति तेरा स्नेह कभी कम नहीं होगा ॥४॥

सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल छल छीनता ।
करुनानिधान बरदान तुलसी चहत,
सीतापति भक्ति-सुरसरि मन-मीनता ॥५॥

आप का नाम रूपी कल्पवृक्ष सारी कामनाओं को देता है और स्मरण करने से कलि युग के पाप-छल का नाश होता है। हे दयानिधान ! तुलसी यही वरदान चाहता है कि सीतानाथ की भक्ति रूपी गंगा जी के जल में मन मछली होकर विहार करे ॥५॥

(२६३)

नाथ नीकेकै जानबी ठीक जन जीय की।
रावरो भरोसो नाह कै सप्रेम नेम लिये,
रुचिर रहनि रुचि गति मति तीय की ॥१॥

हे नाथ ! आप अपने इस दास के मन की सच्ची बात अच्छी तरह जानते हैं। मेरी बुद्धि रूपी सुन्दर स्त्री की अभिलाषा और दशा - साध्वी पतिव्रता के समान आप को पति मान कर उत्तम प्रेम का नियम लिए आप का ही भरोसा रखती है ॥२॥

दुकृत सुकृत बस सबही सौँ सङ्ग परेड,
परखी पराई गति आपनेह कीय की।
मेरे भले को गोसाँई भलो पोच सोच कहा.
किये कहउँ साँह खाँचि साँची सियपीय की ॥२॥

पाप पुण्य के अधीन रंने के कारण मुझे भले बुरे सभी से साथ रहना पड़ा, मैंने पराये की चाल और अपनी करनी दोनों की परीक्षा की है। हे स्वामिन् ! मेरी भलाई करनेवाले आप हैं फिर मुझे न तो अपने भले बुरे की कोई चिंता है और न ही डर । यह मैं सीतानाथ की सौगन्द खा कर रेखा खींच कर सच्ची बात कहता हूँ ॥२॥

ज्ञानहू गिरा के स्वामी बाहर अन्तरजामी,
इहाँ क्याँ दुरेगी के हित,
राखि के कहे तँ कछु होइहाँ माखी घीय की ॥३॥

आप वाणी और ज्ञान के भी स्वामी है, बाहर तथा अन्तःकरण की बात जाननेवाले हैं, आप के आमने मुख की और हृदय की बात कैसे छिप सकती है। तुलसी आपका है और आप ही निश्चय तुलसी के हितकारी हैं, इसमें मैं कुछ कपट कर कहूं तो घी की मक्खी हो जाऊं ॥३॥

(२६४)

मेरो कहेउ सुनि पुनि भावइ तोहि करि सो।
चारिहू बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ,
तेरो तिहुँ काल कहूँ को है हित हरि सो॥१॥

अरे मन मेरा कहना सुन कर फिर तुझे जो अच्छा लगे वही कर। तू अपने चारों नेत्रों - दो प्रत्यक्ष और दो अन्तःकरण के से तू तीनों लोकों और तीनों कालों में देखकर बता की भगवान के समान तेरा हितकारी कहीं कोई और है ? (कोई नहीं) ॥१॥

नये नये नेह अनुभये देह गेह बसि,
परखे प्रपञ्ची प्रेम परत उघरि सो ।
सुहृद समाज दगाबाजिही को सौदा सूत,
जब जाको काज तब मिलइ पाय परि सो ॥२॥

शरीर रूपी घर में बस कर अनेक योनियों में तूने नये नये स्नेह अनुभव किये, परन्तु जब उनका परीक्षण किया तो उनके प्रेम छलबाजी से भरे जान पड़े। मित्र मण्डली क्या है यह दगा बाजी का सौदासूत अर्थात लेना देना है, जब जिसका काम पड़ता है तो वह पाँव पड़ कर मिलता है परन्तु काम निकलने पर बात भी नहीं पूछता ॥२॥

विबुध सयाने पहिचाने कधी नाही नीके,
देत एकगुन लेत कोटिगुन भरि सो।
करम धरम समफल रघुबर बिनु,
राख को सो होम है ऊसर को सो बरिसो॥३॥

देवता भी बड़े चतुर हैं, पहले यह कोटिगुणा लेते हैं और तब एकगुणा देते हैं, तूने उनको अच्छी तरह पहचाना नहीं। रघुनाथजी की प्रीति के बिना कर्मधर्म करने का फल भी केवल परिश्रम है, वह राख में हवन करने के समान और ऊसर की वर्षा के बराबर है ॥३॥

आदि अन्त बीच भलो भलो करइ सबही को,
जा को जस लोक बेद रहेउ है बगरि सो ।
सीतापति सारिखो न साहेब सील निधान,
कैसे कल परइ सठ बैठो है बिसरि सो॥४॥

आदि, मध्य और अन्त में भले हैं सब की सदा कल्याण करते हैं जिनका यश लोक और वेद में फैल रहा है । ऐसे सीतानाथ के समान शीलनिधान स्वामी कोई नहीं है, अरे दुष्ट ! तू उन्हें भूल कर बैठा है तुझे कैसे चैन पड़ता है ? ॥४॥

जीव को जीवन प्रान प्रान को परमहित,
प्रीतम पुनीत कृत नीच न निदरि सो।
तुलसी तों को कृपाल कियेउ जो कोसलपाल,
चित्रकूट को चरित चेतु चित धरि सो ॥५॥

अरे नीच ! जो जीव का जीवन, प्राणों के प्राण, परमोपकारी और नीचों को पवित्र करने वाले हैं, उसका अनादर मत कर । तुलसी! तुझको कृपालु अयोध्यानरेश ने जो चरित्र चित्र कूट में करके दिखाया उसको स्मरण करके चित्त में रख ॥५॥

(२६५)

तन सूचि मन रुचि मुख कहउँ जन हाँ सिय पी को।
केहि अभाग जानउँ नहीं, जो न होइ नाथ सौं नातो नेह न नीको॥१॥

मैं पवित्र शरीर से मन की अभिलाषा मुख से कहता हूँ कि मैं सीतानाथजी का सेवक हूँ किन्तु नहीं जानता किस दुर्भाग्य के कारण स्वामी से स्नेह का नाता अच्छी तरह स्थापित नहीं होता ॥१॥

जल चाहत पावक लहउँ, बिष होत अमी को।
कलि कुचाल सन्तन्ह कही, सों सही मोहि कछु फहम न तरनि तमी को ॥२॥

मैं पानी चांटा हूँ तो आग मिलती है और इसी प्रकार अमृत का जहर बन जाता है। संतों ने कलियुग की जो कुटिल चालें कहीं हैं, वह सब ठीक हैं। मुझे तो सूर्य और रात्रि का भी कोई ज्ञान नहीं है ॥२॥

जानि अन्ध अञ्जन कहइ, बन-बाधिन घी को ।
सुनि उप चार बिकार को,
सुबिचार करउँ जब तब बुधि बल हरइ ही को ॥३॥

मुझे अन्धा समझ कर कलि मुझे वन में रहनेवाली बाधिन के घी का अञ्जन लगाने को कहता है । इस सदोष चिकित्सा को सुन कर जब अच्छी तरह विचार करता हूँ की मुझे बाघिन का घी कैसे मिलेगा तो वह हदय का बल और बुद्धि हर लेता है ॥३॥

प्रभु सौं कहत सकुचात हाँ, परउँ जनि फिरि फीको।
निकट बोलि बलि बरजिये, परिहरइ ख्याल अब तुलसिदास जड़ जी को ॥४॥

स्वामी से कहते सकुचाता हूँ कहीं फिर मेरी बात फीकी नहीं पड़ जाए अर्थात झाली न चली जाए । बलिहारी जाता हूँ, आप कृपया कलियुग को समीप में बुला कर मना कर दीजिये जिससे वह जड़ जीव तुलसीदास का ख्याल छोड़ दे ॥ ४॥

(२६६)

ज्यौँ ज्यौँ निकट भयेउ चहउँ कृपाल त्यौँ त्यौँ दूरि परेउ हौं।
तुम्ह चहुँ जुग रस एक राम, हाँ हूँ रावरो जद्यपि अघ अवगुनन्हि भरेउ हौं ॥१॥

हे कृपालु ! ज्यों ज्यों मैं आपके समीप आना चाहता हूँ त्यों त्यों दूर होता जाता हूँ, हे रामचन्द्रजी! आप चारों युगों में एक समान रहते हैं, यद्यपि मैं पाप और अवगुणों से भरा हूँ तो भी आप का (दास) हूँ ॥१॥

बीच पाइ नीच बीचही नल छरनि छरेउ हौँ ।
हौँ सुवरन कुबरन कियेउ, नृप तँ भिखारि करि सुमति तँ कुमति करेउ हौँ ॥२॥

आपसे अलग रहने का मौका पाकर नीच कलि ने बीच ही में ही राजा नल की तरह धोखेबाजी से मुझे छल लिया। मुझको सुवर्ण से लोहा कर दिया और राजा से भिक्षुक बना कर सुबुद्धि से कुबुद्धि किया है ॥२॥

अगनित गिरि कानन फिरेउँ, बिनु आगि जरेउ हौँ।
चित्रकूट गये मैं लखी, कलि की कुचाल सब अब अपडरनि डरेउ हाँ ॥३॥

तब मैं अनगिनत पहाड़ और जंगलों में बिना आग के मैं जलता फिरा । चित्रकूट जाने पर मैंने कलियुग का की सारी कुचालें तो समझ गया तथापि अब मैं अपने ही डर से डरता हूँ ॥३॥

माथ नाइ नाथ साँ कहउँ, हाथ जोरि खरेउ हौं।
चीन्हो चोर जिय मारिहै, तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सौं कहि निबरेउ हौं ॥४॥

मैं मस्तक झुका कर हाथ जोड़ कर खड़ा स्वामी से कहता हूँ कि पहचाना हुआ चोर फिर जीव को प्राय: मार ही डालता है, तुलसी उसकी कथा सुन कर तुलसी अपने स्वामी से विनय करके निश्चिन्त हो चुका है ॥४॥

(२६७)

पन करिहउँ हठि आजु तँ, राम द्वार परेउ हौँ ।
तू मेरो बिनु कहे न उठिहउँ, जनम भरि प्रभु की साँह करि निवरेउ हौँ ॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! मैं आज से प्रतिज्ञा-पूर्वक हट करके आप के दरवाजे पर पड़ता हूँ। तू मेरा है बिना कहे जन्म भर नहीं उठूंगा, यह मैं स्वामी की सौगन्द खा कर कह चुका हूँ ॥१॥

देइ देइ धका जमभट थके, टारे न टरेउ हौँ ।
उदर दुसह साँसति सही, बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकरेउ हौँ ॥२॥

यमदूत मुझे धक्का दे देकर हार गये पर मैं उनके हटाने से नहीं हटा। बहुत बार संसार में जन्म लेकर गर्भवास की असहनीय दुर्गति को सहा और नरक का निरादर करके मैं बाहर निकला हूँ ॥२॥

हौँ माचल लेइ छाडिहउँ, जेहि लागि अरेउ हौँ ।

तुम्ह दयाल बनिहै दिये, बलि बिलम न कीजे जात गलानि गरेउ हौं ॥३॥

मैं जिसके चीज के लिये अड़ा हूँ उसको जिद करके लेकर ही छोड़ूंगा। आप दयालु हैं आपको देना ही पड़ेगा; बलिहारी जाता हूँ, देरी न कीजिये क्योंकि मैं ग्लानि से गला जाता हूँ॥३॥

प्रगट कहत जी सकुचिये, अपराध भरेउ हैं।
तो मन मैं अपनाइये, तुलसिहि कृपा करि कलि बिलोकि हहरेउ हौं ॥४॥

मैं अपराध से भरा हूँ इसलिए यदि आप प्रत्यक्ष कहने में सकुचते हों तो कृपा करके तुलसी को मन में अपनाइये, कलि को देख कर मैं डर गया हूँ॥ ४॥

(२६८)

तुम्ह अपनायो तब जानिहउँ, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाय विषयन्हि लगेउ, तेहि सहज नाथ साँ नेह छाडि छल करिहै ॥१॥

जब मेरा मन विषयों की और से फिर जाएगा तभी मैं समझूंगा की आपने मुझे अपना लिया है। जब यह मन, जिस सहज स्वभाव से विषयों में लगा है उसी भाव से स्वाभाविक छल छोड़ कर स्वामी से प्रेम करेगा ॥१॥

सुत की प्रीति प्रतीति मीत की, नप ज्यौँ डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी साँ, बहु बिधि चातक ज्यौँ एक टेक न टरिहै ॥२॥

जैसे मेरा यह मन पुत्र से प्रेम करता है, मित्र का विश्वास करता है और राजभय से डरता है। ववैसे हे जब वह अपना समस्त स्वार्थ केवल स्वामी से ही रखेगा और चारों ओर चातक की तरह अपने अनन्य हठ से अद्वितीय और विचलित नहीं होगा ॥२॥

हरषि न अति आदरे, निदरे न जरिमरिहै ।
हानि लाभ दुख सुख सबइ,
सम चित अनहित कलि कुचाल परिहरिहै ॥३॥

अत्यन्त आदर पाने से जब हर्षित नहीं होगा और न ही निरादर होने से जल मरेगा । हानि, लाभ, दुःख और सुख सभी को मन में बराबर जान कर अपकार, कलह तथा कुमार्ग को त्याग देगा ॥३॥

प्रभु गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयनन्हि ढरिहै ।
तुलसिदास भयेउ राम को, बिस्वास प्रेम लखि आनंद उमगि उर भरिहै ॥४॥

जब मेरा मन प्रभु के गुण सुन कर मन प्रसन्न होगा और नेत्र जल बहायेंगे तभी तुलसीदास को यह विश्वास होगा कि वह रामचन्द्रजी

का हो गया है, तब उस अनन्य विश्वास और प्रेम देख कर तुलसीदास हृदय आनन्द की लहरों से भर जायगा ॥४॥

(२६९)

राम कबहुँ प्रिय लागिहों जैसे नीर मीन को।
सुख जीवन ज्याँ जीव को, मनि ज्याँ फनि को हित ज्याँ धन लोभ लीन को ॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! क्या कभी आप मुझे ऐसे प्रिय लगेंगे जैसे मछली को पानी प्यारा लगता है। जैसे जीव को सुखमाय जीवन प्यारा लगता है, जैसे साँप को मणि और अत्यंत लोभी को जसे धन प्यारा होता है ॥१॥

ज्यों सुभाय प्रिय नागरी, नागर नबीन को।
त्याँ मेरे मन लालसा, करिये करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥२॥
अथवा जैसे स्वभाव से नवयुवक को नवयौवना स्त्री प्यारी लगती है। हे करुणानिधान ! वैसे ही मेरे मन में आपके प्रति लालसा पवित्र पुष्ट प्रेम को उत्पन्न कर दीजिए ॥२॥

मनसा को दाता कहइ, सुति प्रभु प्रबीन को।
तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ दयानिधि दीजै दान दीन को ॥३॥

वेड कहते हैं कि प्रभु इच्छित फल देने में निपुण हैं। हे दयानिधान ! बलिहारी जाता हूँ, दीन तुलसीदास को भी उसकी मनमानी वस्तु का दान दीजिये ॥३॥

(२७०)

कबहु कृपा करि रघुबीर मोहू चितइहौं ।
भलो बुरो जन श्रापनो, जिय जानि दयानिधि अवगुन अमित बितइहौ ॥१॥

हे रघुनाथजी! कभी कृपा करके मेरी ओर भी देखियेगा । हे दयानिधान! भला बुरा जो भी हों, आपका दास हूँ, अपने मन में इस बात को समझ कर क्या आप अपना दास समझ कर मेरे अनन्त दोषों को क्षमा कर देंगे ॥२॥

जनम जनम हौँ मन जितेउ, अब मोहि जितइहाँ ।
हाँसनाथ होइ हौँ सही, तुम्हहूँ अनाथपति जौँ लघुतहि न भितइहाँ ॥२॥

जन्म जमान्तर से मुझे मन जीते हुए है, क्या आप इस बार मुझे जिता देंगे। मैं निश्चय ही सनाथ हो जाऊँगा, किन्तु यदि आप भी मेरी क्षुद्रता से नहीं डरेंगे तो आप भी तो अनाथपति पुकारे जाने लगेंगे ॥२॥

विनय करौं अपभयहु तें, तुम्ह परम हितै हो ।

तुलसीदास कासौँ कहइ, तुम्हहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पिते हो ॥३॥

आप परम हितकारी हैं, मैं अपने मन से कल्पित भय से विनती कर रहा हूँ। आप तो मेरे परम हितु हैं ! परन्तु नाथ ! तुलसीदास किससे कहे ? मेरे स्वामी, गुरु, माता और पिता आप ही हैं ॥३॥

(२७१)

जैसी हौं तैसो राम रावरो जन जनि परिहरिये ।
कृपासिन्धु कोसलधनी, सरनागत पालक ढरनि आपनी ढरिये ॥१॥

मैं भला बुरा जैसा भी हूँ, पर हूँ तो आपका दास ही इसलिए मुझे त्यागिये नहीं। हे कोशलाधिराज ! आप कृपा के समुद्र और शरणागतों के रक्षक हैं अपनी सहज शरणागत वत्सलता की रीति पर ही चलिए ॥१॥

हौं तो बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिये।
तुम्ह सुधारिआयेसदा, सब की सबही विधि अब मेरियौ सुधरिये॥२॥

मैं तो दूसरे का बिगाड़ा हुआ हूँ, कृपया बिगड़े हुए को मत बिगाड़िये। आप सब की सभी तरह से सदा सुधारते आये हैं अब मेरी भी सुधार दीजिए । ॥२॥

जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कट इहि डर डरिये ।

कपि केवट कीन्हे सखा, जेहि सील सरल चित तेहि सुभाउ अनुसरिये ॥३॥

मेरा संग्रह करने से दुनियाँ हँसेगी इस डर से आप क्यों डरते हो ? आपने जिस सरल और शील चित्त से बन्दर और मल्लाह को जिस सच्चे हृदय से मित्र बनाया उसी स्वभाव के अनुसार मुझे अपना लीजिए।

अपराधी तउ आपनो, तुलसी न बिसरिये ।
टूटी बाँह गरे परइ, फूटेहू बिलोचन पीर होत हित करिये ॥४॥ . .

अपराधी हूँ तो भी अपना जान कर तुलसी को मत भुलाइये। अपना टूटा हुआ हाथ भी गले बांधा जाता है और जब फूटी आँख में भी पीड़ा होती है तो उसका उपाय करना ही पड़ता है, उसी तरह मेरा कार कीजिये ॥४॥

(२७२)

तुम्ह जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो ।
सुनहु राम बिनु रावरे, लोकहू परलोकहू कोउ न कहूँ हित मेरो ॥१॥

हे श्री राम जी ! आप मुझ पर अपना मन मैला मत कीजिये और न आँख ही फेरिये । हे रामचन्द्रजी ! सुनिये, आप के बिना लोक में भी और परलोक में भी कहीं कोई मेरा हितकारी नहीं है ॥१॥

अगुन अलायक आलसी, जानि अधम अनेरों ।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजराको टोटक, औचट उलटि न हेरो
॥२॥

मुझे गुणहीन, नालायक, आलसी, नीच, दरिद्र और निकम्मा समझ कर मतलब के साथियों ने ऐसे त्याग दिया जैसे तिजारी का टोटका करके भूल से भी फिर लोग उसकी ओर नहीं निहारते ॥२॥

भक्ति हीन बेद बाहिरो, लखि कलिमल घेरो ।
देवनहूँ देव परिहरेउ, अन्याव न तिन्हको मैं अपराधी सब केरो ॥३॥

मुझे भक्ति मार्ग से रहित और वेद मत से वाहर देख कर कलि के पापों ने घेर लिया है। हे देव! मुझे देवताओं ने भी त्याग दिया है; परन्तु इसमें उनका कोई अन्याय नहीं मैं ही सब का अपराधी हूँ ॥३॥

नाम की ओट पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत विदित बात होइ परी,समुझिये धौ अपने लोक की बेद
बड़ेरो॥४॥

मैं तो आपके नाम की आड़ लेकर अपना पेट भरता हूँ परन्तु आप का दास कहाता हूँ। यह बात संसार में प्रसिद्ध हो चुकी, अब आप ही विचार कीजिए कि लोक बड़ा है या वेद ? अर्थात वेदों की विधि को देखते हुए तो मैं आपका दास नहीं मानता परन्तु जब सारा संसार

मुझको आपका दास मानता है तो आपको भी यही स्वीकार कर लेना चाहिए॥४॥

होइहै जब तब तुम्हहिँ तँ, तुलसी को भलेरो ।
दीन दिनह दिन विगरिहै, बलिजाउँ बिलम किये अपनाइये सबेरो ॥५॥

जब भी कभी तुलसी का भला होगा तो तब केवल आप से ही होगा। मैं बलिहारी जाता हूँ, यदि आप देरी करेंगे तो दिन प्रति दिन यह दीन बिगड़ता ही जाएगा, इसलिए मुझे शीघ्र अपनाइए ॥५॥

(२७३)

तुम्ह तजि हौँ कासौँ कहउँ और को हित मेरे ।
दीनबन्धु सेवक सखा, भारत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ॥१॥

आप को छोड़ कर मैं किससे कहूँ दूसरा कौन मेरा हितकारी है ? हे दीनबन्धु ! आपके सिवा दुखी, अनाथो को सेवक और मित्र बना कर उन पर स्वाभाविक स्नेह किसके हृदय में है ? ॥१॥

बहुत पतित भवनिधि तरे, बिन तरनी बिनु बेरे ।
कृपा कोप सतिभायह, धोखेहु तिरछेहु राम तिहारेहि हेरे ॥२॥

आपकी कृपादृष्टि से बिना नौका और बिना जहाज के ही अनेकों पापी संसार समुद्र से पार हो गये। हे रामचन्द्रजी ! आप ने उनको केवल कृपा, क्रोध, सीधेभाव, धोखे से अथवा तिरछी निगाह से देख भर लिया था ॥२॥

जो चितवनि साँधी लगइ, चितइये सबेरे ।
तुलसिदास अपनाइये, कीजै न ढील अव जीवन अवधि नित नेरे ॥३॥

इन दृष्टियों में से जो दृष्टि अच्छी लगी, उसी दृष्टि से मेरी और देख लीजिए। तुलसीदास को अपनाने में अब देर मत कीजिए अब जीवन का निर्धारित समय दिनोदिन समीप आ रहा है ॥३॥

(२७४)

जाउँ कहाँ ठौर है कहँ देव दुखित दीन को ।
को कृपाल स्वामि सारिखो,राखइ सरनागत सब अँग बल हीन को ॥१॥

है देव ! मैं कहाँ जाऊँ? मुझ जैसे दीन दुःखितों को और कहाँ जगह है ? स्वामी के समान कृपालु और कौन है जो सब प्रकार के बल के से रहित शरणागत की रक्षा करता हो ? ॥६॥

गनिहिँ गुनिहिँ साहेब चहइँ, सेवा समीचीन को ।

अधम अगन आलसिन को, पालिबो फवि आयेउ रघुनायक नवीन को ॥२॥

धनी को, गुणवान को और अच्छी सेवा करनेवाले सेवक को सभी स्वामी चाहतें हैं। मुझ जैसे पापी, निर्गुणी, निर्धन और आलसियों का पालन करना तो रघुनाथजी को ही शोभा देता है ॥२॥

मुख कहा कहउँ विदित है, जी की प्रभु प्रवीन को।
तिहूँ काल तिहुँ लोक मैं, एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को ॥३॥

मैं अपने मुख से क्या कहूँ, आप तो स्वयं प्रवीण हैं जो मेरे मन की समस्त बातों को जानते हैं। तीनों काल और तीनो लोकों में तुलसी के समान मलिन मन को केवल एक आप का ही सहारा है ॥३॥

(२७५)

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।
हैं दयाल दुनी दसौं दिसा, दुख दोष दलन छम कियेउ न सम्भाषन काहूँ ॥१॥

हे नाथ ! दरवाजे दरवाजे दाँत निकाल कर और पाँवों में पड़ कर मैंने अपनी दीनता कही, दुनियाँ में दसों दिशाओं के दुःखों और दोषों का

दमन करने में समर्थ दयालु हैं; किन्तु मुझसे तो किसी ने अच्छी तरह बात तक नहीं की।

तनु जान्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिताह
काहे को रोष, दोष काहि धौ, मेरेही अभाग मो सौं सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥२॥

माता पिता ने मुझे ऐसे त्याग दिया जैसे साँप केचुली छोड़ता है। परन्तु मैं उन पर क्यों क्रोध करूँ और किसको दोष हूँ ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्य से हुआ है, मैं तो ऐसा नीच हूँ के मेरी परछाहीं तक को छूने में लोग लजाते है ॥२॥

दुखित देखि सन्तन्ह कहेउ, सोचइ जनि मन माहूँ।
तो से पसु पाँवर पातकी, परिहरे न सरन गये रघुवर ओर निवाहूँ ॥३॥

मुझे दुःखित देख कर सन्तों ने कहा कि तू मन में चिंता मत कर। तेरे जैसे पामर और पापी पशु पक्षियों तक को शरण में आने पर रघुनाथजी ने उनका त्याग नहीं किया और उनको शरण प्रदान कर अंत तक उनका निर्वाह किया ॥३॥

तुलसी तिहारो भये सुखी भयेउ, प्रीति प्रतीति बिनाऊँ।
नाम की महिमा सील नाथ को, मेरो भलो बिलोकि अब तँ सकुचाहुँ सिहाहूँ॥४॥

तुलसी आप का दास होने के कारण बिना प्रेम और विश्वास के भी सुखी हुआ। राम नाम की महिमा और स्वामी के शील को देख कर मैं सकुचाता और सिहाता हूँ कि मुझ जैसे कपटी सेवक का भी आपने भला किया ॥४॥

(२७६)

कहा न कियेउँ कहाँ न गयेउँ सीस काहि न नायो।
राम रावरो बिन भये जन, जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो॥१॥

मैंने क्या नहीं किया, कहाँ नहीं गया और किसको सिर नहीं नवाया। हे रामचन्द्रजी! बिना आप का दास हुए जगत में बार बार जन्म लेकर दसों दिशाओं में केवल दुःख ही प्राप्त किया है ॥१॥

आस बिबस खास दास होइ, नीच प्रभुनि जनायो।
हाहा करि दीनता कही, द्वार द्वार बार बार परी न छार मुहँ बायो॥२॥

आशा के अधीन होकर नीच स्वामियों का विशेष दास होकर अपने को समर्पित करता। हाय हाय करके बार बार हर द्वार पर अपनी गरीबी के दुहाई देकर उनका मुंह बाया; किन्तु इसमें खाक भी नहीं पड़ी, भोजन मिलना तो बहुत दूर रहा ॥२॥

असन बसन बिन बावरो, जहँ तहँ उठि धायो।
महीमा मान प्रिय प्रान तँ, तजि खोलि खलन्ह आगे खिन खिन पेट खलायो ॥३॥

भोजन, वस्त्र के बिना पागलों के तरह जहाँ तहाँ उठ कर दौड़ता फिरा। धरती पर प्रतिष्ठा प्राण से बढ़ कर प्यारी है उसको त्याग कर क्षण क्षण दुष्टों के सामने पेट खोल कर दिखाया ॥३॥

नाथ हाथ कछु नहिँ लगेउ, लालच ललचायो ।
साँच कहउँ नाच कोन सो, जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥४॥

हे नाथ ! विषयों के लालच के कर्ण मैंने अत्यंत लालच किया, परन्तु कहीं भी कुछ भी प्राप्त नहीं किया। मैं सच कहता हूँ, ऐसा कौन सा नाच है जो तुच्छ लोभ ने मुझे निर्लज्ज बना कर नहीं नचाया हो ॥ ४॥

स्रवन नयन मग मन लगेउ, सब थल पतितायो ।
मूंड़ मारि हिय हारि के, हित हेरि हहरि अब चरन सरन तकि प्रायों ॥५॥

मैंने कान, आँखों और मन को भी अपने अपने मार्ग में लगाया परन्तु सभी स्थानों से नीचे गिरता गया। सिर पीट कर हृदय में हार मान

कर निराश हो गया इसी डर से अब आप के चरणों की शरण में कल्याण देख कर आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥५॥

दसरथ के समरथ तुहाँ, त्रिभुवन जस गायो ।
तुलसी नमत अवलोकिये, वलि बाँह बोल देइ बिरदावली बुलायो ॥६॥

हे दशरथनन्दन ! आप ही समर्थ हैं, तीनों लोकों में आपका ही यश गाया जाता है। आपके चरणों में प्रणाम करते हुए तुलसी को देखिये, मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ। आपके उअश ने ही मुझे बांह और वचन का भरोसा देकर मुझे बुलाया है ॥६॥

(२७७)

राम राय विनु रावरे मेरो को हित साँचो ।
स्वामि सहित सबसौं कहौं, सुनी गुनी बिसेषि कोऊ रेख दूसरी खांचो ॥१॥

हे राजा रामचन्द्रजी! आप के सिवाय मेरा सच्चा उपकारी कौन है ? मैं अपने स्वामी के सहित अन्य सभी से भी कहता हूँ, यदि कोई उसे सुन, समझकर कोई बड़ा हो तो मेरी बात सुन कर दूसरी रेखा खींचे अर्थात् बताये की श्रीरामचन्द्रजी के सिवा ऐसा हितैषी कौन है? ॥१॥

देह जीव जोग के सखा, मृषा टाँचन्ह टाँचो ।

किये बिचार सार कदली ज्याँ, मनि कनक सङ्ग लघु लसत बीच बिच काँचो ॥२॥

देह और जीव की मित्रता संयोग के जितने हितकारी मिलते हैं, वह सभी मिथ्या टांको से सिले हुए हैं। विचार करने पर यह कैसा सार हीन है जैसे केले का वृक्ष, इनका संग ऐसा है जैसे मणि और सुवर्ण के बीच बीच में तुच्छ काँच शोभित होता है ॥२॥

बिनयपत्रिका दीन की, बाप आपही बाँचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिये पाँचो ॥३॥

हे मेरे पिता! इस दीन की विनय पत्रिका अब आप ही बाँचिये । तुलसी ने इसमें अपने हृदय के सच्ची बातें हे लिखी हैं, इस पर पहले आप सही का निशान बना दीजिए और फिर उसके पश्च्यात पञ्च- श्रीजानकी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुहन और हनूमानजी से पूछिए ।

(२७८)

पवनसुवन ! रिपुदवन! भरत लाल ! लखन !दीन की ।
निज निज अवसर सुधि किए, बलि जाऊं, दास- आस पूजि है खासखीन की ॥१॥

हे पवनकुमार! शत्रुघन जी, भरतजी और लखन लालजी ! बलि जाता हूँ, मुझ दीन की आप अपने अपने मौके से सुध कियेलेते रहना । आपके ऐसा करने से इस दुर्बल दास की आशा निश्चय ही पूरी होगी ॥१॥

राज द्वार भली सब कहैं, साधु समीचीन की।
सुकृत सुजस साहेब कृपा, स्वारथ परमारथ गति भये गति विहीन की ॥२॥

राजद्वार पर सज्जन और अच्छे पुरुषों की तो सब अच्छी ही कहते हैं । किन्तु यदि आप गति विहीन, इस शरणागत दीन की सिफारिश कर देंगे तो इसको भगवन की शरण मिल जाएगी और आपका पुण्य होगा तथा आपने स्वामी आप पर कृपा करेंगेम आपने स्वार्थ और परमार्थ सभी पूर्ण होंगे ॥२॥

समय सँभारि सुधारबी, तुलसी मलीन की ।
प्रीति रीति समुभाइबी, नतपाल कृपालहि परमिति पराधीन की ॥३॥

इसलिए समयानुसार अवसर देख कर इस मलिन तुलसी की बात को सुधारियेगा। दीनपालक कृपालु स्वामी को प्रीति की रीति और पराधीनता की सीमा कह कर समझाइयेगा अर्थात् कलि के अधीन तुलसी आप से ही प्रीति की रीति निबाहता है ॥३॥

(२७९)

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है।
कलि कालहु नाथ नाम सौं,प्रतीति प्रीति एक किङ्कर की निबही है
॥१॥

पवनकुमार और भरतजी के मन की इच्छा देख कर लक्ष्मणजी ने दरवार में तुलसी की बात कही: हे नाथ ! कलिकाल में भी आप के नाम से विश्वास और प्रीति एक सेवक ने पूरी की है ॥२॥

सकल सभा सुनि लेइ उठी, जानि रीति रही है।
कृपा गरीवनिवाज की, देखत गरीब को साहेब बाँह गही है ॥२॥

यह सुनकर सारी सभा एकमत से कह उठी अर्थात् सब लोग एक साथ ही बोले कि उसकी रीति हमलोगों की जानी हुई है । गरीबनवाज रामचन्द्रजी की उस पर बड़ी कृपा है। स्वामी के देखते ही देखते उस गरीब की बांह पकड़ कर उसे अपना लिया है ॥२॥

विहँसि राम कहेउ सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है ।
मुदित माथ नावत बनी, तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है
॥३॥

सबकी बात सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने हँस कर कहा हाँ यह सत्य है, श्रीजानकी के द्वारा मैं ने भी खवर पाई है। बस फिर क्या था अनाथ

तुलसी की बन गई और विनय पत्रिका पर रघुनाथजी ने अपने हाथ से 'सही' कर दी ! अपनी बात मन लेने पर तुलसीदास भी प्रभु के चरणों में मस्तक नवाता है ॥३॥

॥ इतिशम् ॥

शुभमस्तु-मङ्गलमस्तु रामभक्ति मरु मुक्ति प्रद,
हरनि कलुष भव त्रास ।
विनय-पत्रिका सम सबहि,
गावत "त्यागी" लिए आस ॥